साहित्य-वाचस्पति

डा० (सेठ) गोविन्ददास के शब्दों में

हिन्दी-भाषा-आन्दोलन

संकलनकर्ता

लक्ष्मीचन्द

शकाब्द १८८५

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

V. Bharal
Rs. 9.00

प्रकाशक
गोपालचन्द्रसिंह
सचिव
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

प्रथम संस्करण
मूल्य नौ रुपये

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

सेठ गोविन्ददासजी ने हिन्दी में विशाल साहित्य लिख कर, साहित्य-क्षेत्र में चूड़ान्त स्थान प्राप्त कर लिया है। राजनीतिक क्षेत्र में भी वे इस से नीचे नहीं हैं। पचास वर्षों के सुदीर्घ काल में आपने साहित्यिक और राजनीतिक क्षेत्र में जो कुछ किया है, वह बहुत मूल्यवान है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा, कौंसिल आफ स्टेट और संविधान-सभा में रह कर, समय-समय पर आपने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने और पारिभाषिक शब्दावली को संस्कृत से लेने के लिए, जो सबल मत उपस्थित किया, वह इतना विचारपूर्ण, इतना तर्कयुक्त और अकाट्य होता था कि श्रोतृवृन्द सुन कर स्तब्ध रह जाता था। इसी प्रकार मध्यप्रान्त-विदर्भ और अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल, अ० भा० राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सम्मेलन, निखिल भारत वंग-साहित्य-सम्मेलन और बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद् के अध्यक्षपद से जो गभीर विचार व्यक्त किये, एवं महाकवि सूर, तुलसी तथा केशवदास के विषय में जो श्रद्धापूर्ण अध्ययन और विदेशों में हिन्दी-प्रचार तथा 'हिन्दी चलाओ' योजना को लेकर जो विचार जनता के सामने रखे, वे अवश्य ही हिन्दी के इतिहास में अमर और हिन्दी के पाठकों तथा विद्यार्थियों को प्रेरणा देने वाले रहेंगे।

हिन्दी के हित में जो-जो कार्य, हिन्दी-क्षेत्र और राजनीतिक क्षेत्र में रहकर उन्होंने पचास वर्षों में किये, उन सब का संकलन प्रस्तुत पुस्तक में है। यह संकलन, प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी के लिए पठनीय और संग्रह करके रखने योग्य है।

हम श्री लक्ष्मीचन्द्रजी के अनुगृहीत हैं कि उन्होंने यह संकलन करने की कृपा की है। लक्ष्मीचन्द्रजी, डॉ० श्री गोविन्ददासजी के जामाता हैं।

—गोपालचन्द्रसिंह (सचिव)

भूमिका

यह सौभाग्य की बात है कि जिस काल में हिन्दी उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती थी, उस समय भी उसको ऐसे सेवक मिलते गये जिन्होंने जनता की उदासीनता और सरकार की प्रत्यक्ष या परोक्ष विरोध वृत्ति की परवाह न करके उसका निरन्तर समर्थन किया। आरम्भ में इन लोगों को उर्दू के समर्थकों का लोहा लेना पड़ा। जो लोग गहराई से विचार करने को तैयार नहीं थे, वह हिन्दी के इन भक्तों पर साम्प्रदायिकता का लांछन सुगमता से लगा सकते थे। भाषा का प्रश्न साम्प्रदायिकता के साथ उलझा दिया गया था। उर्दू तो हिन्दू और मुसलमान दोनों की सम्पत्ति मानी जाती थी ; परन्तु हिन्दी का सम्बन्ध केवल हिन्दुओं से जोड़ दिया गया था। जो लोग हिन्दी को राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा, बनाने की बात करते थे उनमें से अधिकतर राष्ट्र सेवी थे, कांग्रेस के ख्यातनामा कार्यकर्त्ता थे, अपने राष्ट्र-प्रेम का पर्याप्त प्रमाण दे चुके थे, त्याग की कसौटी पर कसे जा चुके थे, फिर भी उन पर साम्प्रदायिकता का आरोप किया जाता था। यह एक ऐतिहासिक घटना थी कि उनमें से अधिकतर हिन्दू थे।

किसी-न-किसी प्रकार वह दिन बीते। उसके लम्बे इतिहास का वर्णन करना इस जगह अनावश्यक है। उर्दू का चर्चा कुछ कम हुआ और हिन्दुस्तानी सामने आयी। जो लोग हिन्दुस्तानी के स्वरूप को समझते थे, वह जानते थे कि वह उर्दू का नामान्तर मात्र है ; परन्तु उसके समर्थक इस बात को खुलकर सामने नहीं आने देते थे। वास्तविक बात छिपी रहती थी और जल्दी कोई उसे मुंह पर नहीं लाता था। मुझे वह दिन याद है, जब बड़ी-बड़ी सभाओं में किसी के मुँह से संस्कृत के एक-दो तत्सम शब्द निकल जाने पर हिन्दुस्तानी के समर्थक बोल उठते थे--"आसान जुबान बोलिए, आप क्या कह रहे हैं, हम समझ नहीं सकते" परन्तु व्यर्थ के वाद-विवाद को बचाने के डर से वहीं बैठे हिन्दी-समर्थक, फारसी-अरबी के कड़े-से-कड़े शब्दों को चुपचाप पचा जाते थे। सन् १९३८ ई० में एक बार शिक्षा-मंत्री के रूप में मैंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा आयोजित एक सभा में हिन्दुस्तानी की अपेक्षा हिन्दी का समर्थन किया। इस पर न केवल उर्दू के पत्रों ने, वरन् कई मुसलमान कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं ने मेरा विरोध किया और यह कहा कि मेरा भाषण कांग्रेस के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। मैंने महात्माजी को एक पत्र लिखकर अपने भाषण की प्रति उनके पास भेज दी और उनसे कहा कि यदि वह मेरे कथनों को कांग्रेस के सिद्धान्तों के विरुद्ध समझते हों, तो मैं मंत्री-पद से त्यागपत्र देने को तैयार हूं।

महात्माजी ने मेरे कथन को निर्दोष बतलाया और वह बात वहीं की वहीं रह गई। एक बार उनसे हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में भी मेरी बात हुई थी। वह भी स्मरण करने के योग्य है। उनके देहान्त के लगभग १ वर्ष पूर्व पटना में बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक सभा हुई। महात्माजी की आज्ञा से मैं भी वहां उपस्थित था। सायंकाल को एक बैठक में कुछ लोगों के समक्ष महात्माजी ने मुझ से स्पष्ट शब्दों में प्रश्न किया—'सम्पूर्णानन्दजी, आप मेरे हिन्दुस्तानी के क्यों विरुद्ध हैं?" मैंने उत्तर दिया—"महात्माजी, मैं हिन्दुस्तानी के विरुद्ध नहीं हूं। हिन्दी नाम भी संस्कृत से नहीं निकला है। मुसलमान लेखकों का ही दिया हुआ है। मैं अपनी बात यह कह सकता हूं कि हिन्दुस्तानी नाम को भी मान लूंगा; परन्तु भाषा का स्वरूप स्थिर हो जाना चाहिए। यह कहने से काम नहीं चल सकता कि जो भाषा साधारण रूप से उत्तर प्रदेश में बोली जाती है, वह हिन्दुस्तानी है। वह भाषा साधारण व्यवहार के लिए पर्याप्त हो सकती है, बाजार भाव, घर-गृहस्थी का समाचार, पारिवारिक पत्र-व्यवहार यह सब उसमें हो सकता है; परन्तु देश के स्वतंत्र होने पर विदेशियों से जब संधियाँ करनी होंगी, तो उनके लिए तो उसमें कोई शब्द नहीं हैं। वित्त-मंत्री जब बजट उपस्थित करने के लिए खड़ा होगा, तो वह इस सामान्य बोलचाल की भाषा में कौन-से उपयुक्त शब्द निकालेगा? विश्वविद्यालय में पढ़ाने के लिए दर्शन, अर्थशास्त्र, विज्ञान के शब्द इस बोली में कहाँ हैं? मेरा यह निवेदन है कि फारसी-अरबी के जो शब्द हमारी बोलचाल में आ गये हैं, उनका बहिष्कार नहीं करना है; परन्तु आगे चलकर गम्भीर विषयों के लिए जो शब्द व्यवहार में लाने हैं, उनको संस्कृत से लेना चाहिए। यदि यह बात मान ली जाय, तो मुझे हिन्दुस्तानी नाम से कोई विरोध नहीं है।" महात्माजी ने मेरी बात को गम्भीरता से सुना और अपना कोई निर्णय तो नहीं दिया; पर यह कहा कि हाँ, मैं आपकी बात को समझता हूँ। बात वहीं रह गई।

वह दिन भी गया और आज हिन्दी संविधान के अनुसार राष्ट्रभाषा-पद पर आसीन है; परन्तु इस बात ने उसकी कठिनाइयों को कम नहीं किया। अंग्रेजी राज्य गया; परन्तु अंग्रेजी भाषा का राज्य आज भी सुदृढ़ है। हमारे बड़े-से-बड़े नेताओं को उससे विचित्र ममता है। यह बात डंके की चोट पर कही जाती है कि हिन्दी में राष्ट्रभाषा होने की क्षमता नहीं है। कहने वाले इस बात को भली भाँति जानते हैं कि उन्होंने जो कसौटी बना रखी है, यदि उससे काम लिया जाता रहा, तो हिन्दी कभी भी राष्ट्रभाषा बनने के योग्य न होगी। हिन्दी चाहे कितनी भी उन्नति करे; परन्तु पाश्चात्य भाषाओं की उन्नति तो रोक नहीं दी जायगी, उनका वाङ्मय बढ़ता ही जायगा और हिन्दी उनके पीछे ही रहेगी। यदि हम सचाई के साथ काम करें, तो

हिन्दी को आज भी दो-चार वर्षों के भीतर व्यावहारिक दृष्टि से सम्पन्न कर सकते हैं। जब इजराएल स्वतंत्र हुआ था, तो उसके पास अपनी कोई भाषा नहीं थी। यूरोप के विभिन्न देशों से आये हुए यहूदी विभिन्न यूरोपीय भाषाओं को बोलते थे। उन्होंने उस भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने का निश्चय किया, जिसमें उनकी धर्म्म पुस्तक लिखी गयी थी। यह भाषा लगभग दो हजार वर्ष पुरानी थी और बीच में इसमें प्रायः किसी साहित्य की रचना नहीं हुई थी ; परन्तु कुछ ही वर्षों में यह भाषा फली-फूली और आज यह नहीं कहा जा सकता कि शिक्षा आदि किसी भी दृष्टि से इजराएल के निवासी किसी से पीछे हैं। चीन की भाषा भी हिन्दी से अधिक सम्पन्न नहीं है ; परन्तु हमारे नेतृ वृन्द को कुछ ऐसा व्यामोह है कि वह अंग्रेजी को हिन्दी के समकक्ष बनाने को तुले हैं। दुर्भाग्य से उनकी इस दुर्बलता को हमारे कुछ प्रदेशों ने ताड़ लिया है और वह इसका लाभ उठा रहे हैं। यह तो निश्चित है कि हम अपने देश में यादवीय नहीं चाहते। खूनखराबा करके किसी के सिर पर हिन्दी नहीं लादना चाहते ; परन्तु मुझको इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि हम चाहें, तो बिना किसी ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न हुए भी हिन्दी वस्तुतः राष्ट्रभाषा, राज्य-भाषा, बन सकती है।

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी के लिए, हिन्दी को यथार्ह स्थान दिलाने के लिए, जिन लोगों ने अथक प्रयत्न किया है, उनमें से कुछ लोगों के नाम ऐसे हैं, जिनकी हिन्दी सदैव ऋणी रहेगी। उनमें सबसे पहला नाम तो टंडनजी का है। उनके बाद जिन लोगों का नाम आदर के साथ लिया जायगा, उनमें सेठ गोविन्ददासजी का स्थान बहुत ऊंचा है। हिन्दी की उन्होंने जो सतत् बहुमूल्य सेवा की है, वह अविस्मरणीय है। लेखक, कवि, प्रवक्ता, राजनीतिक कार्यकर्त्ता-उन्होंने अनेक क्षेत्रों को विभूषित किया है और प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दी की बहुत सेवा की है। जो लोग उनके विचारों से सहमत नहीं हैं, जिन लोगों को उन्होंने कभी-कभी हिन्दी के प्रति अपने आग्रह से रुष्ट भी कर दिया है, वह भी सेठजी की हिन्दी-निष्ठा के सामने नतमस्तक होते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने उनकी कृतियों के संग्रह को प्रकाशित करने का जो आयोजन किया है, उसका मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। वह हिन्दी संसार की एक मूल्यवती निधि होगी। हम ऐसी आशा करते हैं कि कुछ दिनों में हिन्दी अपनी वर्त्तमान कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर चुकी होगी ; परन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि आगे आने वाली पीढ़ियों को भी सेठजी के विचारों के इस संग्रह में अध्ययन की प्रभूत सामग्री मिलेगी।

२१-११-६३ **सम्पूर्णानन्द**

निवेदन

समय-समय पर सेठ गोविन्ददासजी ने हिन्दी-भाषा और साहित्य के संबंध में जो कुछ कहा है, इस पुस्तक में उस का संकलन किया गया है। हिन्दी-भाषा के संबंध में लगभग गत पचास वर्षों में जो आन्दोलन हुआ है, उस का बहुत दूर तक इस संकलन-द्वारा दिग्दर्शन हो जाता है।

गोविन्ददासजी जिस प्रकार हिन्दी के मूर्धन्य और चोटी के साहित्यकार हैं, उसी प्रकार वे हिन्दी-भाषा को उस का उचित स्थान दिलाने में प्रमुख नेताओं में से हैं। उन का सार्वजनिक जीवन यथार्थ में हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य के निर्माण से आरंभ होता है। केवल बारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपना हिन्दी का पहला उपन्यास लिखा और लगभग बीस वर्ष की अवस्था में, १९१६ से उन्होंने जबलपुर में 'शारदा भवन' नामक पुस्तकालय स्थापित कर हिन्दी-आन्दोलन में भाग लेना शुरू किया। जबलपुर में उसी वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और इस अधिवेशन के समय से ही उन का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से संबंध हो गया।

सन् १९२० में वे उस समय के मध्यप्रदेश-बरार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के—जो सागर में हुआ था—अध्यक्ष चुने गये। उन का यह अध्यक्षीय भाषण अपनी एक विशेषता रखता था। हमें खेद है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी हम उसे प्राप्त नहीं कर सके।

गोविन्ददासजी सन् १९२३ में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में गये। वहाँ से १९२५ में कौंसिल आफ स्टेट में। सन् १९२७ में उन्होंने कौंसिल आफ स्टेट में सर्वप्रथम हिन्दी-भाषा के प्रश्न को उठाया। उस के पहले केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा अथवा प्रान्तीय विधान-सभाओं में यह प्रश्न उठा ही न था; अतः वे उस के आदि प्रवर्तक हैं। उस के बाद संविधान-सभा मे भी उन्होंने अपना प्रमुख विषय हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा-पद पर प्रतिष्ठित कराना बनाया। और सन् १९४९ में जब वे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष थे, तब हिन्दी राजभाषा-पद पर प्रतिष्ठित हुई। सन् १९६५ के बाद भी अंग्रेजी अनिश्चित काल के लिये चलाने का जब सन् १९६३ में लोक-सभा में सरकारी विधेयक उपस्थित हुआ, तब कांग्रेस-दल के वे ही एकमात्र सदस्य थे, जिन्होंने अदम्य साहस से केवल उस विधेयक का

विरोध किया। इतना ही नहीं, मत-दान के समय अपना मत भी उस विधेयक के विरोध में दिया। इसे हम गोविन्ददासजी का परम सौभाग्य मानते हैं कि सन् १९२७ में उन्हीं ने केन्द्र में, कौंसिल आफ स्टेट में हिन्दी के प्रश्न को उठाया, उन्हीं के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापतित्व-काल में हिन्दी राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई और जब सन् १९६३ में सन् १९६५ के बाद भी अनिश्चित काल के लिये अंग्रेजी चलने का विधेयक आया, तब उन्हीं ने उस का विरोध किया।

इस संकलन में उन के कौंसिल आफ स्टेट के भाषण, संविधान-सभा के भाषण, लोक-सभा के भाषण और पूछे गये अनेक प्रश्न तथा उन के उत्तर सम्मिलित हैं। इन भाषणों आदि में हमें हिन्दी और भारतीय भाषाओं से संबध रखनेवाले प्रायः सभी ज्वलन्त प्रश्न मिल जाते हैं। कुछ विषयों की पुनरुक्ति अवश्य हुई है ; परन्तु एक ही भाषण में कोई पुनरुक्ति नही है। सारे भाषणों को सम्मिलित दृष्टि से देखा जाय, तो यह पुनरुक्तियां इसलिये स्वाभाविक है कि ये भाषण भिन्न-भिन्न अवसरों पर दिये गये हैं। और महत्त्व के प्रश्नों का पुनः पुन. आना आवश्यक था। खास कर ये पुनरुक्तियां दो विषयों मे मिलती हैं।

(१) उन्हे बार-बार कहना पड़ा है कि वे हिन्दी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं को भी समान महत्त्व देते हैं और

(२) पारिभाषिक शब्दावली के संबध में उन का कथन कि अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली नही मानी जा सकती और हमारे देश में यह पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत में बननी चाहिये।

केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में वे चालीस वर्ष से हैं। स्वतन्त्रता के बाद जिस लोक-सभा का निर्माण हुआ, उस में तो सन् १९५१ से हर वर्ष या तो राष्ट्रपति के भाषण पर या जनरल बजट पर या फाइनेन्स बिल पर या पंचवर्षीय योजनाओं पर या शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर उन्होंने हिन्दी के संबध में कुछ-न-कुछ कहा है। उन के राष्ट्रपति के भाषण की बहस में, जनरल बजट, फाइनेन्स बिल और पंचवर्षीय योजनाओं के भाषणों में हिन्दी के सिवा कुछ और विषय भी आये हैं। पर हमें इन भाषणों को पूरा-का-पूरा इसलिये देना पड़ रहा है कि यदि यह न किया जाता, तो ये भाषण खंडित हो जाते और इन का पूरा आशय समझ में न आता।

केंद्रीय व्यवस्थापिका सभाओं के भाषणों के अतिरिक्त वे न जाने कितना हिन्दी के संबंध में कहते आये हैं। हमें खेद है कि हम उस सब का संकलन नहीं कर सके। इस संकलन के लिये हम उन के कुछ अध्यक्षीय भाषण ही प्राप्त कर सके हैं। इन में भाषा से सम्बद्ध भाषणों के सिवा उन के कुछ साहित्यिक भाषण भी हैं।

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश चारों हिन्दी-भाषा-भाषी राज्यों में 'हिन्दी चलाओ' नामक जो योजना लगभग तीन वर्ष पूर्व उन्होंने चलाई थी, वह भी हम इस संकलन में दे रहे हैं।

गोविन्ददासजी के भाषणों के हम तीन संकलन और कर रहे हैं। एक उन के गो-रक्षा संबंधी भाषणों का, दूसरा उन के राजनैतिक तथा अन्य विषयों के भाषणों का और तीसरा उन के अंग्रेजी के भाषणों का। स्वतंत्रता के पहले केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं और विधान-सभा में नियम था कि जो व्यक्ति अंग्रेजी जानता हो, उसे उन सभाओं में अंग्रेजी में ही बोलना पड़ता था। सन् १९२३ से १९४७ तक गोविन्ददासजी के केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं के भाषणों को और अफ्रिका, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, कनेडा, अमेरिका और इंग्लैंड आदि विदेशों में उन्होंने जो भाषण दिये हैं, उन्हें तीसरे संकलन में संगृहीत किया जा रहा है। आशा है कि शीघ्र ही ये तीनों संकलन भिन्न-भिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित किये जायेंगे।

अन्त में हम श्री विजय शुक्ल, लेक्चरार, हितकारिणी महाविद्यालय, जबलपुर एवं श्री गोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव को धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने सर्वप्रथम यह सुझाव दिया कि श्री गोविन्ददासजी के इन भाषणों का संकलन किया जाय।

—लक्ष्मीचन्द

विषय-सूची

कौंसिल ऑफ स्टेट में

नियमों में इस प्रकार का संशोधन कि सदस्य हिन्दी और उर्दू में भाषण कर सकें

१६ मार्च, १९२७

१६ मार्च, १९२७ को 'कौंसिल ऑफ् स्टेट' में सेठ गोविन्ददासजी ने मांग की कि भारतीय विधान-मण्डल में हिन्दी या उर्दू में भी भाषण करने की अनुमति मिलनी चाहिये। उन्होंने अपनी मांग के समर्थन में निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित कर भाषण दिया—

"अध्यक्ष महोदय, जो प्रस्ताव मैं रखना चाहता हूं, वह इस प्रकार है—'यह कौंसिल गवर्नर-जनरल से सिफारिश करती है कि वैधानिक प्रक्रिया के नियमों में इस प्रकार परिवर्तन किया जाय, जिससे भारतीय विधान मण्डल के सदस्य हिन्दी या उर्दू में भाषण कर सकें और वे भाषण केन्द्रीय विधान मण्डल की औपचारिक कार्रवाई में नियमानुसार मुद्रित व प्रकाशित हों।'

अध्यक्ष महोदय, हम कई वर्षों से 'स्वराज' की बात करते रहे हैं और 'स्वराज' शब्द इतना लोकप्रिय हो गया है कि महामहिम सम्राट् ने, महामहिम ड्यूक आव् कनाट के द्वारा जो सन्देश भेजा है, उसमें भी उन्होंने उसकी चर्चा की है। किन्तु, श्रीमन्, मुझे आशंका है कि हम अभी तक इस शब्द का पूरा महत्त्व नहीं समझ पाये। मेरी दृष्टि में राजनीतिक स्वराज, जो इस देश की सभ्यता, कला, संस्कृति व भाषा से रहित हो, निरर्थक है। स्वाभाविक रूप से एक देश के विधान मण्डल की कार्रवाई उसी भाषा में चलनी चाहिए, जो वहां की जनता बोलती हो। ब्रिटिश संसद् की कार्रवाई इटालियन में होना और इटालियन प्रतिनिधि सभा की कार्रवाई अंग्रेजी में चलने की कल्पना भी असम्भव है; किन्तु यहां हमारे मामले में स्टेण्डिंग आर्डर नं० २७ में चुपचाप यह व्यवस्था दे दी गयी है कि "इस विधान-मण्डल की कार्रवाई अंग्रेजी में चलेगी।" और फिर घाव पर नमक छिड़कने के लिए लैजिस्लेटिव असेम्बली के भूतपूर्व अध्यक्ष सर फ्रेडरिक व्हाइट ने अपनी एक पुस्तक में कहा है—"किसी भी भारतीय भाषा में समस्त भारत की भाषा बनने की सामर्थ्य कदापि नहीं। अतः भविष्य में प्रान्तीय स्तर की भाषा चाहे कोई भी हो, किन्तु संघीय भाषा सदा अंग्रेजी ही रहेगी और भारतीय एकता का यही सबसे बड़ा उपकरण है।"

श्रीमन्, मेरी सम्मति में यह घाव पर नमक छिड़कना है। यदि अंग्रेज़ी ही संयुक्त भारत की भाषा बनने वाली है, तो मुझे यह कहना पड़ता है कि यह संयुक्त भारत एक अराष्ट्रीय भारत होगा। अंग्रेज़ी इस देश की भाषा न कभी रही है और न आगे होगी। सदन की सन्तुष्टि के लिए मैं इसे सिद्ध करना चाहता हूं।

गत जनगणना के अनुसार भारत की ३२ करोड़ की कुल जनसंख्या में अंग्रेजी केवल ३ लाख व्यक्तियों द्वारा बोली जाती है और बहुत कम संख्या में समझी जाती है। जनगणना रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया है कि प्रति १०,००० व्यक्तियों में केवल १६० पुरुष और १८ महिलाएं ही अंग्रेज़ी लिख व पढ़ सकती हैं। श्रीमन् इस भाषा को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाया जा रहा है। १५० वर्ष के ब्रिटिश शासन में भारतीय जनसंख्या के इतने छोटे भाग को अंग्रेज़ी में शिक्षित किया जा सका है। मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से पूछना चाहता हूं कि इस गति से इस देश की सारी जनता को अंग्रेज़ी सिखाने में कितने दिन लगेंगे। फिर क्या यह उचित भी है कि एक विदेशी भाषा दूसरे देश पर राष्ट्रीय भाषा के रूप में लादी जाय। जो लोग अपनी भाषा को दबाते हैं, या दबाने पर बाध्य होते हैं, उनका व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। आयरिश कवि थामस डेविस ने इस सम्बन्ध में अपनी मातृभाषा गेलिक में कहा है—

"कोई राष्ट्र अपनी मातृभाषा को छोड़ कर राष्ट्र नहीं कहला सकता। मातृ-भाषा की रक्षा सीमाओं की रक्षा से भी जरूरी है, क्यों कि यह विदेशी आक्रमण को रोकने में पर्वतों और नदियों से भी अधिक समर्थ है।"

श्रीमन्, इसीलिए इतिहास में विजेताओं की सदा से विजित भूमि पर अपनी भाषा लादने की नीति रही है। विजित देशों ने भी सदा इन अत्याचारों का सामना किया है और अपने क्षेत्र से भी अधिक अपनी मातृभाषा की रक्षा की है। हम यह बात कई देशों के इतिहास में पाते हैं। इंगलैण्ड में भी नार्मन-विजय के बाद विजेताओं ने अपनी भाषा थोपने का प्रयत्न किया। समस्त प्रशासनिक कार्य नार्मन-फ्रेंच में किये जाने लगे; किन्तु यह अधिक समय तक नहीं चला और इसका स्थान ऐंग्लो-सैक्सन भाषा ने ही लिया। पोलैण्ड के इतिहास में भी हम यही बात देखते हैं। जब रूस, प्रशिया व आस्ट्रिया ने उसका विभाजन किया और वहां अपनी अपनी भाषा लादने का प्रयत्न किया, तो पोलैण्डवासियों ने इसका घोर विरोध किया। उन्होंने उन विश्व-विद्यालयों का बहिष्कार किया, जहां प्रशियन और रशियन भाषाएं पढ़ाई जाती थीं और विल्ना व क्रैको के अपने पुराने विश्वविद्यालयों को पुनर्जीवित किया। यही बात हंगरी में हुई। जब आस्ट्रिया ने हंगरी पर अपनी भाषा लादने

का प्रयत्न किया, तो हंगरी की जनता ने इसका विरोध किया और केवल इस शर्त पर आस्ट्रियन साम्राज्य का अंग बनना स्वीकार किया कि उनकी भाषा को भी प्रशासन में बराबर का दर्जा दिया जायेगा। इसी प्रकार आयरलैण्ड ने भी अंग्रेजी अपनाने से इन्कार कर दिया और अपनी मूल भाषा गैलिक को पुनर्जीवित किया। दक्षिण अफ्रीका में भी बोअरवासियों ने अपने अंग्रेज शासकों को बाध्य कर दिया कि वे उनकी भाषा को प्रशासन में सम्मानपूर्ण दर्जा दें। भारत में भी अंग्रेजों ने भाषा के सम्बन्ध में विजेताओं की पुरानी परम्रा अपनाई, जिसे मैं यहां कुछ ब्रिटिश अधिकारियों के वक्तव्य उद्धृत करके स्पष्ट करूँगा।

१७९२ में चार्ल्स ग्रान्ट ने भारतीयों को इंगलैण्ड के निकट लाने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था कि, हिन्दू जनता को अपने साथ बांधने और अपने आधिपत्य को चिरस्थायी करने के लिए हमें बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके अपनाने होंगे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत मद्रास के गवर्नर सर चार्ल्स ट्रेवेल्यान ने अपनी एक पुस्तक में कहा—

"अंग्रेजी ढंग से शिक्षित, अंग्रेजी उद्देश्यों में संलग्न और अंग्रेजी साम्राज्य के कार्यों में सक्रिय व्यक्ति हिन्दू से भी अधिक हो जाता है, जिस प्रकार रोमन ढंग से शिक्षित गाल और इटालियन अधिक रोमन हो गये।"

उन्होंने आगे कहा—

"अंग्रेजी साहित्य भी हमारी उद्देश्यपूर्ति में कम सहायक नहीं। अंग्रेजी साहित्य से परिचित व्यक्ति यह भूल जाता है कि हम विदेशी हैं और घोर विरोधी की बजाय हमारा निकटतम सहयोगी हो जाता है।"

वह और आगे कहते हैं—

"ऐसा व्यक्ति हमें नापसन्द करने की बजाय हमारे निकट आने में गर्व अनुभव करेगा, हमें अपने संरक्षक व शुभचिन्तक की दृष्टि से देखेगा और स्वेच्छा से हमारे ढांचे में ढल जायेगा।"

जब भारत की बागडोर संसद् के हाथ में आई, तब भी अंग्रेज शासकों की यह नीति नहीं बदली। सन् १८८० में सर अलैग्जैण्डर आर्बटनाट ने कहा—"भारत में शिक्षाप्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए कि लोग ब्रिटिश शासन को अपना सौभाग्य मानें और इसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन को अपने लिए दुर्भाग्यपूर्ण समझें।"

सन् १८८० में ही सर रिचर्ड टैम्पल ने अपनी एक पुस्तक में कहा—"अंग्रेजी भाषा, साहित्य व दर्शन से शिक्षित व्यक्ति अपनी मूल राष्ट्रीयता से बिल्कुल मुक्त होकर इंग्लिश राष्ट्र के निकट आ जायेगा।"

अतः, श्रीमन् यह स्पष्ट है कि अंग्रेजों ने भारतीयों को अंग्रेजी में शिक्षित करने की नीति अपने साम्राज्य को जमाने के लिए और हमारी राष्ट्रीयता को समाप्त करने के लिए अपनाई थी।

अब प्रश्न उठता है कि जब अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं और न होगी, तो इस विशाल देश की राष्ट्रीय भाषा का दर्जा और कौन-सी भाषा ले सकती है। सौभाग्य-वश इसके लिए हिन्दी या उर्दू का नाम लिया जा सकता है। मैं यहां यह भी कहना चाहूंगा कि हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा है। दोनों को बनावट और दोनों का व्याकरण एक ही है। एक यूरोपियन डा० बीम्स के मतानुसार—"हिन्दी और उर्दू को दो विभिन्न भाषाएँ समझना एक बहुत बड़ी गलत-फहमी है।"

श्रीमन्, मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र इस सदन के मुस्लिम सदस्य मेरे इस मत को समझेंगे कि हिन्दी व उर्दू दो विभिन्न भाषाएँ नहीं। इसीलिए मैंने अपने प्रस्ताव में "हिन्दी और उर्दू "न कहकर "हिन्दी या उर्दू" कहा है।

अब हमें देखना है कि इस देश में हिन्दी की वर्तमान स्थिति क्या है। गत जनगणना रिपोर्ट के अनुसार साढे तेरह करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं और पांच करोड़ बंगाली, दो करोड़ मराठे और एक करोड़ गुजराती हिन्दी समझ सकते हैं। यदि प्रयत्न किया जाये, तो ये सब हिन्दी बोल भी सकते हैं। दक्षिण भारत की लगभग साढ़े चार करोड़ जनता इस समय हिन्दी नहीं समझती, किन्तु मैं इस सदन को बताना चाहता हूं कि उनके लिए भी हिन्दी ग्रीक के समान नहीं। गत सात वर्ष से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की एक शाखा वहां कार्य कर रही है, जिसके बहुत सन्तोषजनक परिणाम निकले हैं। हाल में कोकनाड़ा में नेशनल कांग्रेस के अवसर पर स्वागत समिति के अध्यक्ष—जो स्वयं तेलगू-भाषी थे—ने हिन्दी में भाषण किया। इसी समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक विशेष अधिवेशन हुआ और इसमें भी स्वागत समिति के अध्यक्ष ने तेलगूभाषी होते हुए हिन्दी में भाषण किया। सम्मेलन में भाग लेने वाले कई तमिल व तेलगू-भाषी लोगों ने हिन्दी में विचार व्यक्त किये।

अब प्रश्न उठता है कि क्या भारत के विभिन्न प्रान्तों में रहने वाले लोग—बंगाली, गुजराती व महाराष्ट्री—हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लें। मैं इन भाषाओं के विद्वानों के विचार उद्धृत करके इसे सिद्ध करना चाहूंगा।

विश्वविख्यात साहित्यिक व बंगला के सर्वोच्च कवि डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। सर गुरुदास बैनर्जी, श्री रमेशचन्द्र दत्त व डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने भी यही विचार व्यक्त किया है। स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्र दत्त कहते हैं—"यदि कोई भाषा भारत के अधिकांश भाग में स्वीकार

की जा सकती है, तो वह हिन्दी है।" डा० राजेन्द्रलाल मित्र कहते हैं—"हिन्दी भारत की सब से अधिक महत्त्वपूर्ण भाषा है और यह भारत के शिक्षित लोगों की भाषा है।"

महाराष्ट्रियों में भी हम यही बात देखते है। लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व मराठी साहित्य परिषद् में वहां के विद्वान् एकत्रित हुए और उन्होंने एक प्रस्ताव पास करके हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा घोषित किया। प्रथम अखिल भारतीय नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने हिन्दुस्तानी से अपनी शिक्षा प्रारम्भ की और मैंने स्वयं उन्हें उनकी मृत्यु से कुछ समय पूर्व जबलपुर में हिन्दी में भाषण करते सुना था। महाराष्ट्र के एक अन्य विद्वान् डा० भाण्डारकर कहते हैं—"भारत में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए समान भाषा का दर्जा हिन्दी को ही दिया जा सकता है और इसे समस्त भारत में स्वीकार कराने में अधिक कठिनाई नहीं होगी।" इतिहासवेत्ता रावबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य कहते हैं—"हिन्दी हर दृष्टि से भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है।"

हिन्दी में गुजरात की भक्ति को स्पष्ट करने की अधिक आवश्यकता नहीं। स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी गुजरात के दो सबसे बड़े पुत्र हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने समस्त ग्रन्थ हिन्दी मे लिखे, अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार हिन्दी में किया और महात्मा गांधी ने अपने प्रयत्नों से हिदुस्तानी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मुख्य भाषा के रूप में स्वीकृत कराया। वह कहते हैं—"अंग्रेजी जनता की भाषा कभी नहीं बन पायेगी और हमें अपने राजनीतिक कार्यों में प्रतिदिन जनता के अधिक से अधिक निकट आना होगा। देश में लगभग एक प्रतिशत लोग भी मुश्किल से अंग्रेजी समझते हैं, जब कि ६० प्रतिशत से अधिक जनता सामान्य रूप से हिन्दुस्तानी समझती है।"

हम यह भी देखते हैं कि अतीत में बंगाल, महाराष्ट्र व गुजरात के बहुत-से लेखकों ने हिन्दी में लिखा। राजस्थान तथा गुजरात के दो प्रसिद्ध कवियों—मीराबाई व नरसी मेहता—ने हिन्दी में लिखा और पश्चात् भी दो कवि, दयाराम और नर्मदाशकर, हिन्दुस्तानी में लिखते रहे हैं। बंगाल में जस्टिस शारदाचरण मित्र व अमृतलाल चक्रवर्ती ने हिन्दी की समृद्धि में योग दिया। महाराष्ट्र में सन्त तुकाराम व मोरोपन्त ने हिन्दी में लिखा और इनके बाद भी पण्डित माधवराव सप्रे तथा कई अन्य सज्जन हिन्दुस्तानी में लिखते रहे हैं।

अब हमें देखना है कि यूरोपियन इस बारे में क्या कहते हैं। भारतीय भाषाओं के सबसे बड़े ज्ञाता डा० ग्रियर्सन कहते हैं—"भारत में एक भाषा (हिन्दी) ही

राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है। यही एक भाषा है, जिस में दो विभिन्न प्रान्तों के लोग आपस में बातचीत कर सकते हैं। यह भारत में सर्वत्र समझी जाती है, क्योंकि इसका व्याकरण भारत की अधिकांश भाषाओं के समान है और इसका शब्द-कोश सबकी सम्मिलित सम्पत्ति है।"

श्री फ्रेडरिक पिनकाट कहते हैं—

"हिन्दी ने अपना स्थान बना लिया है, इसे ६ करोड़ लोग बोलते हैं और इसे उनकी प्रशासनिक भाषा बनाने से अधिक देर तक रोका नहीं जा सकता। हिन्दी तेजी से आगे बढ़ रही है, इसका साहित्य अधिकाधिक आगे बढ़ रहा है और इस गति से यह वर्तमान स्थिति को बनाये रखना असम्भव कर देगी।"

अब हमें देखना है कि हिन्दुस्तानी के बारे में विभिन्न भारतीय राज्यों की क्या नीति है। मैं केवल उन्हीं राज्यों के बारे में कहूंगा, जो हिन्दी भाषी नहीं हैं। बड़ौदा में राज-परिवार की भाषा मराठी है और जनता की भाषा गुजराती है; किन्तु वहां की शिक्षाप्रणाली में हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया है। हिन्दी अब वहां प्रत्येक को पढ़ाई जा रही है। ग्वालियर और इन्दौर में भी राज-परिवार की भाषा मराठी है; किन्तु वहां प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी का उपयोग होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हिन्दी का शब्द-कोश भारत की राष्ट्रभाषा होने के लिए उपयुक्त है। अतीत में यूरोपियन विद्वानों का मत था कि "भारतीय भाषाएं भद्दी, अवैज्ञानिक, मूर्खतापूर्ण और निरर्थक हैं," यह धारणा अब बदल गयी है। श्री कस्ट अपनी एक पुस्तक में कहते हैं—"भारतीय भाषा में कोई भी मानवीय भावना व्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य है और यह उच्चतम वैज्ञानिक शिक्षा के लिए भी उपयुक्त है।"

सन् १९०१ की भारतीय जनगणना रिपोर्ट के प्रथम खण्ड के पृष्ठ सं० ३०७ में कहा गया है कि "हिन्दी के पास ऐसा शब्द-कोश और अभिव्यक्ति की ऐसी सामर्थ्य है, जो अंग्रेजी से किसी भी प्रकार कम नहीं।"

अब, श्रीमन्, एक और प्रश्न है। यह पूछा जा सकता है कि क्या हिन्दुस्तानी को सीखना आसान है? श्री मकमर्डी कहते हैं—"किसी विदेशी के लिए अंग्रेजी सीखना तीन कारण से कठिन है। इसका अक्षरविन्यास (स्पेलिंग) बड़ा अनियमित है, इसका शब्द-कोश बड़ा विस्तृत है और इसमें मुहावरे विचित्र प्रकार के हैं।" हिन्दी के सम्बन्ध में महात्मा गांधी कहते हैं—"एक औसत बंगाली यदि प्रतिदिन ३ घंटे हिन्दी पढ़े, तो २ मास में और एक द्राविड़ ६ मास में इसे सीख सकता है। बंगाली हो या द्राविड़, वह अंग्रेजी को इतनी जल्दी नहीं सीख सकता।"

इस प्रकार श्रीमन्, जब भारत की सारी जनसंख्या हिन्दुस्तानी समझती है और आधी बोलती भी है, तब क्या यह विडम्बना नहीं कि हमारे केन्द्रीय विधान-मण्डल की कार्रवाई एक ऐसी भाषा (अंग्रेजी) में चलाई जाये, जिसे केवल ३ लाख लोग बोलते हैं और अधिक-से-अधिक ३० लाख समझते हैं। यूरोपियन अपने को भारत का सेवक बताते हैं और यहां हमें कार्रवाई अंग्रेजी में चलाने पर बाध्य किया जाता है। यदि वे सचमुच इस देश के सेवक हैं, तो उन्हें हमारी भाषा सीखनी चाहिए। वे तो भारत के सेवक हैं और भाषा हमें उनकी सीखनी पड़ती है, कार्रवाई हमें उन्हीं की भाषा में चलानी पड़ती है। इस सम्बन्ध में वर्तमान आदेश में अंग्रेजी को प्राथमिकता देते हुए कहा गया है—'यदि अध्यक्ष चाहे, तो परिषद् में अंग्रेजी न जानने वाले सदस्य को देशी भाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है।'

इससे लगता है कि मुख्य स्थान अंग्रेजी का है और देशी भाषाओं को केवल सहन किया गया है। इसी प्रकार प्रशासन में उच्च पद यूरोपियनों को मिलते हैं और माननीय सर मुहम्मद हबीबुल्ला व माननीय श्री एस० आर० दास को अपवाद रूप में लिया गया है। मेरी सम्मति में यह स्थिति बदलनी चाहिए। हमें प्रशासनिक सेवाओं का भारतीयकरण और विधान-मंडल की कार्रवाई का हिन्दुस्तानीकरण करना चाहिए। फिर यह शिकायत भी की जाती है कि जनता नये सुधारों और विधान-मण्डलों के प्रति उदासीन है। इसका एक कारण यह भी है कि जनता विधान-मण्डल की कार्रवाई नहीं समझ सकती। इस सदन की दर्शक दीर्घा में या तो वे लोग आते हैं, जो अंग्रेजी समझते हैं या वे, जो सदस्यों के खूबसूरत चेहरे और सदन की शान-शौकत देखना चाहते हों। सदन की कार्रवाई समझने के लिए यहां बहुत कम लोग आते हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में भी तब तक यही शिकायत रही, जब तक हिन्दुस्तानी को नहीं अपना लिया गया। १९१९ तक कांग्रेस अधिवेशन में बहुत सीमित संख्या में प्रतिनिधिगण आते थे। दर्शकगण भी बहुत कम संख्या में आते थे; किन्तु जब से कांग्रेस ने अपनी कार्रवाई हिन्दुस्तानी में चलानी शुरू की, तब से एक महान् अन्तर आ गया। मैं सरकार को विश्वास दिलाता हूं कि जिस दिन उन्होंने इस सदन में यह नीति अपना ली, दर्शक दीर्घाएं खचाखच भरी नजर आयेंगी और लोग इसकी कार्रवाई में असली रुचि लेंगे।

इस दिशा में सदन के सामने अगली कठिनाई हिन्दुस्तानी की संकेत लिपि (शार्टहैंड) की आयेगी। मैं कहना चाहता हूं कि हिन्दुस्तानी की संकेतलिपि बहुत पूर्ण और सरल है। कोई व्यक्ति अंग्रेजी की संकेत लिपि ४ मास से कम में नहीं सीख

सकता जबकि हिन्दुस्तानी की २ मास में पूरी तरह सीखी जा सकती है। इस प्रणाली की जांच १९२१ में तब हुई, जब अहमदाबाद कांग्रेस में सारी कार्रवाई इसी ढंग से ठीक-ठीक अंकित की गयी। जिस दिन सरकार ने सदन में हिन्दुस्तानी भाषण को प्रोत्साहन दिया, ऐसे लोग स्वतः मिल जायेंगे जो हिन्दुस्तानी संकेत-लिपि में सारी कार्रवाई अंकित कर सकें।

अन्त में मैं सरकार से एक अपील करना चाहूंगा। सरकार की यह घोषित नीति है कि अन्ततः वह एक भारतीय राष्ट्र को जन्म देकर उसे स्वराज्य प्रदान करना चाहती है। श्रीमान् मुझे यह कहने की आज्ञा दीजिये कि राष्ट्रभाषा राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा चिह्न है। सौभाग्य से हमारे पास एक ऐसी भाषा है, जो हमारी राष्ट्रभाषा और जनभाषा बन सकती है। जर्मनी में हम क्या देखते हैं? फ्रेंकफर्ट की सन्धि तक जर्मनी कई भाषाओं में विभाजित था—हाई जर्मन, लो जर्मन और अन्य अनेक बोलियां, किन्तु जब से उसने एक भाषा अपनाई, वह एक महान् राष्ट्र बन गया। सरकार यहां हिन्दुस्तानी अपनाये और मैं विश्वास दिलाता हूं कि यहां भी एक भारतीय राष्ट्र अल्प काल में निर्मित हो जायेगा। स्वराज की मांग पर हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न खड़ा कर दिया जाता है, किन्तु हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर सौभाग्य से दोनों एकमत हैं। सिख भी हमारे साथ हैं। उनकी कई धार्मिक पुस्तकें और यहां तक कि ग्रन्थ साहब भी हिन्दुस्तानी में लिखा गया था। इस प्रकार भारत में रहनेवाली सभी जातियां चाहे वे हिन्दू हों या मुस्लिम, सिख हों अथवा जैन, हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर एकमत हैं। अतः सरकार मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करके अपनी यह घोषणा प्रकाशित करे कि वह एक भारतीय राष्ट्र का निर्माण करना चाहती है। इन शब्दों के साथ मैं, श्रीमन्, अपना प्रस्ताव सदन की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करता हूं।"

(बहस के उपरान्त उत्तर में गोविन्ददासजी का भाषण)

"अध्यक्ष महोदय, माननीय सर उमरहयात खां और माननीय श्री दास ने मेरे प्रस्ताव के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है। मैं खुद भी यह प्रस्ताव कर्नल नवाब सर उमरहयात खां के शब्दों में पेश कर सकता था, किन्तु मुझे भय है कि यह सरकार को तब और भी अधिक अव्यावहारिक लगता। प्रस्ताव में इतनी विनम्र भाषा के प्रयोग के बाद भी जब मेरे माननीय मित्र श्री दास को इस पर आपत्ति है, तो यदि मैं सरकार से सदस्यों को अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी में बोलने के लिए बाध्य करने की मांग करता, तब श्री दास क्या कहते? जो बात यह अब कह रहे हैं, उसे मैं भी कह सकता था और शायद अधिक जोर के साथ कहता, किन्तु काश कि मैं व्यावहारिकता का ध्यान रखते हुए ऐसा न कर सका।

मेरे माननीय मित्र श्री दास ने कहा है कि हमें इस प्रश्न को व्यावहारिकता की दृष्टि से देखना चाहिए। वह मेरी भावना की सराहना करते हुए स्वीकार करते हैं कि देश में एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। मैं समझता हूं कि वह यह भी स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा कदापि नहीं हो सकती, यद्यपि अपने लम्बे भाषण में उन्होंने यह बात नहीं कही। वह जानते हैं कि १५० वर्ष के ब्रिटिश साम्राज्य की लम्बी अवधि में जब अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी, तो यह अब कैसे बन सकती है। वह अंग्रेजी के मामले में भी यही "व्यावहारिक" कठिनाई अनुभव करते हैं और मुझसे तब तक प्रतीक्षा करने के लिए कहते हैं, जब तक देश में प्रत्येक व्यक्ति हिन्दी नहीं समझ जाता। हमने १५० वर्ष तक प्रतीक्षा की है। कुछ भारतीय ऐसे भी हैं, जो कहते हैं कि हिन्दुस्तानी या हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती और केवल अंग्रेजी ही यह दर्जा ले सकती है। अंग्रेजी का काफी प्रसार हो जायेगा, तो सरकार यह अनुमति भी नहीं देगी कि हम अपनी किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग करें; अतः मैं सरकार से अपील करता हूं कि वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर जनभावनाओं का आदर करे। मैं केवल यह चाहता हूं कि सदन में जो भी सदस्य हिन्दी में बोलना चाहे, यद्यपि वह अंग्रेजी जनता हो या न भी जानता हो, उसे हिन्दी में बोलने की अनुमति दी जाय। मैं किसी माननीय सदस्य को हिन्दी में बोलने के लिए बाध्य नहीं करना चाहता। मैं केवल सरकार से हिन्दी के लिए समानता का दर्जा चाहता हूं और कुछ नहीं, और जब इतना विनम्र प्रस्ताव, इतना महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव, जनभावनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला प्रस्ताव सदन में लाया जाता है, और सरकार इसका विरोध करती है तो मैं स्वाभाविक रूप से क्षुब्ध हो जाता हूं।

श्रीमन्, मैं अपने माननीय मित्र श्री दास के तर्क स्वीकार करने में असमर्थ हूं और अपना प्रस्ताव सदन की सम्मति के लिए प्रस्तुत करता हूं।"

मतदान

पक्ष में–१२ विपक्ष में–२२

जिन्होंने पक्ष में मत दिये उनमें तीन मुस्लिम सदस्य, तीन बंगाली सदस्य और तीन दक्षिण भारतीय थे। उस समय की कौंसिल आफ स्टेट में नामजद सरकारी और गैरसरकारी सदस्यों की संख्या काफी होती थी; अतः विपक्ष में जिन २२ सदस्यों ने मत दिया, उनमें १४ तो अंग्रेज ही थे। शेष आठ में से अधिकांश नामजद थे। यह एक भाग्य की विडम्बना थी कि इन नामजद सदस्यों में हिन्दी के प्रसिद्ध मिश्र-

बन्धुओं के पंडित श्यामबिहारी मिश्र को भी नामजद सदस्य होने के कारण इस प्रस्ताव के विपक्ष में मत देना पड़ा था। इस प्रकार यद्यपि यह प्रस्ताव अस्वीकृत तो हो गया ; परतु यथार्थ में यह स्वीकृत माना जाना चाहिए।

नोट—उपर्युक्त दोनों भाषण मूल में अंग्रेजी में हैं, क्योंकि उस समय नियम था कि जो सदस्य अंग्रेजी जानते हैं, उन्हें केवल केन्द्रीय विधान सभाओं में ही नहीं, प्रांतीय विधान सभाओं में भी अपने भाषण अंग्रेजी में देने चाहिए।

संविधान सभा में

कौन भाषा में संविधान-सभा की कार्यवाही चलेगी

२३ दिसम्बर, १९४६

श्री सेठ गोविन्ददास—मैं निम्नलिखित संशोधन पेश करता हूँ—

"मैं चाहता हूँ कि दूसरी पंक्ति से "आर इंगलिश" शब्द हटा दिया जाय। बाद में जहाँ नियम यह कहता है कि शर्त यह है कि अध्यक्ष उन सदस्यों को, जो इन दोनों भाषाओं (हिन्दी या अंग्रेजी) से अपरिचित हैं, इस परिषद् में अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति देंगे, यहाँ "मदर टंग" के बाद "आर इंगलिश" रखा जाये।

इस समय जैसा कि नियम है उसके अनुसार हम लोग हिन्दी, उर्दू यानी हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी में यहाँ बोल सकते हैं ; लेकिन हमने देखा कि ९ तारीख के बाद जब से हमने अपनी कार्रवाई शुरू की, हिन्दुस्तानी के लिए कोई बंधन न रहने पर भी हम लोगों की यहाँ जितनी कार्रवाई हुई है, वह ज्यादातर अंग्रेजी में ही हुई है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब यह परिषद् स्वतन्त्र भारत का विधान बनाने जा रही है, और यदि अंग्रेजी को ही अपनी राष्ट्रभाषा मानकर वह काम करना चाहती है, तो यह एक बड़े दुःख की बात है। अंग्रेजी कभी भी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। मैं यह कहना चाहता हूँ। अपने मद्रासी भाइयों से, कि अगर २५ वर्षों के बाद, महात्माजी के प्रयत्नों के बाद, उतनी कोशिश के बाद भी और कांग्रेस में जो कुछ हो रहा है उसके बाद भी अगर वह हिन्दुस्तानी नहीं समझते हैं, तो यह उनका दोष है, हमारा नहीं। और जब यह दोष उनका है, तो इसके लिए जो कठिनाई उनके सामने उपस्थित है, उन्हें उसे मंजूर करना पड़ेगा। यदि कुछ मद्रासी भाई हिन्दुस्तानी नहीं समझ सकते और इसके लिए हमारी विधान परिषद् में, जिसे सत्तासम्पन्न सभा कहा जा सकता है और जो स्वतन्त्र भारत का विधान बनाने के लिए बैठी है, अंग्रेजी का दौर-दौरा रहता है, तो यह हमारी बरदाश्त के बाहर है। आप जानते हैं कि मैं बहुत कम बोलता हूँ, लेकिन जो सैद्धान्तिक बातें हैं, उनके लिये हर किसी को अपने विचार आगे रखने को तैयार रहना चाहिए और उसी के आधार पर मैंने अपनी बातें कही हैं। मेरा विश्वास है कि मेरी इस तरमीम को, जो अंग्रेजी में बोलना चाहते हैं और हिन्दुस्तानी नहीं जानते, उनको अंग्रेजी में बोलने की

आजादी हो, आप मंजूर करेंगे। इस तरमीम के बाद यहाँ जो कार्यवाही होगी, वह, मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तानी भाषा में होगी, न कि अंग्रेजी में।

हमारे नरम दल के भाई अंग्रेजी को ही अपनी राष्ट्रभाषा मानते थे और यदि मानते नहीं थे, तो कम से कम बनाना चाहते थे। लेकिन हमने देखा कि इतने वर्षों के बाद भी हिन्दुस्तान में कितने लोग अंग्रेजी पढ सके। अंग्रेजी आज कितने लोग समझ सकते हैं। हमें इतिहास से मालूम होता है कि विजेता जिन पर विजय प्राप्त कर लेता है, उन पर वह अपनी भाषा लादना चाहता है। आयरलैण्ड के इतिहास मे, इगलैंड के इतिहास में, हगरी के इतिहास में अनेक जगह हमें यह देखने को मिलता है। जिन देशों पर विदेशियों ने अपनी भाषा लादनी चाही, उन्होंने बराबर अपनी भाषा के लिए युद्ध किये और आखिर में विजय प्राप्त की। जहाँ तक आयरलैण्ड की गैलिक भाषा का सम्बन्ध है, वह करीब-करीब समाप्त हो चुकी थी; लेकिन उन्होंने उसके लिए भी लड़ाई की और आखिर में आयरलैण्ड की जीत रही।

हिन्दुस्तानी को व्यवहार में लाने के लिए तीन कठिनाइयाँ पेश की जाती हैं। पहली बात यह कही जाती है कि हम को ऐसे वैज्ञानिक शब्द नहीं मिलते, जिनसे हमारी कुल कारंवाई हिन्दुस्तानी मे हो सके। मैं कहना चाहता हूँ कि हमारे सामने उस्मानिया युनिवर्सिटी का एक बहुत बड़ा दृष्टान्त मौजूद है, जहाँ पर सारी पढ़ाई का माध्यम हिन्दुस्तानी है। हिन्दुस्तानी मे वैज्ञानिक शब्दों को ढालने की उन्होंने कोशिश की, उसके लिए विशेषज्ञ रखे। मैं यह नहीं चाहता कि जो लोग हिन्दुस्तानी नहीं बोल सकते, उनको जबरदस्ती हिन्दुस्तानी में बोलने को कहा जाय। इसीलिए मदर टग के बाद मैंने अंग्रेजी शब्द जोड दिया है। जो लोग हिन्दुस्तानी नही बोल सकते, उनको आजादी होगी कि वे अंग्रेजी में बोलें। तीसरी कठिनाई यह कही जाती है कि बहुत-से लोग हिन्दुस्तानी नहीं समझ सकते। मैं कहना चाहता हूँ कि ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो हिन्दुस्तानी न समझते हों। उनकी संख्या अंगुली पर गिनी जा सकती है। जो कठिनाई आज हमारे सामने लाई जाती है, वह कांग्रेस के सामने भी लायी जाती थी; पर हमने देखा कि महात्मा गांधी के प्रयत्नों के बाद आज कांग्रेस में हिन्दुस्तानी में ही भाषण होते हैं। वहाँ पर जो लोग हिन्दुस्तानी नहीं जानते, वही अंग्रेजी में भाषण देते हैं। यहाँ भी यही होना चाहिए। ९ तारीख से अब तक जो कार्यवाही विधान परिषद् ने की है, उसे देखते हुए यह मालूम होता है कि यहाँ पर अंग्रेजी का ही दौरदौरा रहेगा।

आज से २० वर्ष पहले जब मैं कौंसिल ऑफ स्टेट का मेम्बर था, मैंने इस सम्बन्ध में वहाँ भी एक प्रस्ताव रखा था। उस वक्त सर गोपाल स्वामी, जहाँ तक मुझे याद है, वहाँ मौजूद थे और उनको याद होगा कि उस समय कितनी बहस हुई थी।

उस बहस में मैंने आयरलैण्ड के एक कवि का उद्धरण पढ़ा था, मैं अपने मद्रासी भाइयों के लाभ के लिए इस कथन को पढ़ना चाहता हूँ। वह कथन अंग्रेजी में इस प्रकार है—

"The Nation without a mother-tongue cannot be called a nation. The defence of one's mother-tongue is a more powerful barrier against the intransition of foreigners than even the national barriers of rivers and mountains."

संविधान मूल में राष्ट्रभाषा में बने

२९ अगस्त, १९४७

श्री सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, एक बहुत बड़ा मसला अभी तक तय नहीं हुआ और वह यह है कि हमारी भाषा क्या रहेगी। आपने यह कहा था कि जो विधान हम तैयार करेंगे, वह मूल में हमारी राष्ट्रीय भाषा में होगा और उसका अनुवाद चाहें तो अंग्रेजी में हो सकता है। तो मैं यह जानना चाहता हूँ, जो कमेटी बनाई जा रही है, वह कमेटी, हमारी कौन-सी भाषा रहेगी, इस पर भी विचार करेगी या नहीं? दूसरी बात मैं जानना चाहता हूँ कि जो बिल या मसविदा हम तैयार कर रहे हैं, वह जैसा आपने उस समय कहा था वह मूल में हमारी भाषा में होगा या मूल में अंग्रेजी में होगा? मैं यह सुझाव रखना चाहता हूँ कि इन विषयों पर भी इस समय निर्णय हो जाना चाहिए और मूल में जो हमारा मसविदा हो, वह हमारी राष्ट्रीय भाषा में होना चाहिए। उसका अंग्रेजी अनुवाद हो सकता है। साथ ही हमारी कौन-सी भाषा रहेगी, यह भी इस समय निर्णय हो जाना चाहिए।

डा० अम्बेडकर के प्रस्ताव के समर्थन में

५ नवम्बर, १९४८

अध्यक्ष महोदय, मैं डा० अम्बेडकर द्वारा रखे गये प्रस्ताव के समर्थन के लिए खड़ा हुआ हूँ, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं उनके द्वारा कही गयी प्रत्येक बात से सहमत हूँ; वरन् इसके विपरीत मेरी सम्मति में उनका भाषण उनके द्वारा रखे गये शानदार प्रस्ताव के उपयुक्त नहीं। उन्होंने कई विवादास्पद प्रश्न उठा दिये हैं और अच्छा होता यदि वे उनका जिक्र भी न करते। इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह समर्थन मैं किसी उत्साह से नहीं कर रहा

हूँ, जिसकी इस समर्थन में आवश्यकता है। यह प्रस्ताव और सारा संविधान सदन के सामने एक विदेशी भाषा में रखा गया है। कल इस विषय पर काफी बहस हुई, अत: मैं इस संबंध में अधिक नहीं कहूँगा। फिर भी मुझे इस बात पर खेद है कि हमने अपनी राष्ट्रभाषा का प्रश्न अभी तक तय नहीं किया। श्रीमन् यदि हम इस सम्बन्ध में कल निश्चय कर लेते, तो आपको यह आश्वासन देने की जरूरत नहीं पड़ती कि यह संविधान सदन के सामने राष्ट्रभाषा स्वीकृत होनेवाली भाषा में प्रस्तुत किया जायेगा और अब तक स्वीकृत धाराओं को भी पुन: उसी भाषा में स्वीकार कराया जायेगा। सम्भवत: आपको याद होगा कि आपने इस प्रकार का एक आश्वासन दिया था और इस पर मेरे एक प्रश्न के उत्तर में आपने कहा था कि संविधान का मूल प्रारूप राष्ट्रभाषा में होगा। एक विदेशी भाषा में संविधान स्वीकार करना, हमारे लिए न केवल लज्जा का विषय है, वरन् इससे भविष्य में कई कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी और हमारे देश पर अंग्रेजी का प्रभुत्व स्थापित हो जायगा।

ब्रिटिश शासनकाल में भी हमारे देश ने कई ऐसे विद्वानों को जन्म दिया, जो अंग्रेजी नहीं जानते थे। उदाहरण के लिए पं० सुधाकर द्विवेदी का नाम लिया जा सकता है। आजकल मौलाना अबुलकलाम आजाद हैं और उन्हें भी अंग्रेजी का अच्छा ज्ञाता नहीं माना जा सकता। यदि हमने स्वतन्त्र भारत में भी, उसकी अपनी राष्ट्रभाषा होते हुए भी, उसका संविधान अंग्रेजी में तैयार किया, तो हम सदा के लिए कम-से-कम संवैधानिक मामलों में ऐसे व्यक्तियों पर निर्भर हो जायेंगे, जो अंग्रेजी के विशेषज्ञ हैं, अत: मैं फिर आपसे अपील करूँगा कि हमारा मूल संविधान हिन्दी में होना चाहिए।

फिर यह संविधान अपूर्ण भी है। बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातें इसमें सम्मिलित नहीं। निस्संदेह द्वितीय अध्याय में धारा ९९ में यह तो कहा गया है कि "संसद् में कार्रवाई हिन्दी या अंग्रेजी में चला करेगी," किन्तु इसमें राष्ट्रभाषा के नाम का कोई जिक्र नहीं। हम धारा ९९ में संशोधन करके यह कमी पूर्ण तो कर सकते हैं, किन्तु फिर भी यह तब तक संभव नहीं, जब तक हम स्पष्ट रूप से यह घोषित नहीं कर देते कि हमारी राष्ट्रभाषा कौन-सी है। केवल यह कह देना कि संसद् की कार्रवाई अमुक भाषा में चलेगी, पर्याप्त नहीं है। हमें स्पष्ट रूप से घोषणा करनी होगी कि हमारी राष्ट्रभाषा यह है। हमें अपनी राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार स्पष्ट घोषणा करनी होगी। इन दोनों ही मामलों में हमारा संविधान अभी तक अधूरा है।

सम्भवत: आप को यह तथ्य भी विदित होगा कि आयरिश संविधान में वहाँ के राष्ट्रध्वज का भी उल्लेख है। यद्यपि हमने एक प्रस्ताव द्वारा तिरंगे को अपना

राष्ट्रध्वज स्वीकार कर लिया है किन्तु संविधान के इस प्रारूप में इसका कोई उल्लेख नहीं। यह कमी अवश्य दूर होनी चाहिए।

हमारा संविधान राष्ट्रगीत के प्रश्न पर भी मौन है। हमारे प्रधान मंत्री श्री पंडित जवाहरलाल नेहरू कई अवसरों पर यह घोषणा कर चुके हैं कि इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय संविधान सभा करेगी। मैं चाहता हूँ कि हमारे संविधान में भी हमारे राष्ट्रगीत की स्पष्ट व्यवस्था होनी चाहिए।

मैं उन सभी मामलों पर अपने विचार व्यक्त करना चाहूँगा, जिनके सम्बन्ध में संविधान के वर्तमान प्रारूप में कोई व्यवस्था नहीं दी गयी। मेरी सम्मति में हिन्दी ही ऐसी एकमात्र भाषा है, जो इस देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है। मैं समझता हूँ इस सदन में बहुत ही कम सदस्य ऐसे होंगे, जिनकी राय में अँग्रेजी को इस देश की राष्ट्रभाषा बनाया जा सकता है। हिन्दी और हिन्दुस्तानी का विवाद भी अब समाप्त हो चुका है। धारा ९९ में यह स्पष्ट कह दिया गया है कि अब संसद् की कार्रवाई "हिन्दी अथवा अंग्रेजी" में चलेगी। मैं इस बात पर भी सहमत हूँ कि आगामी कुछ वर्षों में संसद् की कार्रवाई में अंग्रेजी का प्रयोग किया जा सकता है। हमें किसी पर कोई चीज लादना नहीं है। किन्तु, हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और देवनागरी हमारी राष्ट्रलिपि होनी चाहिए।

सविधान में राष्ट्रध्वज के बारे में भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। मेरा मत है कि यूनियन जैक की भाँति हमें अपने राष्ट्रध्वज को भी कोई सुन्दर नाम देना चाहिए। इसे "सुदर्शन" नाम दिया जा सकता है। सुदर्शन उस वस्तु को कहते हैं, जो देखने में सुन्दर हो। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी इस सदन में राष्ट्रध्वज सम्बन्धी प्रस्ताव रखते हुए अपने भाषण में कहा था कि यह देखने में बहुत सुन्दर है। फिर इसमें एक चक्र भी है। भगवान विष्णु के चक्र का नाम सुदर्शन चक्र था; अतः इस ध्वज का नाम "सुदर्शन" रखना अत्यधिक उपयुक्त होगा।

जहाँ तक राष्ट्रगान का प्रश्न है, मेरी सम्मति में "वन्देमातरम्" हमारा राष्ट्रगीत हो सकता है। हमारे स्वतन्त्रता संघर्ष का इतिहास वन्देमातरम् से जुड़ा है। यदि यह कहा जाये कि इसका स्वर वाद्ययन्त्रों के अनुकूल नहीं, तो यह कठिनाई वाद्य विशेषज्ञों के प्रयास से दूर हो सकती है। महाकवि सूरदास और मीराबाई के पद एक नहीं अनेक स्वरों में गाये जाते हैं; अतः यह सोचना गलत होगा कि वन्देमातरम् वाद्य के लिए उपयुक्त नहीं। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर का आदर न करता हो; उनका गीत "जनगणमन" सन् १९११ में स्वर्गीय सम्राट् जार्ज पंचम् की भारत यात्रा के अवसर पर रचा गया था। यह भारतमाता के प्रति न होकर स्वर्गीय सम्राट् के प्रति है। इसकी

हर भावना "भारत भाग्य विधाता" अर्थात् सम्राट् के साथ सम्बन्धित है, जो हमारे गणराज्य के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। अतः केवल "वन्देमातरम्" ही हमारे राष्ट्र-गान के लिए उपयुक्त होगा।

यह संविधान अधूरा तो है ही, इसमें कुछ संशोधनों की भी आवश्यकता है। उदाहरण के लिए हमारे देश को इसमें "इण्डिया" का नाम दिया गया है। विदेशों के लिए तो यह ठीक है; किन्तु यदि हमें यहां कोई जनसभा आयोजित करनी हो, तो क्या उसमें हम अपनी जनता को "इण्डियन" कहकर सम्बोधित करेंगे। जब हम अपने देश का संविधान अपनी ही राष्ट्रभाषा में बनाना चाहते हैं और जब हम एक धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण कर रहे हैं, तो इसे 'इण्डिया' 'हिन्दुस्तान' का नाम देना उपयुक्त न होगा। मेरी सम्मति में इस देश का प्राचीन नाम "भारत" ही इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होगा।

एक और बात को भी में यहां चर्चा करना चाहूँगा। हमारा देश कृषिप्रधान है; अतः हमें कृषि के लिए उपयोगी सब वस्तुओं की रक्षा करनी होगी। इस दृष्टि से गाय की रक्षा हमारे लिए बहुत जरूरी है। गोरक्षा का प्रश्न हमारी संस्कृति के साथ भगवान् कृष्ण के समय से जुड़ चुका है। हमारे लिए यह न केवल एक धार्मिक और आर्थिक, वरन् एक सांस्कृतिक समस्या भी है। जिस प्रकार हमने अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया है, उसी प्रकार गोवध को भी अपराध घोषित कर सकते हैं। हमें अपने संविधान में ही इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। हम अपने इतिहास में देखते हैं कि चाहे हिन्दू युग हो अथवा मुस्लिम युग, इस देश में केवल वही शासक सफल और लोकप्रिय हो सके हैं, जिन्होंने गोवध कानूनन निषिद्ध कर दिया था। इतिहास में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि कई मुस्लिम शासकों ने ऐसा किया। गोवध-निषेध के लिए वित्तीय काम का भी बहाना लिया जा सकता है; किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि हम गोरक्षा के नाम पर कर भी लगा दें; तो जनता इसे प्रसन्नतापूर्वक अदा करेगी। वित्तीय कठिनाइयों का बहाना ब्रिटिश शासनकाल में लिया जाता था; किन्तु मैं आशा करता हूँ कि अब गोरक्षा के मामले में इस बहाने की आड़ नहीं ली जायेगी।

हमें अपने संविधान पर हर दृष्टि से विचार करना है और इसे हर प्रकार से पूर्ण बनाना है। हमारा देश कोई नया नहीं है, यह एक प्राचीन राष्ट्र है, इसका एक लम्बा इतिहास और समृद्ध संस्कृति है। हमें अपने संविधान का निर्माण इन सभी तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए करना चाहिए। हम मुस्लिम या किसी भी अल्पसंख्या को कठिनाई में नहीं डालना चाहते; किन्तु हम उन व्यक्तियों की कभी खुशामद नहीं करेंगे, जो हमारे सामने द्विराष्ट्र का सिद्धान्त रखते हैं। मैं यह

स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सांस्कृतिक दृष्टि से केवल एक संस्कृति ही इस देश में रह सकती है। जिस संविधान को हम स्वीकृत करें, वह हमारी प्राचीन संस्कृति के अनुकूल होना चाहिए और हमारी राष्ट्रभाषा में ही होना चाहिए।

हमें शताब्दियों के बाद अपना संविधान बनाने का अवसर मिला है; अतः हमें ऐसा संविधान बनाना चाहिए, जिससे हमारी मातृभूमि के गौरव में वृद्धि हो।

कारों की संख्या-तख्तियों पर हिन्दी अंक

१० जून, १९४९

सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, आप आज की कार्यवाही प्रारम्भ करें, इससे पहले मैं आपका ध्यान "हिन्दुस्तान टाइम्स" के ९ तारीख के अंक की ओर दिलाता हूँ, जिसमें कि उन्होंने मोटर प्लेट्स के जिस प्रश्न को मैंने यहाँ उठाया था उस सम्बन्ध में दिल्ली पुलिस ने जो कुछ होम डिपार्टमेंट को लिखा है, उसका जिक्र किया है। वे लिखते हैं:—

"पता लगा है कि गृहमंत्रालय का ध्यान १९४९ के भारतीय मोटर वेहीकल्स अधिनियम १९४९ की ओर आकृष्ट किया गया है, जिसके अनुसार संख्या-तख्तियों पर गाड़ी की संख्या अंग्रेजी अक्षरों तथा अंकों में होनी चाहिए। पत्र में आगे चलकर यह लिखा है कि भारतीय मोटर वेहीकल्स अधिनियम समस्त देश में लागू है और दिल्ली प्रशासन को इसमें संशोधन करने की शक्ति नहीं है।"

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि संयुक्त प्रान्त में और मेरे मध्य प्रान्त में भी इसी कानून के अनुसार सब कार्यवाही होती है। इतने पर भी वहाँ की मोटरों के नम्बर, मिनिस्टरों की मोटरों तक के नम्बर, हिन्दी में हैं और यह भी आप जानते हैं कि पार्लियामेंट के नियमों के मुताबिक पार्लियामेंट में जो भाषण होते हैं, वे भी अंग्रेजी में होने चाहिए, पर हमारी पार्लियामेंट के स्पीकर श्री मावलंकर साहब ने अनेक बार यह कहा है कि वर्तमान परिस्थिति जब बदल गई है, तब इस प्रकार के नियमों को लागू क्यों किया जाय। पार्लियामेंट में बराबर हिन्दी में भाषण होते हैं। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि दिल्ली पुलिस एडमिनिस्ट्रेशन की जो दलील है वह कामनसेन्स और वर्तमान परिस्थिति के प्रतिकूल है और बड़ी बेहूदी दलील है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कोई खास परिस्थिति उत्पन्न होने न पाये; इसलिए इस सम्बन्ध में आपको कुछ-न-कुछ करने की कृपा करनी चाहिए।

राष्ट्रभाषा के प्रश्न का निर्णय

३० जुलाई, १९४९

सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, इसके पहले कि हम आगे बढ़ें, मैं एक बात की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। जब से हम लोग यहाँ आये हैं, तब से राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें सुन रहे हैं। कहा यह जा रहा है कि राष्ट्रभाषा का सवाल पालियामेन्ट के ऊपर छोड़ दिया जायगा। आपने बार-बार इस बात को कहा था कि हम केवल राष्ट्रभाषा का प्रश्न ही यहाँ हल न करेंगे, बल्कि हम अपना विधान भी अपनी भाषा में बनायेंगे। अब यह अन्तिम अधिवेशन है और मुझे इस बात का पता लगा है कि जो कमेटी आपने विधान के अनुवाद के सम्बन्ध में नियुक्त की थी, उसने उन धाराओं का हमारी भाषा में अनुवाद कर लिया है, जो हम यहाँ पास कर चुके हैं। मैं चाहता हूँ कि आप इन अफवाहों का खंडन कर यह निश्चय कर दें कि राष्ट्रभाषा का सवाल हम अपनी पालियामेंट पर न छोड़कर इस विधान-परिषद् में निश्चित करेंगे क्योंकि उसके बिना मेरा अपना मत है कि सारा विधान ही अधूरा रहता है। इसी के साथ मैं यह चाहता हूँ कि आप तीन विषयों के लिए कि हमारी राष्ट्रभाषा कौन सी होगी, हमारा राष्ट्रीय गीत क्या होगा और हमारे देश का क्या नाम होगा, निर्णय करने की तारीख मुकर्रर कर दीजिये, जिससे लोगों को मालूम हो जाये कि अमुक तारीखों पर यह सवाल लिये जायेंगे।

राजभाषा की धाराओं पर

१२ सितम्बर, १९४९

सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, आज के दिन को मैं अपने जीवन के दिनों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। आज जो कुछ हो रहा है, उससे मुझे हर्ष भी कम नहीं है। मैं आपको भी इस बात के लिये धन्यवाद देता हूँ कि मैंने समय-समय पर इस विषय को अनेक रूपों में आपके सामने उपस्थित किया और आपने मेरी बातें सुनीं। आपके पहले इस विधान परिषद् के प्रथम दिवस जब आप के ही प्रान्त के श्री सच्चिदानन्दसिंह हमारे सभापति थे, उस दिन भी मैंने इस विषय को उठाया था। उसके पश्चात् मैं इस विधान परिषद् के सदस्यों को इस सम्बन्ध में बहुत कष्ट देता रहा हूँ। इस विधान परिषद् में घूम-घूम कर इस हाल में मीलों चल कर और उनके घरों पर जाकर, उनके प्रान्तों में जाकर इस विषय पर मैं इस विधान परिषद्

के सदस्यों से अनुनय-विनय करता रहा हूँ और मुझे इस बात पर भी बड़ा हर्ष है कि हमारे प्रधान मन्त्रीजी के शब्दों में ९५ प्रतिशत बातों पर हम लोगों का एक-मत भी हो गया है ; परन्तु एक बात मैं अवश्य कहना चाहता हूँ कि जिन विषयों पर हमारा मतभेद है, उन विषयों को भी हमें शान्ति से हल करना चाहिए। यदि हम ऐसे विषयों पर मत भी लें, मत-विभाजन भी करायें, तो भी उससे किसी प्रकार की कटुता नहीं आने देनी चाहिए। हम लोगों ने प्रजातंत्र को स्वीकार किया है और प्रजातंत्र में बहुमत से ही सारे काम चल सकते हैं। यदि किसी विषय पर मतभेद होता है, तो उसका निर्णय केवल बहुमत से ही हो सकता है और बहुमत जो भी निर्णय करे, उसे अल्पमत वालों को सिर झुका कर स्वीकार करना चाहिए, बिना किसी प्रकार की कटुता के आप ने भी यही अपील की थी। अभी श्री गोपालस्वामी आयंगरजी ने भी यही अपील की और मैं भी यही अपील करना चाहता हूँ।

मैं अपने दक्षिण भारत में माननीय सदस्यों और जिन प्रान्तों में हिन्दी भाषा नहीं बोली जाती, उन प्रान्तों के सब माननीय सदस्यों का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने कम से कम एक बात स्वीकार कर ली और वह बात यह है कि चाहे आप उसे राष्ट्रभाषा कहें, चाहे आप उसे राज्य-भाषा कहें, वह हिन्दी ही हो सकती है और उसकी लिपि देवनागरी जैसा कि मैंने अभी कहा था हमारे प्रधान मंत्रीजी के शब्दों में भाषा का विषय ९५ प्रतिशत हल हो गया है। जो पाँच प्रतिशत बाकी है, उसमें कुछ सैद्धान्तिक बातें हैं। उन सिद्धान्त की बातों को यदि हमारे दक्षिण भारत के माननीय सदस्य और दूसरे प्रान्तों के सदस्य स्वीकार नहीं करते, तो उन्हें हमें भी वैसी ही स्वतंत्रता देनी चाहिए कि हम भी अपने सिद्धान्तों पर स्थित रहें और बिना किसी प्रकार की कटुता आये हम ऐसी बातों को बहुमत से निपटा लें।

अंकों का प्रश्न लीजिये। अंकों का एक प्रश्न है, जो यहाँ पर भी सभी लोगों के हृदयों में एक क्षोभ उत्पन्न कर रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्षोभ की क्या आवश्यकता है। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान गत दो या तीन वर्षों की घटनाओं की ओर ले जाना चाहता हूँ। जब पहले पहल मैंने भाषा और लिपि का प्रश्न उनके सामने रखा, तब अंकों का प्रश्न उन्होंने नहीं उठाया था। आज यह प्रश्न जितने महत्त्व का हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओं को दीखता है, उस समय उन्होंने इसे उस दृष्टि से नहीं देखा था। मैं उनकी स्मरण शक्ति को ताजा करने के लिये उस फारमूला को यहाँ पढ़ना चाहता हूँ, जिस पर उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में हस्ताक्षर किये थे। यह फारमूला यहाँ मैं पढ़ता हूँ, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में।

"हम लोग इस बात के पक्ष में हैं कि भारत के विधान में यह रखा जाये कि राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि हिन्दी और देवनागरी होगी। राष्ट्र संघ पार्लियामेन्ट में सब काम हिन्दी और देवनागरी अक्षरों के द्वारा अथवा उस समय तक के लिये जो संघ पार्लियामेन्ट निश्चित करे, अंग्रेजी में होगी।"

अंग्रेजी में वह इस प्रकार है:—

"We support the view that the Union Constitution should lay down that the national language and character shall be Hindi and Devanagari respectively, that in the Federal parliament business shall be transacted in Hindi written in Devanagari character or, for such period as the Federal parliament decides in English."

काजी सैयद करीमुद्दीन (मध्यप्रान्त और बराबर मुस्लिम)—एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान् सभा में यह कौन-सा लेख पढ़ा जा रहा है।

सेठ गोविन्ददास—यह वह डाकूमेंट है, जिस पर यहाँ के सदस्यों ने हस्ताक्षर किये थे और जो फारमूला भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने स्वीकार किया था।

इस फारमूले पर साधारण सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं थे। हमारे मद्रास के श्री गोपालस्वामी आयंगर ने इस पर हस्ताक्षर किये हैं। डा० पट्टाभि सीतारमैया ने इस पर हस्ताक्षर किये हैं। श्री प्रोफसर रंगा, श्री अलगेसन, श्री थिरुमल राव, श्री अनंत शयनम आयंगर, श्री काला वेंकटा राव के इस पर हस्ताक्षर हैं।

श्री काला वेंकटा राव—मद्रास (जनरल) मेरा नाम क्यों लिखा जा रहा है? मेरे प्रति जो निर्देश है, उसे मैं नहीं समझता हूँ।

सेठ गोविन्ददास—मैंने जिस फारमूला को अभी पढ़ा है, उस पर आपने हस्ताक्षर किये हैं।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि जिस समय आपने देवनागरी को स्वीकार किया था, उस समय आपने देवनागरी के अंकों को भी उसके साथ स्वीकार किया था। अन्यथा आप उस समय भी यह कहते कि इसमें इंटरनेशनल न्यूमरल्स की बात रक्खी जानी चाहिए।

इसमें हमारे बम्बई के बन्धुओं के हस्ताक्षर हैं। श्री निजलिंगप्पा, श्री जेधे, श्री पाटस्कर, श्री गुप्ते इत्यादि के।

हमारे बंगाल के बन्धुओं के भी इस पर हस्ताक्षर हैं—श्री मैत्र, श्री मजूमदार श्री गुहा, श्री सुरेश मोहन घोष और दूसरे सज्जन।

उड़ीसा के श्री विश्वनाथदास, श्री बी० दास, श्री लक्ष्मीनारायण साहु, श्री युधिष्ठिरसिंह, आसाम के श्री रोहिणीकुमार, श्री चालिहा ने भी इस पर हस्ताक्षर किये हैं। हिन्दी भाषा-भाषी सभी सदस्यों के इस पर हस्ताक्षर हैं।

तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि यह न्यूमरल्स का जो सवाल उठा, वह सवाल बहुत पीछे और हाल का ही उठा हुआ है और इस सवाल को उस समय किसी ने महत्त्व नहीं दिया था।

मैं यह नहीं कहता कि आज इस विषय को उठाने का किसी को अधिकार नहीं है। अवश्य है। मेरे कहने का मतलब केवल यह है कि जब वे स्वयं किसी समय देवनागरी लिपि को, जिस रूप में वह है, उस रूप में स्वीकार करना चाहते थे, तो उनको उसके अंकों को भी स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि अंक लिपि के अन्दर होते हैं, लिपि के बाहर नहीं होते। और उस समय जब वे इस बात को स्वीकार कर रहे थे, तो आज बिना किसी रोष के, बिना किसी क्रोध के और बिना किसी क्षोभ के उन्हें कम से कम हमें अपने मत पर स्थित रहने की स्वतंत्रता देनी चाहिए। उन्होंने यदि अपना मत बदल दिया है और वह विरोध में वोट करना चाहते हैं, तो करें, परन्तु हम यदि अपने पुराने मत पर स्थित हैं, तो उन्हें हमारे प्रति किसी रोष की भावना को नहीं रखना चाहिए।

अब दूसरी बातों को हम लें। श्रीयुत आयंगर साहब ने जो धारा यहाँ पर पेश की है, उसमें उन्होंने यद्यपि हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार किया है, पर उसी के साथ उस धारा को ध्यानपूर्वक देखने से यह प्रयत्न दिखाई देता है कि वह समय दूर से दूर रखा जा रहा है, जब कि हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले सके। इस विधान परिषद् में दो प्रकार के माननीय सदस्य दिखते हैं—एक वे हैं, जो हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार करते हैं, परन्तु उसे दूर से दूर टालना चाहते हैं। दूसरे वे लोग हैं, जो अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को जल्दी से जल्दी ले आना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में कांग्रेस की कार्यकारिणी का जो प्रस्ताव है, उसकी ओर मैं माननीय सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने कहा है कि हमको धीरे-धीरे इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि १५ वर्ष में अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ले ले और १५ वर्ष में या उसके पश्चात् इस देश में अंग्रेजी का स्थान न रहे; पर जो भाषण श्रीयुत गोपाल स्वामी आयंगरजी ने आज दिया है, उसमें उन्होंने कहा कि १५ वर्ष के बाद भी एक लम्बे समय तक हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान नहीं लेने देना चाहिए, कम से कम हम लोगों का यह मत नहीं है यह मैं कह देना चाहता हूँ। मेरी स्पष्ट राय है कि यदि अंग्रेजी को देश से जाना है, तो वह जल्दी से जल्दी जाय। यदि

हम १५ वर्ष का समय स्वीकार करते हैं तो यह मतलब नहीं है कि उससे पहले हिन्दी अंग्रेजी का कोई भी स्थान नहीं ले। आप जानते हैं, इस भवन के सारे सदस्य जानते हैं कि पहले हमारा यह मत था कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी कितने समय में ले, इस विषय को पार्लियामेन्ट पर छोड़ दिया जाये। जो फारमूला मैंने अभी पढ़ा, उसे जो हिन्दी भाषा-भाषी नहीं हैं, उन्होंने भी स्वीकार किया था। फिर हम पांच वर्ष पर आये। उस समय हमने सोचा था कि पांच वर्ष में यदि हम प्रयत्न करेंगे, तो हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकेंगे। उसके बाद यहाँ पर राष्ट्रभाषा कान्वेन्शन हुआ। यद्यपि उसको हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था, पर उसमें किस प्रकार के महानुभाव आये थे, इस पर विचार कीजिये।

मैं कहना चाहता हूँ कि इस प्रकार का कान्वेंशन इससे पहले इस देश में कभी नहीं हुआ। उसमें बंगाल से डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी और श्री सजनीकांत दास, जो कि बंगीय साहित्य परिषद् के मंत्री हैं, आये थे। उसमें करनाटक से भी श्रीयुत एस० कृष्ण शर्मा आये थे, जो कन्नड़ साहित्य परिषद् के मंत्री हैं। उस में मलयालम के महाकवि बलातोल पधारे थे, जिनका मलयालम साहित्य में वही स्थान है, जो बंगीय साहित्य में रवीन्द्र बाबू का था। मलयालम के श्री कुशान राज भी उसमें आये थे। मराठी के महामहोपाध्याय श्री कानेजी उसमें नहीं आ सके; उन्होंने उसके लिये अपना मत भेजा था। उड़ीसा से भी आर्तवल्लभ महन्ती आये थे। तामिल के श्री नीलकंठ शास्त्री और डाक्टर राघवन जी आये थे। तेलगू के श्री सोमय्याजी आये थे और श्री विश्वनाथ सत्यनारायणजी पधारे थे। इस प्रकार इस परिषद् को यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था, पर इसमें अन्य भाषाओं के बड़े-बड़े विद्वानों ने भाग लिया था और उन्होंने यह तय किया कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को दस वर्ष में लेना चाहिए। तो पाँच वर्ष से हम दस वर्ष पर आ गये और हमने यह स्वीकार किया कि धीरे-धीरे दस वर्ष में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले ले। उसके पश्चात् जब हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओं ने कहा कि दस वर्ष का समय कम मालूम होता है और यह पन्द्रह वर्ष होना चाहिए, तो हमने १५ वर्ष स्वीकार कर लिया। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा करके हमने उन पर कोई उपकार किया है। उपकार तो उनका हम मानते हैं और उनके अनुगृहीत हैं कि उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि स्वीकार किया, पर हम यह अवश्य कहना चाहते हैं कि उनके सुभीते के लिये हमने स्वीकार किया कि दस वर्ष के स्थान पर १५ वर्ष कर दिये जायें, तो हमें आपत्ति नहीं। हम इस बात को जानते हैं कि किसी व्यक्ति के जीवन में पाँच या दस या पन्द्रह वर्ष कोई चीज हो सकते हैं; परन्तु देश के जीवन में यह समय बहुत बड़ा समय नहीं है।

इसलिये हम ने दस वर्ष के स्थान पर १५ वर्ष को स्वीकार किया। सवाल यह है कि हम १५ वर्ष में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को लाना चाहते हैं या पन्द्रह वर्ष में भी नहीं। कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस सम्बन्ध में अपना स्पष्ट मत दिया है, जो राष्ट्रभाषा कन्वेन्शन हुआ, उसने भी इस विषय में साफ तौर पर कहा है। फिर आज श्री गोपाल स्वामी आयंगर जी यह कहते हैं कि वह तो १५ वर्ष के बाद भी एक बड़े लम्बे समय को देखते हैं, जिस समय कि हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले सकेगी। मैं बड़े अदब के साथ उनसे यह कहना चहाता हूँ कि कम से कम हम लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते। यह हमारा स्पष्ट मत है।

तीसरा विषय जिस पर मैंने सुधार पेश किया है, वह यह है कि जिन प्रान्तों में हिन्दी को स्वीकार कर लिया गया है और जिन प्रान्तों की अदालतों में आज हिन्दी चल रही है, वहाँ पर हम क्यों अग्रेजी को थोपना चाहते हैं। आप संयुक्त प्रान्त को ही लीजिये। वहाँ पर सारे बिलों के मसविदे, सारे प्रस्ताव, सारे प्रश्न हिन्दी में ही होते हैं। अब जो आयंगरजी की धारा यहाँ पेश हो रही है, वह अंग्रेजी में हो, यह तो मामले को आगे न बढ़ा कर पीछे हटाना हुआ। इसको हम भला कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि जिन प्रान्तों में अभी भी हिन्दी में काम चल रहा है, वहाँ भी अंग्रेजी को लादा जाये। जहाँ कचहरियों में अभी भी हिन्दी में काम चल रहा है, वहाँ भी अंग्रेजी को लादा जाये। यह तीसरा विषय है, जिस में हम बहुत बड़ा मतभेद रखते हैं, अपने दक्षिण भारत के बन्धुओं से।

अब मुझे कुछ अन्य बातें कहनी हैं। हम हिन्दी का पक्ष लेने वालों पर एक आक्षेप होने वाला है कि हम इस विषय को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से देखते हैं। यह आक्षेप हमारे बड़े-बड़े नेताओं ने हम पर किया है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि जहाँ तक हम लोगों का सम्बन्ध है, हम इस विषय को साम्प्रदायिकता को दृष्टि से जरा भी नहीं देखते। हम इस विषय को राष्ट्रीय दृष्टि से देखते हैं। मैं अपने सम्बन्ध में आपसे कह सकता हूँ कि ३० वर्ष के सार्वजनिक जीवन में मैं आज तक किसी भी साम्प्रदायिक संस्था का सदस्य नहीं रहा हूँ। यह बात मौलाना अबुलकलाम साहब जानते हैं कि जब सन् २१ में खिलाफत का आन्दोलन चला था, तो मैं स्वयं सेन्ट्रल खिलाफत कमेटी का सदस्य था। दूसरे लोगों को आप ले लीजिये। जैसे टंडनजी हैं और दूसरे लोग, जो आज हिन्दी के आन्दोलन में किसी प्रकार का भाग ले रहे हैं, क्या कभी उनका किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिक संस्था से सम्बन्ध रहा है।

अपने सम्बन्ध में इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली दो बातें मैं आपको और बताना चाहता हूँ। एक जमाना था कि जब हमारे जबलपुर नगर में हिन्दी मुस-

लमानों के दंगे हुआ करते थे। उस समय हमारे यहाँ एक मस्जिद तोड़ दी गई। उस मस्जिद को मैंने वहाँ अपने धन से बनवा दिया। हमारे प्रान्त के खंडवा नगर में कुछ लाख रुपया लगा कर मेरी माता के नाम पर मेरे पिताजी ने एक धर्मशाला बनवाई है। इस धर्मशाला में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की स्थापना की गई है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा विनोबा भावेजी ने की। इस मन्दिर में लक्ष्मीनारायण की मूर्ति के साथ सब धर्मों के ग्रन्थों की भी स्थापना की गई है। वहाँ कुरान की स्थापना की गई है, बाइबिल की स्थापना की गई है और बौद्ध धर्म के ग्रंथों की स्थापना की गई है, जैन धर्म के ग्रन्थों की स्थापना की गई है, सिख धर्म और पारसी धर्म के ग्रन्थ भी वहाँ स्थापित हैं। सब धर्मों के ग्रन्थों की वहाँ पर इज्जत के साथ स्थापना की गई है। हिन्दी आन्दोलन करने वालों को साम्प्रदायिक कहना, बड़ा भारी अन्याय है। उर्दू भाषा केवल मुसलमानों की ही अकेली भाषा है, यह मैं नहीं कहता। मैं यह मानता हूँ कि उर्दू भाषा में इस देश के बड़े-बड़े हिन्दू विद्वानों ने, कवियों ने भी रचना की है। मगर मैं एक बात कहे बिना नहीं रह सकता कि उर्दू भाषा अधिकतर देश के बाहर की चीजों को ही देखती रही है। आप उर्दू के साहित्य को अच्छी तरह देख सकते हैं। साहित्य का मुझे थोड़ा बहुत ज्ञान है। आप उर्दू साहित्य को देखेंगे, तो आप को कहीं भी हिमालय का वर्णन नहीं मिलेगा। आपको उसकी जगह कोह काफ़ का वर्णन मिलेगा। हमारे देश की कोयल को आप कभी उसके साहित्य में नहीं पायेंगे। आप को सिर्फ बुलबुल का वर्णन मिलेगा। भीम और अर्जुन की जगह पर आपको रुस्तम का वर्णन मिलेगा, जिसका इस देश से कोई भी सम्बन्ध नहीं है ; इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि हम पर साम्प्रदायिकता का जो आक्षेप हो रहा है, वह बिल्कुल गलत है। मैं आपसे यह बात उर्दू के किसी द्वेष की वजह से नहीं कह रहा हूँ। हम उर्दू से प्रेम रखते हैं और बराबर उससे हमारा प्रेम रहेगा। मगर मैं यह अवश्य कहूँगा कि हिन्दी के समर्थक साम्प्रदायिक नहीं, जो उर्दू का समर्थन करते हैं वे साम्प्रदायिक हैं।

हमारा देश सेक्यूलर स्टेट है और हम सब लोग इसको स्वीकार करते हैं। हम सब धर्म वालों को एक ही दृष्टि से देखते हैं। हम किसी धर्म के बीच में रोड़ा अटकाना नहीं चाहते, पर हम इस बात को मानते हैं कि सेक्यूलर स्टेट होते हुए भी हमारे देश में दो संस्कृति नहीं हैं।

चीन में भी मुसलमान रहते हैं, रूस में भी मुसलमान रहते हैं, मगर चीन और रूस के मुसलमानों और वहाँ के अन्य धर्मावलंबियों में कोई भेद नहीं है। वहाँ के निवासियों के नाम भी हम देखें, तो हमें कोई अन्तर मालूम नहीं पड़ता।

उनकी पोशाक, उनकी भाषा और उनकी संस्कृति एक ही है। यह बात सत्य है कि सेक्यूलर स्टेट को हमने मान लिया है। मगर हमने इसका यह अर्थ तो कभी नहीं समझा कि सेक्युलर स्टेट मानना अनेक संस्कृतियाँ मानना है। यह एक पुराना देश है और इसका इतिहास पुराना है। इस देश में हजारों वर्षों से एक ही संस्कृति चली आई है और वह परम्परा अभी तक कायम है। इस परम्परा को रखने के लिये और इस बात का खंडन करने के लिये कि हमारी दो संस्कृतियां हैं, हम इस देश में एक भाषा और एक लिपि रखना चाहते हैं।

प्रान्तीय भाषाओं से हमारा कोई द्वेष नहीं है। प्रान्तीय भाषाओं की तरक्की बग़ैर केन्द्रीय भाषा की भी उन्नति नहीं हो सकती। यह बात मैं अपने मित्रों को खुश करने के लिये नहीं कर रहा हूँ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सभापति के नाते मैंने जो भाषण मेरठ में दिया था, उस वक्त भी मैंने यह बात साफ कर दी थी कि हर प्रान्तीय भाषा की भी उन्नति होनी चाहिए और अपने-अपने प्रान्त में उस का सर्वोच्च स्थान होना चाहिए। वहाँ की शिक्षा का माध्यम, वहाँ की अदालतों की भाषा, वहाँ की असेम्बली की भाषा, प्रान्तीय भाषा हो। प्रान्तीय भाषा के सिवाय प्रान्तों में रहने वाली अन्य जनता की भाषा को उस प्रान्त में मान्य न किया जाये, यह भी मैं नहीं कहता। पर जिस प्रकार कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने प्रस्ताव में कहा और स्वीकार किया है कि अगर किसी प्रान्त में २० प्रतिशत व्यक्ति इस बात की इच्छा करें कि अमुक भाषा उस प्रान्त में स्वीकार की जाये, तभी यह हो। अगर एक प्रतिशत, दो प्रतिशत व्यक्ति इस बात की माँग करें कि उनके प्रान्त में दूसरी भाषा भी चले, तो उनके प्रान्त के विकास में बाधा डालना होगा ; इसलिये मैंने एक और संशोधन भेजा है, जिसमें यह कहा गया है कि अगर किसी प्रान्त में २० प्रतिशत व्यक्ति यह माँग करे कि अमुक भाषा वहाँ और स्वीकार की जाये, तो जैसा कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने एक प्रस्ताव में मान लिया है, वहाँ पर यह बात की जा सकती है। अंग्रेजी का स्थान हिन्दी जल्दी से जल्दी ले ले, यह हमारा सबसे बड़ा लक्ष्य है। इसके लिये मैंने अपने संशोधन में जो बात कही है, वह यह है कि एक कमीशन स्थापित हो, एक पार्लियामेन्टरी कमेटी स्थापित की जाये, एक प्रकार की दो चीजें न हों। बल्कि एक ही चीज हो, यानी पार्लियामेन्टरी कमेटी। पार्लियामेन्टरी कमेटी को यह काम सौंप दिया जाय कि वह १५ वर्ष के अन्दर धीरे-धीरे हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर किस प्रकार ला सकती है।

अन्त में मैं कहना चाहता हूँ कि स्वतंत्रता के साथ, स्वतंत्र भारत कैसा होगा इसकी भी हमने कल्पना की थी, इस देश की जनता ने भी कल्पना की थी। वह कल्पना तब तक पूरी नहीं हो सकती, जब तक कि हम भाषा के प्रश्न को हल न कर

लें। स्वराज्य का अर्थ इस देश के लोग तभी समझेंगे, जब कि भाषा का प्रश्न पूरी तरह से हल हो जायेगा।

मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि हिन्दी भाषा को इस देश के सभी निवासी राष्ट्रभाषा के रूप में, राज्यभाषा के रूप में, स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि भाषा के विषय में किसी प्रकार की कटुता न आने पाये। जहाँ तक हिन्दी का सवाल है, उसको पंडित जवाहरलाल नेहरू का भी आशीर्वाद प्राप्त है। और आज नहीं, यह आशीर्वाद उसे १८ वर्ष पहले प्राप्त हो चुका था। इस सम्बन्ध में उन्होंने १८ वर्ष पहले जो एक पत्र लिखा था, वह मैं आपको पढ़ कर सुनाता हूँ।

कोलम्बो १६-५-३१

मुझे बहुत खेद है कि मैं इस समय मदुरा नहीं आ सकता। मैं चाहता था कि मैं वहाँ जाऊँ और तमिलनाड प्रान्त के भाइयों से मिलूँ और अगर उनकी कुछ सेवा कर सकूँ, तो वह करूँ। खासकर मैं हिन्दी सम्मेलन में हिस्सा लेना पसन्द करता। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होना तो पूरी तौर से तय हो गया है और कांग्रेस का कार्य भी अब बहुत कुछ हिन्दी में होता है। यह बहुत खुशी की बात है कि तमिलनाड प्रान्त में हिन्दी का प्रचार खूब हो रहा है। इस शुभकार्य में मैं खुशी से सहायता देता, लेकिन मजबूरी से नहीं आ सकता।

मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी सम्मेलन सफलता से होगा और उसके कारण हिन्दी-प्रचार और भी बढ़ेगा।

—जवाहरलाल नेहरू

यह पंडितजी ने १८ वर्ष पहले लिखा था और मुझे इस बात को देखकर हर्ष होता है कि १८ वर्ष पहले उन्होंने जो भविष्यवाणी की थी, उसको आज हम पूरा करने के लिये यहाँ पर एकत्रित हुए हैं।

लोक-सभा में

जनरल बजट १९५१-५२

२७ मार्च, १९५१

सेठ गोविन्ददास—सभापतिजी, मैं आज कोई भाषण करना नहीं चाहता। मैं दो या तीन मिनट के अन्दर माननीय मंत्रीजी से कुछ पूछना चाहता हूँ और कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

मैं पूछना यह चाहता हूँ कि अगर हिन्दी को हमें पन्द्रह वर्ष के अन्दर इस देश में वह स्थान देना है, जो कि अंग्रेजी को प्राप्त था, तो इस सम्बन्ध में उनकी क्या योजना है?

यदि वह कहते हैं कि आज से काम होना चाहिये, तो यह काम ऐसा नहीं है कि जिस को कोई दूसरा कर सके। इसे हमारे माननीय मंत्रीजी ही कर सकते हैं। उन्हें सबसे पहला काम यह करना होगा कि जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है, उन प्रांतों में हिन्दी का प्रचार कैसे हो, इसकी योजना बनायें और उस योजना के अनुसार काम करें।

दूसरी बात जो उन्हें करनी है, वह यह है कि हिन्दी में हम इस प्रकार की वैज्ञानिक शब्दावली और साहित्य तैयार करें कि हमें अंग्रेजी की जरूरत न रहे और इन दो सबसे बड़े कामों के लिए, यानी जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है उनमें, हिन्दी पहुँचाने के लिये और वैज्ञानिक शब्दावली तथा साहित्य को तैयार करने के लिए हमारे अर्थ-मंत्रीजी का यह सर्व-प्रथम कर्त्तव्य है कि यथेष्ट द्रव्य दें।

एक और निवेदन मुझे माननीय मंत्रीजी से करना है। जब हमने हिन्दी को राज-भाषा स्वीकार किया है, तो कम-से-कम हिन्दी की इज्जत बढ़ाने का प्रयत्न उन्हें करना चाहिये। यह नहीं कि वे यह कहें कि वर्तमान हिन्दी पुरानी हिन्दी नहीं है, रामायण हिन्दी में नहीं लिखी गई, सूरसागर हिन्दी में नहीं लिखा गया, अमुक अमुक कवियों ने जो कुछ लिखा है वह ब्रजभाषा में है, या अवधी में है, हिन्दी में नहीं है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि जहां तक विशेषज्ञों का सम्बन्ध है, उनका तो ऐसी बातों में मतभेद रहता ही है, और मेरा तो ऐसा मत है कि विशेषज्ञों ने विश्व का जितना लाभ किया है, उससे कहीं अधिक हानि की है। मैं माननीय

मंत्रीजी से कहना चाहता हूँ कि वे इन बातों में विशेषज्ञों के फेर में न पड़ें। आज हिन्दी का जो रूप है वह ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, राजस्थानी आदि जो हमारी पुरानी भाषाएँ थीं, उनसे निकलकर बना है। क्या आज उर्दू का वही रूप है, जो आज से दो या तीन सौ वर्ष पहले था ? क्या आज अंग्रेजी का वही रूप है. जिस में उसे चासर या शेक्सपियर ने लिखा था ? ऐसी बात नहीं है। भाषाएँ सदा परिवर्तित होती रहती हैं ; इसलिए मैं उनसे कहूंगा कि वर्तमान हिन्दी को इस प्रकार कोसने का प्रयत्न करना कि वह पुरानी हिन्दी से नहीं निकली है, उसमें कोई काव्य नहीं है, उसमें यह नहीं है, वह नहीं है, यह बात उपयुक्त नहीं होगी। हमें इन सब मतभेदों में नहीं पड़ना है। मैं यह दावे के साथ कहता हूँ कि चाहे माननीय मंत्रीजी कहें या और कोई कहे, हम रामायण को बराबर हिन्दी का ग्रन्थ मानते । हम सूरदास को हिन्दी का कवि मानते हैं, हम बिहारी को हिन्दी का कवि मानते हैं, हम भूषण को हिन्दी का कवि मानते हैं। जो कुछ ब्रज-भाषा में लिखा गया या अवधी में लिखा गया, वह सब हिन्दी के कवियों ने लिखा है और आज हिन्दी का जो रूप है, वह उन से निकल कर बना है। उसी भाषा को हमने अपनी राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। उस की इज्जत बढ़ाना और उसको अपने पद पर पहुँचाना, यह काम होना चाहिये हमारे माननीय शिक्षा-मंत्रीजी का; यह नहीं कि वे यहाँ और विदेशों में हिन्दी की इज्जत को घटाने का प्रयत्न करें। जो भाषण हाल ही में उन्होंने दिया था, वह भाषण हिन्दी के लिए दुर्भाग्य की बात थी, सौभाग्य की नहीं।

मेरा समय खत्म हो रहा है; इसलिये मैं माननीय मन्त्रीजी से यही कहना चाहता हूँ कि वह १५ वर्ष के अन्दर हिन्दी को अंग्रजी का स्थान दिलाने के लिए एक विषद योजना बनायें और हमारे अर्थ-मंत्रीजी उन की द्रव्य द्वारा सहायता करें साथ ही मैं आशा करता हूं कि मंत्रीजी ने जो भाषण दिया है, इस प्रकार का कोई भाषण वह भविष्य में न देंगे और हिन्दी की प्रतिष्ठा को हिन्दुस्तान में और विदेशों में बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

राष्ट्रपति के भाषण पर

२० मई, १९५२

सेठ गोविन्ददास—महोदय, अंगरेजी की इस लगातार झड़ी के पश्चात् मैं आशा करता हू कि हिन्दी का भी एक झला सुहावना जान पड़ेगा। मैं ने आशा की थी कि जिस समय बालिग मताधिकार पर चुनी हुई यह संसद आरम्भ होगी, उस

समय हमने जिस भाषा को राज्य-भाषा माना है, उस को कुछ अधिक स्थान प्राप्त होगा, परन्तु मुझे पिछले दो दिनों में बड़ी निराशा हुई। मैं देखता हूँ कि अब भी अंग्रेजी से हमारा मोह जा नहीं रहा है। जो लोग हिन्दी जानते हैं, वह भी अंग्रेजी में बोलने का प्रयत्न करते हैं और जो प्रश्न किये जाते हैं वह भी, उन मंत्रियों से भी, जो कि हिन्दी जानते हैं, अंग्रेजी में ही किये जाते हैं।

अंग्रेजी या उर्दू शब्दों का बहिष्कार करने की बहुत ज्यादा जरूरत नहीं है। हम तो अपनी राज्य-भाषा बना रहे हैं, जिसमें अधिक-से-अधिक शब्दों का समावेश कर सकें।

अपनी इस संसद् के सदस्यों से राज्य-भाषा के सम्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् अपने राष्ट्रपति को मैं इस बात पर बधाई देना चाहता हूँ कि उन्होंने शपथ हिन्दी में ली और उसके पश्चात् उन्होंने जो अपना प्रथम भाषण हमारी संसद् में दिया, वह भी हिन्दी में था। मैं आशा करता हूँ कि जो मार्ग हमारे राष्ट्रपति-जी ने हमको बताया है, हम उस मार्ग पर चलने का प्रयत्न करेंगे।

मुझे कल के कुछ भाषणों को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। जब माननीय सदस्य श्री गोपालन ने यह कहा कि उन्हें तो देश में युद्ध की परिस्थिति दिखाई देती है, मेरी समझ में नहीं आया कि वह क्या कह रहे हैं।

बाबू रामनारायणसिंह—आँख खोल कर देखिये।

सेठ गोविन्ददास—आँख खोलकर देखने के पश्चात् भी मैं युद्ध की परिस्थिति नहीं देख रहा हूँ। कम-से-कम मेरे वयोवृद्ध मित्र रामनारायणसिंहजी को अब भी काफी दिखाई देता है, और उन्हें भी यदि युद्ध की परिस्थिति दिखाई देती है, तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मेरा ऐसा मत है कि शायद श्री गोपालनजी को, जिस प्रकार का युद्ध चुनाव में हुआ था वह युद्ध याद आ गया और उस चुनाव के युद्ध के कारण उन को अभी भी सर्वत्र युद्ध ही युद्ध दिखाई दे रहा है।

फिर उन्होंने एक बात और कही कि ऐसी स्वतंत्रता भी हमारे काम की नहीं है। मैं यह बात मानता हूँ कि केवल स्वतंत्रता से हमारा काम नहीं चलने वाला है ; परन्तु इसी के साथ मैं एक बात और कह देना चाहता हूँ कि स्वतंत्रता को नून, तेल लकड़ी की तखड़ी पर नहीं तोला जा सकता। स्वतंत्रता परम पवित्र वस्तु है। स्वतंत्रता हमारे शताब्दियों के महान् त्याग के पश्चात् प्राप्त हुई है। हमें स्वतंत्रता महात्मा गांधी के प्रताप के कारण मिली है। आज हमें जो थोड़े से कष्ट हैं, यदि उससे अधिक कष्ट भी हो जायं, तो भी हमें स्वतंत्रता को सर्वोपरि रखना है। हमें स्वतंत्रता को इस नून, तेल, लकड़ी की तखड़ी में नहीं तौलना है।

फिर कुछ बातें श्री गोपालन ने वैदेशिक नीति के बारे में कहीं। उन्होंने कहा कि उनकी समझ में नहीं आता कि हमारी वैदेशिक नीति अमरीका के प्रति एक प्रकार की और रूस तथा चीन के प्रति दूसरी प्रकार की कैसे है। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि क्या वह भूल गये कि जब कोरिया का युद्ध चल रहा था, उस समय अमरीका की नीति के विरुद्ध हमारे प्रधान मंत्री ने कहा था कि ३८वें अक्षांश को पार नहीं करना चाहिये। क्या वह घोषणा अमरीका की नीति के विरुद्ध नहीं थी? क्या वह भूल गये कि हमारे प्रधान मन्त्री ने सब से पहले कहा था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को भी सम्मिलित करना चाहिये। हमारी वैदेशिक नीति अमरीका के प्रति, रूस के प्रति, चीन के प्रति, सब के प्रति एक-सी है। मैंने देखा है कि न्यूजीलैंड में जब २८ देशों के कोई ७८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए, डेढ़ वर्ष पूर्व की बात है, तब इसी वैदेशिक नीति के कारण हमारे देश का कितना सम्मान था। आज यदि संसार में हमारी इतनी अधिक प्रतिष्ठा है तो महात्मा गांधी और स्वतंत्रता इन दो बातों के सिवा हमारी वैदेशिक नीति के कारण है।

फिर श्री गोपालन ने भाषावार प्रान्तों की रचना के संबंध में कहा। जहाँ तक भाषावार प्रान्तों की रचना का सम्बन्ध है, मैं उन के साथ हूँ। मैं स्वयं चाहता हूँ कि इस देश में भाषावार प्रान्तों की रचना हो। यदि हम इस देश में प्रत्येक प्रान्त की भाषा को उचित स्थान देना चाहते हैं। प्रत्येक प्रान्तीय भाषा के साहित्य को उचित स्थान देना चाहते हैं और प्रत्येक प्रान्त की जो जो आन्तरिक इच्छाएँ हैं उनके अनुसार उस प्रान्त के कार्य को चलाना चाहते हैं, तो बिना भाषावार प्रान्तों की रचना के यह सम्भव नहीं होगा। भाषावार प्रान्तों की रचना के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति बिल्कुल स्पष्ट है। प्रश्न यह है कि भाषावार प्रान्तों की रचना कब की जा सकती है? इस समय जब कि हमारे सामने अनेक महान् समस्याएँ मौजूद हैं, जिनका हमें सामना करना पड़ रहा है, तो ऐसी बातें हम को कुछ देर के लिये स्थगित करनी होंगी और आज जैसी परिस्थिति है, उसमें भाषावार प्रान्तों की रचना कदाचित् कुछ समय के लिये संभव नहीं होगी।

फिर मुझे डा० लंकासुन्दरम् और एक सज्जन जो उस ओर से बोल रहे थे, मेरा खयाल है उनका नाम चक्रवर्तीजी था या चटर्जी था, उनको यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह सरकार तो अल्पमत की सरकार है, बिल्कुल ठीक नहीं है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि जितने अधिक मत कांग्रेस दल क. मिले हैं, उतने अधिक किस दल को मिले हैं और यदि कांग्रेस दल को पचास फी सदी से कम मत मिले, तो यह कहना कि यदि कांग्रेस के उम्मीदवारों के विरुद्ध एक-एक उम्मेदवार खड़ा होता, तो कांग्रेस हार जाती--बड़ी गलत बात है। क्या जितने लोग

कांग्रेस के उम्मीदवारों के विरुद्ध लड़े, उनका यह खयाल है कि यदि कांग्रेस के विरुद्ध केवल एक-एक उम्मीदवार खड़ा होता, तो वह सब के सब कांग्रेस के उम्मीदवार को हरा देते ? यदि वह ऐसा समझते हैं, तो भूल करते हैं।

यदि इतने अधिक उम्मीदवार कांग्रेस उम्मीदवारों के खिलाफ खड़े न होते, तो कांग्रेस को पचास प्रतिशत से अधिक मत मिलने वाले थे, क्यों कि इस समय जो मत कांग्रेस उम्मीदवारों के खिलाफ गये, उनमें से भी कांग्रेस उम्मीदवारों को मिलते। यह जो मत कांग्रेस उम्मीदवारों के विरुद्ध पड़े, इन के बारे में यह कहना कि यह सब कांग्रेस उम्मीदवारों के विरुद्ध पड़ते और जो लोग विरुद्ध खड़े होते, वे लोग जीत जाते, यह बिल्कुल ग़लत चीज है।

कुछ बातें मेरी बहन श्रीमती सुचेता कृपलानीजी ने कहीं। उन की जिस बात पर मुझे सबसे अधिक आश्चर्य हुआ, वह यह थी कि राष्ट्रपति के भाषण में कोई नई बात नहीं है। यहाँ हम लोग कोई आतिशबाजी चलाने को या फुलझड़ियां चलाने को नहीं बैठे हैं कि हर बार नई-नई बातें लाते रहें। किसी भी राष्ट्र का काम इस तरह की तमाशेबाजी से नहीं चल सकता। हर बार हम को यह आशा क्यों करनी चाहिये कि कोई-न-कोई नई बात, कोई-न-कोई नया तोहफा हमारे सामने पेश किया जाया करे। इसकी आवश्यकता नहीं है। हम एक नीति का अनुसरण कर रहे हैं। उस नीति पर चलते हुए हम को कुछ समय बीत गया है। हम उसी नीति का अनुसरण करना चाहते हैं और हम यह मानते हैं कि उस नीति का अनुसरण करने से ही देश का कल्याण है। तब हम नई-नई बातें करने का क्यों प्रयत्न करें, यह मेरी समझ में नहीं आता।

उत्पादन बढ़ाने के संबंध में श्रीमती कृपलानी ने कुछ सुझाव दिये हैं और उनमें से कुछ सुझाव ऐसे हैं कि जिन से मैं भी समहत हूँ; पर यहाँ पर बार-बार जो यह कहा जाता है कि भूमि का पुनर्वितरण होने से ही उत्पादन बढ़ सकेगा, यह ग़लत बात है। यदि हम को अपनी भूमि का उत्पादन बढ़ाना है, तो कुछ आधुनिक साधनों का भी हमें उपयोग करना चाहिए। हमें सहकारी फार्मों की आवश्यकता है, यह मैं मानता हूँ। सहकारी फ़ार्म बड़े-बड़े होते हैं, उन में आधुनिक साधनों का उपयोग किया जा सकता है ; परन्तु यदि भूमि का वितरण कर दिया जाय और भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े सब लोगों को दे दिये जायें, तो उस से हमारा उत्पादन नहीं बढ़ेगा।

इसलिये जहाँ तक भूमि के वितरण का प्रश्न है, इस प्रश्न पर हम को वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना होगा। कहीं ऐसा न हो कि इस बात का प्रयत्न करते हुए हम चलें कि सब लोगों को भूमि मिल जाये और उस का नतीजा यह

निकले कि भूमि का उत्पादन जितना अभी होता है उससे भी अधिक घट जाय।

यह कहा गया है कि इन पांच वर्षों में हमने क्या प्राप्त किया है। यदि कोई निष्पक्षता से विचार करे, तो उस को मानना पड़ेगा कि हम जो कुछ इन पांच वर्षों में प्राप्त कर सके हैं, वह मानव-इतिहास में किसी सरकार ने हमारी परिस्थिति के सदृश परिस्थिति में, इतने थोड़े समय में प्राप्त नहीं किया है। क्या हम भूल गये इस बात को कि देश का एकीकरण सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में जिस प्रकार हुआ, बिना एक बूंद खून बहाये, ऐसा दुनिया में कहीं नहीं हुआ। क्या हम इस बात को भूल गये कि आज तक एक देश से दूसरे देश को सत्तर लाख मानव कभी भी नहीं आये। इन सत्तर लाख मानवों को, चाहे आज कुछ कष्ट ही क्यों न हो, हम ने बसाने का प्रयत्न किया। क्या यह छोटी बात है? हम मानते हैं कि आज हम को अन्न का कष्ट है, पर इसी के साथ हमें यह भी मानना होगा कि हमने इतना कष्ट रहते हुए भी, जिस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य में बंगाल की दुर्घटना हुई, उस प्रकार की किसी दुर्घटना को यहाँ पर नहीं होने दिया, और इतना कष्ट रहते हुए भी आज पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक एक आदमी भी इस देश में भूख से नहीं मरा। फिर इतनी बड़ी-बड़ी योजनाएँ हमारे सामने हैं, जिन को हम कार्य-रूप में परिणत करना चाहते हैं। हां, हाथ पर सरसों नहीं उगाई जा सकती। यदि कोई अन्य दल हमारे स्थान पर होता, तो हम जो कुछ कर सके, उतना उसके लिए करना सम्भव नहीं होता। आलोचना करना अलग बात है। जब कार्य करना पड़ता है, तब दूसरी बात हो जाती है।

मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि चुनाव निष्पक्षता से नहीं लड़े गये। अगर चुनाव निष्पक्षता से न लड़े जाते, तो मेरे दायीं ओर और आपके बायीं ओर जो महानुभाव बैठे हैं, वे दृष्टिगोचर नहीं होते। हम सब बातों का विचार करें, तो हम देखेंगे कि हम ने क्या-क्या किया है।

हम यह मानते हैं कि हम से बहुत-सी गलतियां हुई होंगी। हम यह मानते हैं कि हमने जो कुछ किया है, उस से अधिक किया जा सकता होगा। हम यह भी मानते हैं कि अगर कुछ विधायक सुझाव हमारे सामने रखे जायें, तो यह हमारा सौभाग्य होगा और हम उन को कार्य-रूप में परिणत करने का प्रयत्न करेंगे। लेकिन यह कहना कि इन पांच वर्षों में हम ने कुछ नहीं किया, हमारी विदेशी नीति खराब रही, देश के सम्बन्ध में भी हमारी नीति खराब है, तो मैं आप से कहना चाहता हूँ कि यह केवल प्रचार है। इस में कोई सच्चा तथ्य नहीं है और

यदि हम गांधीजी के बतलाए हुए सत्य का भी अवलम्बन छोड़ देना चाहते हैं, तो हमारे देश का कल्याण होने वाला नहीं है।

मैं मूल प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करना चाहता हूँ।

राष्ट्रपति के भाषण पर

१३ फरवरी, ५३

सेठ गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मैं उस प्रस्ताव का समर्थन करने को खड़ा हुआ हूँ, जो श्री अग्रवालजी ने उपस्थित किया है। जो भाषण अभी श्री हीरेन मुखर्जी का हुआ, उस को सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उस भाषण में प्रधानतया हमारी वैदेशिक नीति की बुराई की गयी और यह कहा गया कि हम अमेरिका के शिखंडी हैं। जब मैंने श्री हीरेन मुखर्जी के मुंह से महाभारत की बात सुनी, तब मुझे कुछ और आश्चर्य हुआ। मैं तो समझता था कि वे अपने भाषण में महाभारत का दृष्टान्त न देकर रूस को या चीन की किसी पुस्तक का दृष्टान्त देंगे। जब उन्होंने शिखंडी की बात कही, तब शायद वे इस बात को भूल गये कि कोरिया के युद्ध को समाप्त करने के लिए जो प्रस्ताव हमने रखा था, उस प्रस्ताव का पहले अमेरिका विरोधी था। उन्होंने उस समय के अखबारों को पढ़ा होगा। मैं उस समय विदेशों में था और मैंने उस समय के अखबारों को थोड़ा-सा ध्यानपूर्वक पढ़ने का प्रयत्न किया था। मैं श्री हीरेन मुखर्जी को स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि सब से पहले हमारे कोरियन प्रस्ताव का विरोध अमरीका की ओर से था। बाद में अमरीका ने उस का समर्थन किया। श्री हीरेन मुखर्जी को यह बात भी स्मरण होगी कि उसी समय अखबारों में यह भी छपा था कि चीन उस के बहुत विरुद्ध नहीं है। चीन का इतना अधिक विरोध बाद में प्रदर्शित हुआ। पहले उसका प्रदर्शन नहीं हुआ था। श्री हीरेन मुखर्जी का भाषण सुन कर मुझे तो वह कहावत याद आई, जिसमें कहा जाता है कि मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त। जब भी श्री हीरेन मुखर्जी और उनके साथी बोलते हैं, तब जान पड़ता है, जैसे रूस और चीन बोल रहा है। सदा कहा जाता है, हम अपना रास्ता, जो कि हमने आरम्भ से ही पकड़ा हुआ है, छोड़ दें और हम रूस और चीन का अनुसरण करें। इसका अर्थ यह होगा कि हम हर बात में रूस और चीन का समर्थन किया करें। हम न अमरीका के सराहक हैं और न रूस और चीन के। हम न अमरीका की वैदेशिक नीति की सराहना करते हैं और न हम रूस और चीन की। हम दोनों गुटों में शामिल नहीं हैं। हम दोनों के समर्थक नहीं हैं। हमारी अपनी एक नीति है और मैं श्री हीरेन मुखर्जी से कहना चाहता हूँ कि मैं ने इस नीति का

समर्थन सारे देश में पाया है। मैं ईजिप्ट गया, ग्रीस गया, इटली गया, स्विट्जरलैंड गया, फ्रांस गया, इंगलैंड गया, जापान गया और उसके बाद मैं चीन भी गया, और जहाँ तक हमारी वैदेशिक नीति का सम्बन्ध है, मैंने देखा कि चीन के निवासी भी हमारी विदेशी-नीति की सराहना करते हैं। जब वे यह कहते हैं कि हमारी नीति अमरीका के और ब्रिटेन के अनुकूल जाती है, तब वे शायद इस बात को भूल जाते हैं कि यदि अमरीका भी कोई गलत बात करता है, तो हम अमरीका का भी विरोध करते हैं। मैं उन को स्मरण दिलाता हूँ कि जब कोरिया में ३८वें अक्षांश के पार करने का सवाल था, तब हमने अमरीका का विरोध किया था। इसके अलावा मैं उन्हें याद दिलाता हूँ कि सुरक्षा परिषद् में चीन को लाये जाने के हम सबसे बड़े समर्थक रहे हैं और अभी हाल में जो सुरक्षा परिषद् का अधिवेशन हुआ था ; उसमें भारतीय प्रतिनिधि मंडल की मंत्री श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने स्पष्ट कहा था कि सुदूरपूर्व के मसलों पर तब तक सच्चे ढंग से विचार नहीं किया जा सकता, जब तक कि चीन को सुरक्षा परिषद् में नहीं लिया जाता। जिस बात को हम उचित समझते हैं, उसमें हम अमरीका का समर्थन करते हैं, जिस बात को हम उचित समझते हैं रूस की और चीन की, उसमें हम चीन और रूस का समर्थन करते हैं। पंडित जवाहरलालजी की वैदेशिक नीति के कारण ही मैंने आज सारे संसार में भारतवर्ष की एक महान् प्रतिष्ठा को देखा, भारतवर्ष के प्रति सद्भावना को देखा और भारत के प्रति मैत्री के उद्गारों को देखा। यह अलग बात है कि यदि कोई बात चीन के हितों के विरुद्ध जाती है या रूस के हितों के विरुद्ध जाती है, तो रूस और चीन हमारी निन्दा करने लगते हैं और यदि कोई बात अमरीका के विरुद्ध जाती है, तो अमरीका हमारी निन्दा करने लगता है। जैसा मैंने अभी कहा कि जब कोरिया में ३८वें अक्षांश को पार करने का सवाल आया और जब चीन को सुरक्षा परिषद् में लिये जाने का सवाल आया, तब अमरीका ने हमारी निन्दा की थी। आज कोरिया में युद्ध-बन्दी करनेवाले हमारे प्रस्ताव की रूस और चीन निन्दा करते हैं। यह अलग बातें हैं। कोई भी, जो स्वतन्त्र वैदेशिक नीति होगी, उसमें यह बातें सदा ही होती रहेंगी ; पर मैं अपने अनुभव के आधार पर कहना चाहता हूँ कि इस वैदेशिक नीति के कारण ही आज समस्त संसार हमारा मित्र है। श्री हीरेन मुखर्जी ने कहा कि जब लड़ाई के बादल इतने जोरों से मंडला रहे हैं, तब भी हम विचलित नहीं है। बिलकुल ठीक है। आज दुनिया में अगर कहीं पर लड़ाई का भय नहीं है, तो वह भारतवर्ष में नहीं है। लड़ाई की खबरों से बाजारों में थोड़ी-बहुत घटा-बढ़ी हो जाया करती है, इसके अलावा यह नहीं मालूम होता कि भारतवर्ष की सरकार या भारतवर्ष की जनता लड़ाई के कारण विक्षुब्ध है। भारतवर्ष में हमारी वैदेशिक नीति के

कारण ही हमें शान्ति दिखाई देती है। आज हमको यहाँ वह भय नहीं दिखाई देता, जो मैं सारे संसार में देखकर आया हूँ। तो श्री राष्ट्रपतिजी के भाषण में वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया था और श्री हीरेन मुखर्जी ने उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा, उस विषय में मेरा यह निवेदन है।

देश की स्थिति के सम्बन्ध में जो कुछ राष्ट्रपतिजी ने कहा है, वह भी ध्यान देने योग्य है। यह आशा नहीं की जा सकती कि देश की आर्थिक स्थिति इतनी शीघ्र सुधर जायगी। दो सौ वर्षों तक देश पर अंग्रेजी राज्य था और जब अंग्रेज यहाँ से गये, तब इस देश को खंडहर के रूप में छोड़कर गये; अतः यह नहीं सोचा जा सकता कि पाँच वर्षों में कोई जादू हो जायगा और देश की आर्थिक स्थिति एकदम सुधर जायेगी; लेकिन यह सभी स्वीकार करेंगे कि देश की आर्थिक स्थिति पहले से अच्छी है। उत्पादन बढ़ा है, लोगों के कष्ट घटे हैं; पर यदि हम आंख खोलकर चीजों को न देखें और केवल हर बात में आलोचना करने पर कटिबद्ध हो जायें, तो हमारा काम नहीं चल सकता। आज भारतवर्ष दुनिया के सब से गरीब देशों में से एक है, यह मैं स्वीकार करता हूँ; किन्तु अगर यह माना जाय कि भारतवर्ष में कुछ नहीं हो रहा है, भारतवर्ष से अधिक गरीब और कोई देश नहीं है और जो छोटे-बड़े देश हमारे पड़ोस में हैं, उनमें बड़ी भारी तरक्की हो रही है, तो यह बात गलत है। इस मामले में चीन का दृष्टान्त बहुत दिया जाता है। यह कहा जाता है कि इन तीन वर्षों में, जब से चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई है, चीन स्वर्ग हो गया है। मैं अभी चीन हो कर आया हूँ। चीन में बड़े-बड़े प्रयोग हो रहे है, इसमें सन्देह नहीं। चीन के प्रति हमारी सारी सद्भावनाएँ हैं, इसमें भी किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए। हम चाहते हैं कि चीन तरक्की करे; लेकिन अगर यह कहा जाय कि चीन में गरीबी का अन्त हो गया है, तो मैं कहना चाहता हूँ कि चीन में यदि भारतवर्ष की जनता से अधिक नहीं, तो उस से कम गरीबी भी नहीं है। मैं कैंटन से लेकर पीकिंग तक रेल पर गया। चार दिन और चार रात जाते समय और चार दिन और चार रात आते समय मैंने रेल से ही यात्रा की। मैंने रेल में से और रेल से उतर कर भी चीन को देखा। मैंने वहाँ के शहरों और कसबों और गांवों को देखा। वहाँ की जनता की स्थिति आज भी, वहाँ पर बड़े-बड़े प्रयोग होने पर भी, भारतवर्ष से अधिक अच्छी नहीं है। शंघाई के आसपास मैंने स्लम्स मजदूरों की बस्तियाँ देखीं। दुनिया में शायद कहीं भी इतनी गंदी और घृणित बस्तियाँ नहीं हैं, जैसी कि शंघाई में हैं। कोई भी आदमी, जो यहाँ से चीन जाता है या रूस जाता है, प्रशंसा के पुल बांध देता है कि चीन में यह हो गया है, रूस में वह हो गया है। चीन के कुछ प्रोजेक्ट्स को भी मैंने देखा। उनके सम्बन्ध में भी मैंने चर्चा सुनी और मेरी राय है कि हमारे यहाँ की जो निर्माण योजनाएँ हैं, वे

चीन से कहीं बड़ी हैं। हमारे यहां उन पर निर्माण-योजनाओं का जिस तरह से काम चलाया जा रहा है, चीन से कहीं अधिक सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है। मैं यह मानता हूँ कि चीन में एक बहुत बड़ा प्रयोग हो रहा है ; पर चीन में सब से बड़ी बात यह है कि वहां की जो कमियां हैं, वे हमारे सामने नहीं आतीं। यहाँ पर जिस तरह श्री हीरेन मुखर्जी आदि हमारी सरकार की निन्दा करते हैं, हमारे यहां के अखबार जिस तरह से सरकार के विरुद्ध लिखा करते हैं, क्या कोई सोच सकता है कि चीन में या रूस में ऐसी बातें हो सकती हैं। चीन या रूस में किसी सार्वजनिक सभा में सरकार की कोई आलोचना नहीं की जा सकती। केवल सार्वजनिक सभा में ही नहीं, चीन में मैंने इतना आतंक देखा कि अगर दो आदमी बात करेंगे, तो खुलकर बात करेंगे, लेकिन अगर कोई तीसरा आदमी बैठा होगा, तो खुलकर बात नहीं हो सकती, क्यों कि उस समय उन आदमियों को डर लगा रहता है कि कोई गवाह न हो जाय। इसी प्रकार वहां के अखबार या तो सरकार के हैं या, सरकार के द्वारा नियन्त्रित हैं। तो, चीन में या रूस में जहां कहीं उन देशों की कमजोरियां हैं, वे दुनिया के सामने नहीं आ सकतीं। दुनिया के सामने वे आती ही नहीं, इससे आप यह न समझें कि मैं चीन की या रूस की कोई बुराई कर रहा हूँ। मेरा यह अभिप्राय नहीं है। वहाँ जो काम उन्होंने किया है, बहुत बड़ा काम है। वहाँ एक बड़ा प्रयोग हो रहा है। लेकिन यह कहना कि हमारे देश में कुछ नहीं हो रहा है, यहाँ नरक है और चीन तथा रूस में सब कुछ हो गया है, वह स्वर्ग हो गये हैं, मेरा मत ऐसे कथनों से नहीं मिलता। आज हमारा देश निर्धन है, यह मैं स्वीकार करता हूँ। यह सरकार भी नहीं कहती, सरकार के कोई समर्थक भी नहीं कहते, कांग्रेस भी नहीं कहती, कोई नहीं कहता कि हमारे यहां सब कुछ हो गया है। अगर सब कुछ हो जाता तो कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं रहती; पर इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि हमारे यहां भी बहुत बड़ा काम हुआ है और हो रहा है। जो लोग विदेशों से लौटकर आते हैं और वहां की प्रशंसा करते हैं, उन से मेरा कथन है कि वे आँख खोलकर, अपने देश में क्या हो रहा है, उस की ओर भी ध्यान दें। यह तो देश-भक्ति की बात नहीं है कि हम सदा दूसरों की प्रशंसा करें और अपनी निन्दा किया करें। राष्ट्रपतिजी ने इस अपने में भाषणइस सम्बन्ध में जो कहा है, उसे मैं सर्वथा ठीक समझता हूँ।

इसके बाद मुझे दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में कुछ कहना है, क्यों कि उस देश से भी मेरा कुछ सम्बन्ध रहा है। दक्षिण अफ्रीका में इस समय जो आन्दोलन है, वह भारतीयों का आन्दोलन है, ऐसा नहीं मानना चाहिये। दक्षिण अफ्रीका में इस आन्दोलन में जो लोग भाग ले रहे हैं, वे लोग केवल भारतीय नहीं हैं। इन भाग लेनेवालों में वे लोग शामिल हैं, जिन्हें वहां पर रंगीन कहा जाता है, कलर्ड पीपुल। साथ ही

जो वहां के मूल निवासी हैं, वे भी इस में शामिल हैं। जिस समय सन् १९३७-३८ में मैं अफ्रीका गया था, वहां पर इस प्रकार का सर्वदल मोरचा बनाना आरम्भ हुआ था और आज मुझे इस बात पर बहुत हर्ष है कि अफ्रीका में जो कुछ हो रहा है, उसमें ९० फीसदी वे लोग भाग ले रहे हैं, जो भारतीय नहीं हैं। जो लोग वहां पर सत्याग्रह करके जेल गये हैं, उन में भी ९० फी सदी ऐसे व्यक्ति हैं, जो कि भारतीय नहीं हैं। या तो वहां के मूल निवासी हैं, या वहां के रंगीन लोग हैं। आज आप जहां कहीं भी जाइये, किसी भी सभ्य देश में जाइये, किसी भी परिषद् में जाइये, सब जगह अफ्रीका की चर्चा होती है। अभी जब कनाडा में कामनवेल्थ कान्फ्रेन्स हुई और मैं भारत के प्रतिनिधि के रूप में वहां पर गया, तो वहां भी अफ्रीका की चर्चा हुए बगैर नहीं रही। मुझे इस बात का बड़ा हर्ष है कि आज सारे संसार का एक भी ऐसा सभ्य देश नहीं है, जो अफ्रीका की वर्तमान नीति का समर्थन करता हो। अफ्रीका के नेताओं में भी उसके विरोधी पैदा हो गये हैं। अफ्रीका में केवल एक पंचमांश श्वेतांग लोग हैं, शेष लोग या तो वहां के रंगीन लोग हैं, या मूल निवासी हैं। दो वर्ष पहले मैं न्यूजीलैन्ड गया था। न्यूजीलैंड में वहां की एक आदिम जाति रहती है। उस आदिम जाति के लोगों को मावरी कहते हैं। मावरियों की संख्या वहां पर सवा लाख या डेढ़ लाख है और श्वेतांगों की संख्या कोई १८ लाख है। मावरियों को भी इन श्वेतांगों ने पहले उसी प्रकार तंग किया, जिस तरह अफ्रीका में आज वहां के मूल निवासियों को किया जा रहा है; लेकिन मावरियों की इतनी कम संख्या रहने पर भी वे नहीं कुचले जा सके और अन्त में परिणाम यह निकला कि न्यूजीलैंड के श्वेतांगों को मावरियों को बराबर के अधिकार देने पड़े। तो जब इतनी कम संख्या के और इतने कम लोग मावरी भी श्वेतांगों से नहीं कुचले जा सके, तब मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि अफ्रीका में, जहां पर केवल एक पंचमांश लोग श्वेतांग हैं, वहां वे अपने से चार गुने लोगों को हमेशा के लिये कुचल कर कैसे रख सकेंगे। अफ्रीका में इस समय जो कुछ हो रहा है, उस पर सारे संसार की दृष्टि लगी हुई है और आज या कल या परसों सत्याग्रहियों की नैतिक जीत होनेवाली है। मुझे इस बात का विश्वास है कि यह जीत बहुत जल्दी होगी।

हमारे भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में मुझे थोड़ी-सी बातें और निवेदन करनी हैं। मेरी दृष्टि से अगर हम वैदेशिक नीति की बात छोड़ दें, जिस का मैंने सदा पूरा समर्थन किया है और जिसने संसार में हमारे सम्मान को इतना ऊँचा उठाया है और जिस पर हम को आगे चलना है, तो इस समय जहां तक नव-निर्माण का सम्बन्ध है, केवल दो बातों पर हम को सब से अधिक ध्यान देना है। एक तो हमारी आर्थिक उन्नति और दूसरी हमारी शिक्षा। जब तक हम इन दोनों बातों पर समान रूप से ध्यान नहीं देंगे, तब तक हमारा काम नहीं चल सकता। राष्ट्रपतिजी ने अपने भाषण में

शिक्षा के सम्बन्ध में यह कहा है कि इसमें सन्देह नहीं कि इस ओर हम पूरा काम नहीं कर सके। आर्थिक उत्थान की योजनाएँ हमारे सामने हैं। उन्हें हम को कार्यरूप में परिणत करना है ; लेकिन साथ ही शिक्षा के विषय पर भी हम को पूरा-पूरा ध्यान देना होगा। जहां तक शिक्षा का सम्बन्ध है, शिक्षा में सब से बड़ा स्थान भाषा का है। जब तक इस भाषा के प्रश्न पर हम विशेष रूप से ध्यान नहीं देंगे, तब तक शिक्षा के प्रश्न को हम हल नहीं कर सकते। इस प्रस्ताव को रखनेवाले महाशय ने बुनियादी शिक्षा पर जोर दिया था। बुनियादी शिक्षा पर जोर देना उचित बात है, लेकिन भाषा के प्रश्न को भी हमें हल करना होगा। आप इस बात को जानते हैं कि हमने अपने संविधान में हिन्दी को राज्य-भाषा माना है और हमने यह निश्चय किया है कि आगे के १५ वर्षों में हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान लेना है।

एक माननीय सदस्य--हिन्दुस्तानी।

सेठ गोविन्ददास— हिन्दुस्तानी नहीं, हिन्दी उसमें स्पष्ट कहा गया है। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के झगड़े को आप कृपा कर न उठाइये, वह समाप्त हो गया है।

तो, इन १५ वर्षों में से तीन वर्ष बीत चुके हैं, १२ वर्ष और बाकी हैं। मैं आप से कहना चाहता हूँ कि जिस प्रकार हम इस ओर बढ़ रहे हैं, जिस प्रकार इस ओर हमारी प्रगति हो रही है, उसे देखते हुए इन १२ वर्षों में हम अपने उद्देश्य में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकेंगे। शिक्षा मंत्रीजी इस समय यहां नहीं हैं। उनसे मेरा विशेष रूप से निवेदन है कि जहां तक शिक्षा का प्रश्न है शिक्षा का प्रश्न भाषा से बिलकुल गुंथा हुआ है और शिक्षा के प्रश्न को हम तब तक पूर्ण रूप से हल नहीं कर सकते, जब तक कि हिन्दी को उसका उचित स्थान नहीं देते। यदि इस देश में इतने लोग अपढ़ हो गये, सौ में से नब्बे आदमी आज अपने हस्ताक्षर नहीं कर सकते, तो इसका प्रधान कारण क्या है? इसका प्रधान कारण शिक्षा की नीति है। अंग्रेजों ने यहां आकर अंग्रेजी को हमारे ऊपर लादना चाहा, अंग्रेजी के लादने का यह नतीजा निकला, उसकी शिक्षा का माध्यम होने का यह नतीजा निकला कि हम सौ में से नब्बे अपढ़ हो गये और अगर हम अंग्रेजी को अभी भी उसी दृष्टि से देखना चाहते है, जिस दृष्टि से हम उस को पराधीनता के युग में देखते आये हैं, तो हमारा कल्याण नहीं हो सकता। अब तक सुनाई देता है कि उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहना चाहिये। अभी भी यहां वहां सुनाई पड़ता है कि अंग्रेजी को हटाने का अर्थ होगा, इस देश को अशिक्षा में डालना, गर्त में डालना। मैंने दुनिया में कहीं कोई ऐसा देश नहीं देखा, जिसमें किसी विदेशी भाषा का ऐसा प्रभुत्व हो, जैसा कि हमारे देश में अंग्रेजी भाषा का है। जहां तक वैज्ञानिक शब्दावली का सवाल है, मेरा मत उस सम्बन्ध में इस दौरे के पहले स्पष्ट नहीं था, लेकिन मैंने चीन, जापान और दूसरे देशों में देखा कि किसी भी देश की वैज्ञानिक

शब्दावली किसी विदेशी भाषा की नहीं है। अँग्रेजी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा मानना, यह कहना कि वह सब जगह समझी जाती है, गलत बात है। अँग्रेजी इंगलिस्तान और अमरीका की भाषा है। दूसरी जगह भी उससे थोड़ा-बहुत काम चल सकता है; लेकिन अँग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली न चीन में है और न जापान में है। इसलिए, इस वैज्ञानिक शब्दावली के झगड़े को भी हमें मिटाना होगा। जब तक हम वैज्ञानिक शब्दावली के झगड़े को नहीं मिटा देंगे, तब तक हम भाषा के प्रश्न को हल नहीं कर सकेंगे और जब तक हम भाषा के प्रश्न को पूर्णरूप से हल नहीं करेंगे, तब तक जो एक बड़ा भारी काम, हमें इस देश को शिक्षित करना है, वह काम पूरा नहीं होगा। अन्त में मेरा निवेदन है कि जहाँ तक हमारे भावी कार्यक्रम का सम्बन्ध है, हमारी वैदेशिक नीति पूर्णतः ठीक नीति है और हमें उसका समर्थन करना है। अगर आगे कोई लड़ाई भी आये, तो उस लड़ाई में हम को शामिल नहीं होना है। जहाँ तक हमारे आर्थिक प्रश्नों का सम्बन्ध है, पंचवर्षीय योजना हमारे सामने है। मैं पंचवर्षीय योजना का बड़ा भारी समर्थक हूँ। उस सम्बन्ध में हम को एक जोश पैदा करना है, एक उत्साह पैदा करना है। मैंने इस जोश और उत्साह को चीन में देखा। चीन में चाहे अभी उन्हें बहुत कुछ हासिल न हो, लेकिन चीन में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पश्चिम से पूर्व तक और उत्तर से दक्षिण तक सारे देश में एक जोश है, एक स्फूर्ति है और कार्य करने की लगन है। मैं देखता हूँ कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमने वह जोश, स्फूर्ति और लगन खो दी है। हमें इस पचवर्षीय योजना को पूरे उत्साह और जोश के साथ कार्यरूप में परिणत करना है। कोई सरकार किसी योजना को तब तक कार्यरूप में परिणत नहीं कर सकती, जब तक जनता का उस योजना के साथ पूरा-पूरा सहयोग न हो, इसलिए हम को हर प्रान्त में, हर जिले में, हर कस्बे में और हर गाँव में उस पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में एक स्फूर्ति पैदा करनी है, जोश पैदा करना है। मैं दूसरे दलों से कहता हूँ कि जहां तक देश के आर्थिक उत्थान का सवाल है, उन को राजनीति से अलग रखकर, कम-से-कम देश के आर्थिक उत्थान के मामले में, इस पचवर्षीय योजना को सफल बनाने में उन्हें सरकार का साथ देना चाहिये। हमें इस पंचवर्षीय योजना को जल्द-से-जल्द कार्यरूप में परिणत करना है, इस काम को हमें अगले पाँच नहीं, चार वर्षों मे पूरा करके दिखाना है। मैं श्री हीरेन मुखर्जी से कहना चाहता हूँ कि वे इस बात के लिए भयभीत न हों कि हम किसी प्रकार की शर्तों को मान कर किसी देश के सामने अपना मस्तक झुका कर, अथवा किसी देश के किसी गुट में शामिल होकर, किसी सहायता को स्वीकार करने वाले हैं। अमरीका, रूस अथवा कोई भी देश क्यों न हो, अगर वह कोई सहायता हमको किन्हीं शर्तों पर देता है, तो हम उस सहायता को स्वीकार नहीं करेंगे; परन्तु अगर वह सहायता

बिना किसी शर्त के आती है, तो हम उसका स्वागत करते हैं और आवाहन करते हैं। हालाँ कि वह सहायता दाल में नमक के बराबर भी होनेवाली नहीं है। बीस अरब रुपया हम इस देश में अपनी इस पंचवर्षीय योजना में खर्च करने वाले हैं; अतः जो सहायता हम को अमरीका, रूस अथवा चीन आदि देशों से मिलनेवाली है, वह नहीं के बराबर होगी। जैसे भी हो, हमें इस पंचवर्षीय योजना को कार्यरूप में परिणत करना है और शिक्षा के प्रश्न को, जैसा कि मैंने अभी निवेदन किया, हमें हल करना है, जिसका भाषा से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। मैं इस प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूँ।

शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर

२७ मार्च, ५४

सेठ गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मैं यह कह देना चाहता हूँ कि इस समय इस देश में मैं जिनकी सब से ज्यादा इज्जत करता हूँ वे चार महानुभाव हैं—हमारे राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी, पंडित जवाहरलालजी, राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन और मौलाना अबुलकलाम आजाद साहब। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जो कुछ मैं कहनेवाला हूँ उसमें कोई गलत-फहमी न हो। मौलाना साहब के प्रति बहुत बड़ी इज्जत रखते हुए भी मुझे यह कहना पड़ता है कि उनके कारण हो, या उनके दूसरे मंत्रियों के कारण हो, या उनके समूचे विभाग के कारण हो, आज शिक्षा-विभाग अभारतीय है, और उसके अभारतीय होने का दोष चाहे मौलाना साहब पर न हो, लेकिन जब इतिहास लिखा जायगा, तो उस की सारी जिम्मेदारी मौलाना साहब के ऊपर रहनेवाली है। उसके अभारतीय होने के दो प्रधान कारण हैं। पहला कारण यह है कि वहाँ पर अँग्रेजी की बू आरम्भ से अन्त तक भरी हुई है और दूसरा यह कि अँग्रेजी के साथ वहाँ पर उर्दू भी परिप्लावित है। मैं कह देना चाहता हूँ कि मैं अँग्रेजी या उर्दू भाषाओं का कोई विरोधी नहीं हूँ।

आचार्य कृपलानी—सभी ऐसा कहते हैं।

सेठ गोविन्ददास—मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें से कई चीजों को मैंने अँग्रेजी में भी लिखने का प्रयत्न किया है। मैं अपने कई ग्रन्थों का अनुवाद अँग्रेजी में करा रहा हूं। जहाँ तक उर्दू का सम्बन्ध है, मैंने अपने कई नाटकों में उर्दू का खूब अच्छी तरह से प्रयोग किया है; लेकिन भाषाओं का विरोधी न होना एक बात है और कौन भाषा किस स्थान पर रहनी चाहिए, यह दूसरी बात है। अँग्रेजी राज्य हमारे देश में कुछ ऐसे समुदाय को छोड़ गया है, जिस को मैंने एक विशेष नाम दिया है। उस समाज को मैं 'मेकाले पुत्रों का समाज' नाम देता हूँ।

डा० एन० बी० खरे—अरबी मेकाले।

सेठ गोविन्ददास—जहां देखिए वहां अंग्रेजी का बोलबाला! अंग्रेजी यहां रखनी चाहिए, अंग्रेजी वहां रखनी चाहिए, अंग्रेजी सब जगह रखनी चाहिए, यह समाज यह चाहता है; इसीलिए मैंने उस समाज का नाम मेकाले पुत्रों का समाज रखा है।

एक माननीय सदस्य—यह नाम अच्छा नहीं है, इस को बदल दीजिए।

सेठ गोविन्ददास—क्यों कि यहां पर अंग्रेजी की नींव मेकाले साहब ने डाली थी, मैं मेकाले का अनुयायी नाम दे दूंगा। उर्दू इस देश की आम-फहम जबान नहीं हो सकती।

उर्दू के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि वह इस देश की भाषा होते हुए भी देश के पृथक्करण की जो भावना आयी, द्विराष्ट्र सिद्धान्त का इस देश में जन्म हुआ और आगे चलकर पाकिस्तान बना, उस विषय को उर्दू भाषा, इस देश में नींव रही है। मैं साम्प्रदायिक नहीं हूँ। कुछ लोग यह कहते हैं कि यह सब साम्प्रदायिक भावनाओं से कहा जाता है। मैं आजतक किसी साम्प्रदायिक संस्था में नहीं रहा हूँ। जब मैं गो-रक्षा को बात कहता हूँ, तो कहा जाता है कि यह साम्प्रदायिक बात है, जब मैं हिन्दी को बात कहता हूँ, तब भी कहा जाता है कि यह बात साम्प्रदायिक है। मैं उन लोगों को साम्प्रदायिक कहता हूँ, जो भारतीय संस्कृति के विरुद्ध अंग्रेजी और उर्दू को इस देश में कायम रखने का प्रयत्न करते हैं। मैं यह मानता हूँ कि जिनकी मातृभाषा उर्दू है, उन को उर्दू पढ़ने-लिखने और बोलने का पूरा अधिकार होना चाहिये; पर यह मैं नहीं छिपाना चाहता कि अंग्रेजी और उर्दू भाषाओं की हिन्दी से स्पर्धा है। आज उत्तर प्रदेश में यह मांग की जा रही है कि उर्दू भी वहां की भाषा बनायी जाय। मैं इसको अंग्रेजी में "थिन एंड आफ दी वेज" कहता हूँ। अगर आज उत्तर प्रदेश में इस प्रकार से उर्दू को मान्यता दी गयी, तो आगे चलकर विहार में यह प्रश्न उठेगा, मध्यभारत में उठेगा, राजस्थान में उठेगा, मध्यप्रदेश में उठेगा, और हमारा जो आधे से अधिक देश हिन्दी भाषा-भाषी है, वहां पर यह प्रयत्न किया जायगा, जो पहले किया गया था कि दोनों लिपियाँ हों और दोनों भाषाएँ हों। पाकिस्तान बन जाने के बाद हम इस देश में हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में स्थान-स्थान पर पाकिस्तान नहीं बनने देना चाहते।

प्रान्तीय भाषाओं के सम्बन्ध में भी अभी कुछ कहा गया है। मैं प्रान्तीय भाषाओं का सब से बड़ा समर्थक रहा हूँ। जब मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति था और मैंने अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों का दौरा किया था, तब मैंने इस बात को बहुत स्पष्ट किया था और अब भी मेरी यही राय है कि जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है,

वहां पर शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा हो, न्यायालयों में प्रान्तीय भाषा काम में लायी जाय, वहां की असेम्बली का काम प्रान्तीय भाषा में हो। प्रान्तीय भाषाओं और हिन्दी का कोई स्पर्धा नहीं है। अगर हमें इस देश में लोगों को शिक्षित बनाना है, तो हमको जितना ध्यान हिन्दी की ओर देना चाहिए, उतना ही ध्यान प्रान्तीय भाषाओं की ओर भी देना चाहिए ; इसलिए यह कहना कि जो लोग यह कह रहे हैं कि हिन्दी को उस का उचित स्थान मिलना चाहिए, वे प्रान्तीय भाषाओं के विरुद्ध हैं। यह गलत बात है और इससे गलत-फहमी फैलती है। मैं इस बारे में हिन्दी वालों को भी सचेत करना चाहता हूँ। हिन्दी भाषियों को जितना प्रेम हिन्दी भाषा से है, उतना ही प्रेम प्रान्तीय भाषाओं से होना चाहिए। अगर हिन्दी राजभाषा बनी है, तो वह इसलिए कि वह अधिक लोगों की भाषा है, इसलिए नहीं कि हिन्दी में कोई खास सुरखाब का पर लगा है। यह जो बार-बार कहा जाता है कि हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तीय भाषाओं के विरुद्ध हैं, गलत है। मैं प्रान्तीय भाषाओं का उतना ही समर्थक हूँ, जितना हिन्दी का।

हिन्दी का रूप क्या होना चाहिए, इस सम्बन्ध में कोई बहुत मतभेद की आवश्यकता नहीं है। हमारे संविधान में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है कि हमें हिन्दी में मूलतः संस्कृत के शब्द लेने हैं। आज जो अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावली कही जाती है, मैं आप से कहना चाहता हूँ कि मैं तमाम दुनिया के देशों को देखकर आया हूँ, अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावली के सदृश कोई चीज नहीं है।

अंग्रेजी भाषा की जो वैज्ञानिक शब्दावली है, वह इंग्लिस्तान, अमरीका और इंग्लिस्तान की जो चार कालोनी हैं, कनाडा, आस्ट्रेलिया, साउथ अफ्रीका और न्यूजीलैंड, इनको छोड़ कर और कहीं नहीं चलती। फ्रांस में कुछ शब्द चलते हैं। आप अपने पड़ोसी देशों में जाइये, आप चीन में जाइये, आप जापान में जाइये। वहां पर अंग्रेजी शब्दावली बिलकुल काम में नहीं लाई जाती। अगर अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली ज्यों-की-त्यों यहां पर प्रयोग में लाई जायगी, तो मैं आप से पूछना चाहता हूं कि हमारे यहां पर जब कुछ अच्छे वैज्ञानिक पैदा होंगे, कुछ खोजें होंगी, तो क्या वह भी लैटिन शब्दावली में लिखी जायगी ? कौन-सी शब्दावली में वह लिखी जायगी ? यह बहुत गलत बात होगी कि इस प्रकार वैज्ञानिक शब्दावली को, जो आजकल अंग्रेजी में चलती है, इंटरनेशनल या अन्तर्राष्ट्रीय मानकर ज्यों-का-त्यों यहां पर स्वीकृत कर लिया जाय। यह हरगिज नहीं हो सकता।

हां, अंग्रेजी के जो शब्द प्रचलित हो गये हैं, जैसे टेलीफोन, उन को बदलने के पक्ष में मैं नहीं हूँ। मैं आप को एक बात बतलाऊँ, हमारे प्रान्त में टेलीफोन के लिए "दूरभाष" शब्द को रखा गया है। मैंने एक जगह इस शब्द का बोर्ड देखा "दूरभाष"।

तो मैंने 'भाष' की जगह 'भाग' 'दुरभाग' पढ़ लिया। उस से मैंने यह तात्पर्य लगाया कि यहां ४४० वोल्ट आदि की कोई इलैक्ट्रिसिटी की जगह होगी और यहां पर जाना उचित नहीं है, इसलिए यह लिखा है। इसी तरह साइकिल का नाम 'द्विचक्र', इस प्रकार के शब्दों के पक्ष में मैं नहीं हूं। जो शब्द हमारे यहां पर आ गये हैं, जैसे—रेल है, टिकट है, प्लेटफार्म है, बाईसिकल है, मोटरकार है, एंजिन है, इस प्रकार के शब्दों को हमें लेना चाहिए ; लेकिन इस का यह भी मतलब नहीं कि इस प्रकार के प्रचलित शब्दों के अलावा हम हजारों शब्दों की जो वैज्ञानिक शब्दावली है, वह अंग्रेजी से ले लें। यह बिलकुल गलत बात होगी। इन दोनों बातों का हमें ध्यान रखना चाहिए।

तो हिन्दी के मुख्य स्रोत के बारे में कोई झगड़ा नहीं होना चाहिये। वह स्रोत क्या हो, यह हमारे संविधान में स्पष्ट लिखा है; पर नयी शब्दावली की बात तो दूर रही, हमारे संविधान में जो शब्दावली स्वीकृत हो चुकी है, कम-से-कम उसके विषय में तो स्थिति स्पष्ट होनी चाहिये। मौलाना साहब ने फरमाया, मेरे प्रश्न के उत्तर में, कि इस बात की भी आजादी दे दी गयी है कि उसे भी बदलना हो, तो बदला जाय। अब जिस शब्दावली के ऊपर हमारे लाखों रुपये खर्च हो चुके और जो शब्द हमने रखे, वह सब शब्द प्रचलित भी आज हो गये, वह हटाये जायँ, यह कैसी बात है ? जैसे संसद् शब्द को लीजिये, लोक-सभा शब्द को लीजिये, विधेयक शब्द को लीजिये, विधि शब्द को लीजिये, यह सब शब्द हमारे संविधान में स्वीकृत किये गये थे और उस के कुछ महीने के अन्दर ही सारे देश में यह प्रचलित हो चुके। अब उनके स्थान पर और और शब्द प्रचलित किये जायँ, यह बिलकुल गलत बात होगी और फिर इस में एक अंदेशा और है—कभी कोई बात निर्णीत मानी ही न जा सकेगी। हिन्दी की जो उन्नति नहीं हो रही है, उसके क्या कारण हैं ? एक तो इस का कारण है एक झूठा नारा। यह झूठा नारा है कि हिन्दी सब के ऊपर लादने का प्रयत्न किया जा रहा है। हिन्दी लादी जाने का कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। कम-से-कम मैं, हिन्दी किसी पर लादी जाय, इस का विरोधी हूँ ; पर अंग्रेजी या उर्दू भाषा हमारे ऊपर लादी जाय, इस का भी मैं विरोधी हूँ। अगर किसी को अंग्रेजी भाषा अपने प्रान्त में रखना है तो रखे, बहुत खुशी से अपनी प्रान्तीय भाषा का गला घोंटकर वह अंग्रजी भाषा को रख सकते हैं ; किन्तु १४ करोड़ जो हिन्दी-भाषा-भाषी हैं, उन का गला घोंट कर वहां पर अंग्रेजी को रखने का प्रयत्न करना भी नितान्त अनुचित है।

अभी यहां हमारे प्रधान मंत्रीजी का भाषण हुआ, हिन्दी में हुआ, तो क्या यह उन्होंने हिन्दी भाषा को लादने का प्रयत्न किया ? यह बात नहीं है। हिन्दी को हमने अपनी राजभाषा माना है, राष्ट्रभाषा माना है। उस को अगर १५ वर्ष के

अन्दर उचित स्थान प्राप्त करना है, तो १६वें वर्ष के प्रात:काल तो वह राजभाषा बन नहीं सकती। हमें अभी से उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए और जो प्रयत्न नहीं हो रहा है, उस के दो प्रधान कारण हैं। एक तो यह झूठा नारा है और एक कारण यह है कि उस को सरकार को जिस प्रकार से मदद देनी चाहिए, उस प्रकार से वह नहीं दे रही है। हमारे दो प्रकार के निर्माण-कार्य हैं। एक तो पार्थिव वस्तुओं का निर्माण है, जिस से हमारी आर्थिक उन्नति होगी, आर्थिक अवस्था सुधरेगी, मैं उसके पक्ष में हूँ; लेकिन उसी के साथ एक दूसरा निर्माण है—बौद्धिक निर्माण, जिस की नींव भाषा है। जहां हम आर्थिक चीजों पर करोड़ों रुपये खर्च करने को तैयार हैं, वहां पर हिन्दी के लिए लाखों रुपये भी देने को तैयार नहीं हैं, यह हिन्दी के साथ अन्याय है। हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान लेना है, तो इस तथ्य को मौलाना साहब को मान लेना होगा। नहीं तो उन की सब योजनाएँ कागज में रह जायेंगी और एक योजना भी कार्यरूप में परिणत नहीं होनेवाली है। हिन्दी के निर्माण के लिए भी लाखों नहीं करोड़ों चाहिए ; कम-से-कम दस करोड़।

२९ मार्च, १९५४

सेठ गोविन्ददास—मैंने वैज्ञानिक शब्दावली के सम्बन्ध मे एक बात कही थी और मैं फिर उसे बहुत अदब के साथ मौलाना साहब के सामने पेश करना चाहता हूँ।

मैं एक मिनट के अन्दर कहूँगा। मैंने यह कभी नहीं कहा कि इंगलैंड में या अमरीका में इस तरह की कोई शब्दावली नहीं है। इंगलैंड, अमरीका और आयरलैंड की चारों कोलोनीज को छोड़कर, फ्रांस के एक हिस्से को छोड़ कर, जापान में, चीन में और दूसरे मुल्कों में इस तरह की कोई शब्दावली का प्रयोग नहीं होता है, जिसको कि आप इंटरनेशनल शब्दावली कह सकें। यह विषय एक्सपर्ट्स का नहीं, फैक्ट्स का है। इन्टरनेशनल शब्दावली मानकर अगर हमें लैटिन के सब शब्दों को लेना है, तो हजारों शब्द, लाखों शब्द हम को लेने होंगे और वह हिन्दी भाषा नहीं रह जायेगी।

जनरल बजट, १९५५-५६

१९ मार्च, १९५५

सेठ गोविन्ददास—मैंने अभी तक अपने भाषण में सरकार की कोई शिकायत नहीं की थी। मैंने यह कहीं कहा था कि शिक्षा-मंत्रालय का वाद-विवाद सरकार ने बन्द किया है। मेरा कहना केवल यह था कि यह इतना आवश्यक विषय है कि इस

पर इस वर्ष भी विचार होना आवश्यक था। इतना ही नहीं कि जितना समय हम इस पर देते हैं वही दें, बल्कि वह भी बहुत कम था और इसके लिए कहीं अधिक समय की आवश्यकता थी। अब चूंकि इस वर्ष इस पर विचार नहीं होगा, इसलिए इस विषय में और दूसरे विषयों में जो कुछ मुझे कहना है, मैं इस अवसर पर ही कहने का प्रयत्न करूंगा।

हम इस समय उस युग में चल रहे हैं, जिस में कि हमें इस देश का निर्माण करना है। इस निर्माण में दो प्रकार के निर्माण हैं—एक निर्माण तो पार्थिव वस्तुओं का निर्माण है, जरूरियात की चीजों का निर्माण है और दूसरा निर्माण व्यक्तियों का निर्माण है। जब तक हम इन दोनों तरह के निर्माणों को ठीक प्रकार से नहीं करेंगे, तब तक हमारा देश, जिस प्रकार से हम उसे उन्नत करना चाहते हैं, उस प्रकार उन्नत नहीं हो सकेगा। जहां तक पार्थिव वस्तुओं का निर्माण है, मैं सरकार को और अपने वित्त-मंत्रीजी को बधाई देना चाहूँगा कि हमने इस विषय में काफी उन्नति की है। कुछ समय पहले हमारे यहां अन्न का जो कष्ट था, वस्त्र का जो कष्ट था, तेल और दूसरी जरूरियात की चीजों का जो कष्ट था, आज वह कष्ट नहीं है ; परन्तु जहां तक व्यक्तियों का निर्माण है, अभी भी हम उसी स्थान पर हैं, जहां कुछ वर्षों पूर्व थे। हमारे यहां जिस प्रकार की भ्रष्टाचार और घूसखोरी आदि की शिकायतें हैं, क्या यह कोई भी सच्चे हृदय से कह सकता है कि यदि कांग्रेस-दल की सरकार के स्थान पर कोई दूसरे दल की सरकार आ जाय, तो इस दिशा में कोई उन्नति हो सकती है ? कदापि नहीं, क्यों कि दूसरे दल वाले कोई देवताओं को तो इस देश का शासन चलाने के लिए ले नहीं आयेंगे। उन के पास भी वही व्यक्ति होंगे इस देश का शासन चलाने के लिए, जो कि कांग्रेस के पास हैं ; इसलिए जब तक नैतिक चरित्र का निर्माण नहीं होता, तब तक इस भ्रष्टाचार और घूंसखोरी का अन्त नहीं हो सकता।

जहां तक चरित्र का निर्माण है, वह शिक्षा पर बहुत दूर तक अवलम्बित है। शिक्षा का मुख्य आधार भाषा है। हमने अपने संविधान में हिन्दी को इस देश की राज्य-भाषा के रूप में स्वीकार किया है। हमने यह निर्णय किया था कि १५ वर्ष के भीतर हिन्दी को उस का उचित स्थान मिलना चाहिए। उन १५ वर्षों में से ५ वर्ष बीत गये और हम देखते हैं कि हिन्दी का अभी भी प्रायः वही हाल है, जो कि पांच वर्ष पूर्व था। इन दिनों में कुछ उन्नति इस विषय में हुई है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ। जहां तक लोक-सभा का सम्बन्ध है, हम इस उन्नति में कुछ और भी आगे बढ़े हैं, इस को भी मैं मंजूर करता हूँ। इस वर्ष हमारे प्रधान मंत्रीजी ने, जो अपने सब मंत्रालयों को यह आदेश दिया कि जितने हिन्दी के प्रश्न हों, उन का उत्तर हिन्दी में ही दिया जाना चाहिए, इस को मैं हिन्दी की ओर बढ़ने का एक बड़ा कदम मानता हूँ,

और, अध्यक्ष महोदय, आपने भी अब हिन्दी में कुछ बातें कहना शुरू किया है। अब आप हां और नहीं हिन्दी में कह दिया करते हैं। अब यदि आप से कोई बात हिन्दी में कही जाती है, तो आप उसका हिन्दी में उत्तर देते हैं। मैं आप को इस के लिए धन्यवाद देता हूँ। पर मैं आपकी मारफत मौलाना साहब से यह निवेदन करना चाहता हूँ कि उनको यह इच्छा होते हुए भी कि हिन्दी को उसका उचित स्थान मिलना चाहिए, वह जरा भी आगे नहीं बढ़ रही है। मौलाना साहब की जो शिकायत वित्त-मंत्री महोदय से है, वह शिकायत भी सर्वथा उचित है। जब तक मौलाना साहब को यथेष्ट धन नहीं मिलेगा, तब तक मौलाना साहब इस दिशा में कुछ नहीं कर सकते। जहां तक धन का सवाल है, हम २०-२० अरब रुपयों की योजनाएँ बनाते हैं, हम दूसरे दूसरे विभागों में करोड़ों रुपये खर्च करने को तैयार रहते हैं, लेकिन जहां तक हिन्दी का प्रश्न है, न जाने क्यों हमारे देशमुख साहब इतने कंजूस हो जाते हैं और उन के हाथ से रुपया नहीं निकलता।

श्री सी० डी० देशमुख—आप को गलत बताया गया है।

सेठ गोविन्ददास—बिल्कुल गलत नहीं बताया गया। आंकड़े हमारे सामने पेश होते हैं कि किस विषय पर कितना रुपया खर्च होने वाला है। आप की जो पंच-वर्षीय योजनाएँ आती हैं, उन में आप जितना रुपया जिस विभाग में खर्च करने का विचार करते हैं, वह सब हमारे सामने आता है। फिर आप यह कैसे कह सकते हैं कि सरकार जो अंक पेश करती है, वे भी गलत हैं। मैं जो कुछ आप से कह रहा हू वह सरकारी अंकों के आधार पर ही कह रहा हूँ।

श्री सी० डी० देशमुख—मेरा कहना यह है कि अगर ज्यादा रुपये के लिए मांग हो जाये, तो इस विषय में हमने इन्कार नहीं किया है।

सेठ गोविन्ददास—बहुत खुशी की बात है कि आज हमारे वित्त-मंत्री यह आश्वासन देते हैं कि यदि अधिक मांग होगी, तो वे अधिक रुपया देने के लिए तैयार रहेंगे। और तब मैं उन की तरफ से मुड़ कर मौलाना साहब की तरफ आता हूँ। और उन से यह कहना चाहता हूँ कि इस आश्वासन के बाद उन को यह शिकायत छोड़ देनी चाहिये कि उन को यथेष्ट धन नहीं मिलता। उन को हिन्दी की उन्नति के लिए कम-से-कम २५ करोड़ रुपया मांगना चाहिए। आप पार्थिव वस्तुओं के ऊपर इतना रुपया खर्च कर रहे हैं। हिन्दी के लिए तो मैं पाँच वर्ष में केवल पचीस करोड़ रुपया मांगता हूँ। हर वर्ष के लिए पांच करोड़ रुपया कोई बड़ी रकम नहीं है। हिन्दी के लिए अभी हम को बहुत काम करना है। अगर हम हिन्दी को ईमानदारी के साथ आगामी दस वर्षों के भीतर उसके उचित स्थान पर लाना चाहते हैं, तो यदि आप ५ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष खर्च न करेंगे, तो जिस तरह से ये पांच वर्ष बीत गये, उसी प्रकार अगले

दस वर्ष भी बीत जानेवाले हैं। सब मंत्रालयों में हिन्दी के विभाग खोले गये हैं, या खोले जानेवाले हैं, लेकिन मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उनमें जो कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं, वे अस्थायी होंगे। उन का स्थायित्व नहीं होगा। यह आश्चर्य की बात है।

जहां तक अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार है, इस विषय में बहुत कम रुपया खर्च हो रहा है और आगे भी बहुत कम होने वाला है।

जहां तक साहित्य का निर्माण है, वह बहुत बड़ा विषय है। हम को पारिभाषिक शब्दावली बनानी है, हम को भिन्न-भिन्न विषयों के साहित्य का निर्माण करना है, हम को कोश बनाने हैं। कितनी चीजें हमें करनी हैं। तो मैं मौलाना साहब से यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जब वित्त-मंत्री महोदय ने यह आश्वासन दिया है कि यदि अधिक रुपया मांगा जायगा, तो वे देने को तैयार हैं, तो वे आगामी पांच वर्षों में हिन्दी की उन्नति के लिए २५ करोड़ रुपया मांगें, और प्रति वर्ष ५ करोड़ रुपया, जो बातें मैंने बतायी हैं, उन के लिए खर्च करें।

उन्होंने जो आश्वासन दिया है, उसी के आधार पर मैं आप से निवेदन कर रहा हूं। आप उन से २५ करोड़ रुपया मांगें। अब एक दूसरे विषय को ओर मैं आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

अध्यक्ष महोदय—आप का समय पूरा हो गया।

सेठ गोविन्ददास—मुझे दो मिनिट का समय और दें। मेरी यह दूसरी बात गाय के सम्बन्ध में है। इस विषय में भी मैं बहुत कुछ कहना चाहता था, पर आपने कह दिया कि मेरा समय हो चुका है ; अतः अत्यन्त संक्षेप में ही कहता हूँ। यह कृषि-प्रधान देश है। ट्रैक्टरों के उपयोग से यह बात सिद्ध हो गई कि हमारी खेती की ट्रैक्टरों से उन्नति नहीं हो सकती। यह इस बात का प्रमाण है कि जब तक हम गाय की उन्नति की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक हमारी कृषि, हमारे देश की खाद्य-स्थिति और हमारी तन्दुरुस्ती नहीं सम्हल सकती ; इसलिए जितना आवश्यक प्रश्न मैं हिन्दी को मानता हूँ, उतना ही आवश्यक प्रश्न मैं गाय का मानता हूँ। लोग मुझ से कहा करते हैं कि मैं हिन्दी को और गाय को क्यों मिलाता हूँ। इस का कारण यह है कि एक का हमारे शरीर से सम्बन्ध है और दूसरी का हमारे मस्तिष्क से। हमारा देश निरामिषाहारी है ; इसलिए जब तक इस देश में लोगों को यथेष्ट मात्रा में दूध नहीं मिलेगा, घी नहीं मिलेगा, हमारे शरीर की उन्नति नहीं हो सकती। और जब तक हम को खेती के लिए पर्याप्त रूप में बैल नहीं मिलेंगे, तब तक हमारी खेती की उन्नति नहीं हो सकती। जब तक हमारा शरीर ठीक नहीं होगा, तब तक हमारी बुद्धि भी ठीक नहीं हो सकती ; इसलिए बुद्धि के लिए हमें आवश्यकता हिन्दी की है और

शरीर के लिए हमें आवश्यकता गाय की है; इसलिए इन दोनों विषयों पर हमारी सरकार को पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए।

जनरल बजट

१४ मार्च, १९५६

सेठ गोविन्ददास—अध्यक्ष महोदय, सब से पहले मैं वित-मंत्रीजी को उन के इतने सुन्दर बजट पर बधाई देना चाहता हूँ। यह बजट यथार्थ में एक विशेषज्ञ का बजट है और थोड़े समय ही में मुझे इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण भी मिले हैं। यह बजट भारतवर्ष की मजबूत आर्थिक परिस्थिति का द्योतक है। कर-वृद्धि के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की कर-वृद्धि नहीं हुई है, जिससे सामान्य जनता का बोझ बढ़ा हो और इन थोड़े दिनों में देश के बाजारों की जो स्थिति रही, वह इसे प्रमाणित करती है कि समूचे देश में इस बजट का किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है।

स्वतंत्र देश के सभी बजट महत्त्वपूर्ण होते हैं। हमारी स्वतंत्रता के पश्चात् जितने बजट इस सदन में आये, उन सब का अपना-अपना महत्त्व था ; परन्तु इस बजट का विशेष महत्त्व इसलिये है कि हमारी जो दूसरी पंचवर्षीय योजना आरम्भ होने वाली है, उस योजना का यह पहला बजट है। स्वतंत्र होने के पश्चात् हम उन्नति के पथ पर ठीक तरह से अग्रसर हो रहे हैं। हम ने अनेक राजनैतिक महत्त्व के कार्य कर डाले। स्वतंत्र होने के पश्चात् सब से पहले स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल ने ६०० रियासतों के प्रश्न को हल कर हमारे देश में राजनीतिक एकता की स्थापना की। उस के बाद हमने अपना संविधान बनाया, आम चुनाव हुए बालिग मताधिकार पर; और संसार के अब तक के इतिहास में हम सब से बड़े प्रजातंत्र का प्रयोग कर रहे हैं। इस प्रकार की राजनीतिक महत्त्व की बातों को करने के उपरान्त अब हम आर्थिक क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं और इस विषय में हमारा स्पष्ट लक्ष्य है समाजवादी सामाजिक रचना। यदि हम उन देशों को भी देखें, जो कि साम्यवादी सिद्धान्त के अनुसार चलते हैं, तो भी हमें मालूम होना चाहिये कि भिन्न-भिन्न देशों की साम्यवादी रचना उन देशों की परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की है। हम अपने देश में एक विशेष प्रकार की समाजवादी रचना की स्थापना करना चाहते हैं जो समाजवादी रचना हमारी संस्कृति, हमारे इतिहास और हमारी वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार हो।

पहली योजना में हमने योजना बना कर कार्य करना आरम्भ किया था। उस समय हमें न तो योजना बना कर काम करने का अनुभव था और न हमने उस के

पहले कोई समाजवादी योजना की घोषणा की थी। हमारी पहली पंचवर्षीय योजना और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बहुत बड़ा अन्तर है। पहला अन्तर तो यह है कि यह दूसरी योजना समाजवादी समाज की रचना को ध्यान में रख कर बनी है। दूसरे, यह पहली योजना की अपेक्षा बहुत बड़ी है; और तीसरा अन्तर यह है कि यह योजना एक लचीली योजना है। हम हर वर्ष अपने कार्य का अनुभव प्राप्त करते जायेंगे और जैसी-जैसी परिस्थितियां उत्पन्न होंगी, उनके अनुसार द्वितीय योजना पंच वर्षीय होते हुए भी हर वर्ष उस में परिवर्तन भी होते जायेंगे। इस सम्बन्ध में जो कल श्री अशोक मेहता ने एक बात कही थी, उस को मैं इस देश के लिए एक अभिशाप मानता हूं। उन्होंने कहा था कि योजनाबद्ध कार्य करने के लिए हम को कंट्रोल्ज (नियन्त्रण) की आवश्यकता होगी। मैंने अभी आप से निवेदन किया कि योजनाबद्ध कार्य भी हर देश की परिस्थितियों के अनुसार होते हैं। हमारे देश की जो परिस्थितियां हैं और कंट्रोल्ज का हम को जो अनुभव हुआ है, उसके आधार पर मैं वित्त-मंत्रीजी से जोर देकर कहना चाहता हूं कि इस अभिशाप को वे फिर से इस देश पर लागू न करें। कीमतों का कंट्रोल मेरी समझ में आता है, लेकिन वस्तुओं के कंट्रोल का जो नतीजा इस देश में निकला था, जिस प्रकार का भ्रष्टाचार इस देश में फैला था, उन सब बातों को देखते हुए, चाहे कंट्रोल साम्यवादी और समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार भी क्यों न हो, उन को लागू करना मैं उचित नहीं मानता। सिद्धान्त मानवों के लिए होते हैं, देश के लिए होते हैं, मानव और देश सिद्धान्तों के लिए नहीं होते ; इसलिये जितना भी मुझ में बल है, उस सारे बल के साथ मैं कहना चाहता हूँ कि श्री अशोक मेहता की कंट्रोल की बात को हमारे देश की परिस्थितियोंके अनुसार फिर से कभी भी कार्यरूप में परिणत न किया जाये।

उसी के साथ कल श्री एच० एन० मुकर्जी ने एक बात कही मिक्स्ड इकोनोमी (मिश्रित अर्थ-व्यवस्था) के विषय में। उन्होंने यहां तक कह डाला कि यह बजट कुछ राजनीतिक बातों को ध्यान में रख कर और अगले चुनावों को ध्यान में रख कर बनाया गया है। उन के इस कथन पर मुझे तो एक कहावत याद आती है कि सावन के अन्धे को सदा हरा-हरा ही सूझा करता है। इस प्रकार का बजट आने पर भी यदि श्री एच० एन० मुकर्जी को उस में राजनीति की गंध आती है और मिक्स्ड इकोनोमी (मिश्रित अर्थ-व्यवस्था) के सम्बन्ध में वे इस प्रकार की भावना को व्यक्त करते हैं, जो उन्होंने की है, तो मैं यही कहूंगा कि वे सावन के अंधे हैं। मैंने अभी आप से निवेदन किया कि हर देश की अपनी-अपनी परिस्थितियां होती हैं। साम्यवादी और समाजवादी देशों की रचना को भी हम देखें, तो मालूम होगा कि वे भी उन देशों की परिस्थितियों के अनुसार हैं। श्री० एच० एन०

मुकर्जी साम्यवादी हैं, साम्यवादी दल के उपनेता हैं। क्या वे कभी जो आर्थिक व्यवस्था रूस में है, उस को देखते हैं, चीन में है उस को देखते हैं? चीन में मैं स्वयं गया हूं और मैंने चीन के साम्यवादी ढांचे को देखा है। उस देश के एक साम्यवादी देश होने हुए भी वहां उसी प्रकार की मिक्स्ड इकोनोमी (मिश्रित अर्थ-व्यवस्था) है, जिस तरह की हमारे देश में है।

इन योजनाओं के मोटे रूप से दो लक्ष्य होते हैं, एक बौद्धिक निर्माण और दूसरे आर्थिक निर्माण। इन दोनों निर्माणों की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए। यदि हम इन दोनों निर्माणों की ओर मोटे रूप से देखें, तो बौद्धिक निर्माण में हिन्दी सब से पहले आ जाती है। और आर्थिक निर्माण में गाय सब से पहले आ जाती है। आप कहेंगे कि मैं फिर वही बातें कह रहा हूं, जो मैं सदा से कहता रहा हूं। मैं आप से कहना चहता हूं कि जो बात महत्व की होती है, वह सदा एक-सी होती है। इन दोनों निर्माणों के क्षेत्र में हम आगे बढ़ रहे हैं, इसमें कोई सन्देह नही; परन्तु जिस तेजी से हम को बढ़ना चाहिए, उस तेजी से हम नहीं बढ़ रहे हैं। जहां तक हिंदी का सम्बन्ध है, शिक्षा मंत्रालय की यह रिपोर्ट मेरे सामने है। इस रिपोर्ट में लिखा है कि हिन्दी-प्रसार और विकास के लिए केन्द्र ने गैर सरकारी संघटनों को पर्याप्त मात्रा में अनुदान दिये। अब वह पर्याप्त मात्रा कितनी है, वह आप जरा देखिये। इसके लिए ४,८९,८७० रुपये के अनुदान दिये गये हैं। जिन क्षेत्रों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन क्षेत्रों में क्या चार या पांच लाख प्रति वर्ष का अनुदान हिन्दी प्रचार के लिए यथेष्ट माना जाता है?

श्री कामत (होशंगाबाद)—बहुत कम है।

सेठ गोविन्ददास—यदि इस नीति से हिन्दी का अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में प्रसार हुआ, तो अगले १० वर्षों में हम हिन्दी को उस का उचित स्थान कदापि नहीं दिला सकेंगे।

जहां तक हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली का सम्बन्ध है, एक बात मौलाना आजाद साहब ने मेरे भाषण पर सदन में यह कही थी कि पारिभाषिक शब्दावली जो अंग्रेजी की है, वह इंटरनेशनल नहीं है, अन्तर्राष्ट्रीय नहीं है, इसका मेरे पास क्या प्रमाण है। उस समय तो मेरे पास कोई लिखित प्रमाण नहीं था; पर उस के बाद मैं दिल्ली के भिन्न-भिन्न देशों के दूतावासों में गया, उन से परामर्श किया और आज मेरे पास इस बात का प्रमाण है कि यदि हम इंगलैंड और अमेरिका को तथा इंगलैंड के चार उपनिवेशों को, यानी साउथ अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और न्यूजीलैंड को छोड़ दें, तो शेष स्थानों में अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली नहीं है; अतः अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली को अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली नहीं

कहा जा सकता। आप को यह बात सुन कर हर्ष होगा कि हमारे पड़ोसी स्याम देश में तो पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत भाषा से बनायी गयी है ; अतः इस संबन्ध में जो कुछ शिक्षा-मंत्रालय ने किया है, वह संतोषजनक नहीं है।

अब तीसरी बात मुझे साहित्य-निर्माण के विषय में कहनी है। गत वर्ष के अपने भाषण में मैंने यह कहा था कि जहां आप नहरों के ऊपर, उद्योग-धंधों के ऊपर करोड़ों और अरबों रुपया खर्च कर रहे हैं, वहां साहित्य-निर्माण के लिए आप को कम-से-कम पांच करोड़ रुपया प्रतिवर्ष अवश्य खर्च करना चाहिए। यदि इस देश का आप बौद्धिक निर्माण करना चाहते हैं, तो बिना इतनी धनराशि के हम हिन्दी के साहित्य को तैयार नहीं कर सकेंगे।

और हिन्दी की जो अन्तिम बात मुझे कहनी है, वह सरकारी क्षेत्रों में हिन्दी के चलन के सम्बन्ध में है। यह काम भी बहुत धीमी गति से हो रहा है। मैं यह नहीं कहता कि शिक्षा-मंत्रालय हिन्दी के सम्बन्ध में कुछ नहीं कर रहा है ; पर देश इस विषय में एकमत है कि शिक्षा-मंत्रालय हिन्दी के सम्बन्ध में जो कुछ कर रहा है, वह असंतोषजनक है।

दूसरी बात मैंने आप से गाय के सम्बन्ध में कही। गाय के ऊपर इस देश का सारा आर्थिक भविष्य निर्भर है। हमारे यहां पर भूमि का जिस प्रकार का वितरण है और भूदान-यज्ञ के कारण तथा जमीन का सीलिंग (उच्चतम सीमा) होने के बाद, जिस प्रकार का भूमि का वितरण हो जायेगा, उस में हम ट्रैक्टरों से काम नहीं कर सकेंगे। हमें बैलों की जरूरत होगी और बैल हम को गायों से ही प्राप्त हो सकते हैं। फिर यह देश निरामिष भोजी है। वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धान्त हमने स्वीकार किया है। ऐसी अवस्था में इस इतने बड़े निरामिष भोजी देश में यदि फिर से मछली खाने का प्रचार किया जाये, या मुर्गी खाने का प्रचार किया जाये, या और इस प्रकार के प्रचार किये जायें, और वह भी हमारी स्वतंत्र भारत की सरकार करे, तो मुझे इस प्रकार के प्रचार से हार्दिक दुःख होता है ; अतः हम निरामिष-भोजियों को दूध के लिए, घी के लिए भी गायों की आवश्यकता है।

जहां तक गो-वध-बन्दी का सम्बन्ध है, हम बराबर आगे बढ़ रहे हैं। मेरा विधेयक इस सदन ने तो स्वीकार नहीं किया, पर उसके बाद उत्तर प्रदेश में, बिहार में गो-वध-निषेध के विधेयक पास हुए हैं। पंजाब में भी वह होने वाला है। हमारे मध्य प्रदेश में सब से पहले वह विधेयक पास हुआ था, लेकिन उस में बैलों का वध शामिल नहीं था। वह भी किया जाने वाला है।

लेकिन गो-वध के अतिरिक्त जहां तक गो-संवर्धन का सम्बन्ध है, हम आगे नहीं बढ़ रहे हैं। सरकार ने निश्चय किया था कि वह १६० गो-सदन स्थापित करेगी,

लेकिन १६० गोसदनों के स्थान पर केवल २० गो-सदन स्थापित किये गये हैं। सरकार ने निश्चय किया था कि सांड तैयार करने के लिये वह १२५ फार्मों की व्यवस्था करेगी। सांडों के तैयार करने के लिए १२५ के स्थान पर एक फार्म की भी स्थापना नहीं की गयी।

इसके अतिरिक्त चारे की रक्षा और उत्पादन, ये दोनों अत्यंत आवश्यक चीजें हैं। आप रेल से भारत के पूर्व से पश्चिम या उत्तर से दक्षिण कहीं भी चले जाइये, आप को रेल के दोनों तरफ जंगलों में चारे की इफरात मिलेगी, जो या तो गरमी की गरम हवा में जल जाता है, या बरसात में गल जाता है, या शीत ऋतु में भस्म हो जाता है। अगर उस चारे की हम रक्षा कर सकें, और साथ ही हम चारे का उत्पादन कर सकें, तो इस प्रश्न को हल करने में बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। लोग बड़ी भूल कर रहे हैं, जब वे यह कहते हैं कि इस देश में आदमियों के लिए तो खाना नहीं है और हम गो-वध बन्द करने की बात कहते हैं। यह बहुत बड़ी गलत-फहमी है। जो कुछ गायें खाती हैं, आदमी वह नहीं खाते। आदमियों का भोजन और गायों का भोजन, ये दोनों अलग-अलग हैं; इसलिए अगर हम इस इफरात चारे की रक्षा कर सकें और चारे का उत्पादन बढ़ा सकें, तो इससे संवर्धन में बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है।

अन्त में मैं आप से कहना चाहता हूं कि जहां तक योजनाओं का सम्बन्ध है, उन योजनाओं को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए जहां तक हमारे राष्ट्रीय बजट का सम्बन्ध है, हम को कुछ बातें सिद्धान्त के बतौर अपने सामने रखनी होंगी। मेरी दृष्टि से इन पंचवर्षीय योजनाओं का और इन बजटों का एक ही लक्ष्य हो सकता है और वह है बौद्धिक योजना और आर्थिक योजना। जैसा अभी मैंने आप से कहा, हम राजनीतिक कार्य में बहुत आगे बढ़ चुके हैं; लेकिन जहां तक बौद्धिक और आर्थिक उत्कर्ष है, वहां तक इन दोनों प्रश्नों से हिन्दी और गाय का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। मैं ३३ वर्ष से इस सदन में हूं और शायद आगे भी मैं इस सदन में रहूं। जब तक ये प्रश्न हल नहीं होंगे, मैं बराबर इन को सरकार के सामने रखता रहूंगा।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रस्ताव पर

८ सितम्बर, १९५६

सेठ गोविन्ददास—अभी कृपलानीजी का एक बड़ा लम्बा भाषण हुआ और मेरे हृदय में उन के लिये बड़ी इज्जत है। उन्होंने मेरे एक नये मित्र, जो अभी कांग्रेस में आये हैं, बैरिस्टर टेकचन्दजी, उन के सम्बन्ध में एक सीधी बात

कह दी। उन्होंने कहा कि वह कांग्रेस में नये आये हैं। मैं समझता हूं कि कृपलानी-जी मेरे लिये ऐसा नहीं कह सकते। इस का कारण यह है कि मैं कांग्रेस में १९२० से हूं और ३६ बरस मुझे इस ही संस्था में बीत गये हैं, यद्यपि उस संस्था को कृपलानी-जी ने छोड़ दिया है।

जहां तक उन के भाषण का सम्बन्ध है, उन्होंने गांधीजी के डिसेंट्रलाइजेशन (विकेन्द्रीकरण) के सिद्धान्त को यहां पर प्रतिपादित किया है। मैं बहुत दूर तक उन से इस विषय में सहमत हूं; परन्तु एक तरफ जब इस तरह का कोई प्रश्न आता है, तब कृपलानीजी गांधीजी की दुहाई देते हैं और जब हमारी वैदेशिक नीति पर चर्चा होती है, जो नीति गांधीजी के मतानुसार चल रही है, उस का भी वह विरोध करते हैं। अंग्रेजी में मैं उसे 'ब्लोईंग होट एण्ड कोल्ड इन दी सेम ब्रेथ' कहूंगा। जहां तक गांधीजी का सम्बन्ध है, उन्होंने सदा एक बात कही थी कि सत्य और अहिंसा इन दो सिद्धान्तों के अतिरिक्त जो कुछ भी वह कहते हैं, वह समय के अनुसार परिवर्तन-शील है। सत्य और अहिंसा परिवर्तनशील नहीं हैं और बाकी जितनी चीजें हैं, वे परिवर्तनशील हैं। इसके बाद कृपलानीजी ने हमारे बंगाल के मुख्य मंत्री श्री विधान-चन्द्र राय का एक लम्बा उद्धरण यहाँ पर दिया। उस उद्धरण में उन्होंने बड़े-बड़े उद्योग-धंधों का भी समर्थन किया है और छोटे-छोटे उद्योग धंधों का भी वह समर्थन करते हैं। मैं इस नीति से बिल्कुल सहमत हूं। मैं यहां तक कहने के लिये तैयार हूं कि जो उद्योग-धंधे झोपड़ियों में, कुटियों में चलाये जा सकते हैं, और उन के सम्बन्ध में अगर बड़ी-बड़ी फैक्टरियां हैं, बड़े-बड़े कारखाने हैं, तो उन को बन्द कर देना चाहिये। मैं आगे बढ़ कर यहां तक कहना चाहता हूं कि जहां तक सूत और कपड़े का सम्बन्ध है, वहां तक अगर हम सूत और कपड़े की इन सब मिलों को बन्द भी कर दें और खादी की अम्बर चर्खे आदि के द्वारा और हैंडलूम के द्वारा उत्पत्ति करें, तो कोई बुरी बात नहीं होगी; लेकिन उसी के साथ हम को कुछ बड़े-बड़े उद्योग-धंधों की भी आवश्यकता है। उन्होंने श्री विधानचन्द्र राय को उद्धृत किया; पर विधान बाबू ने यह भी कहा है कि हम को लोहे की जरूरत है, सीमेंट की जरूरत है। मैं कृपलानीजी से पूछना चाहता हूं कि अगर बड़े-बड़े उद्योग-धंधे इस देश में स्थापित नहीं किये जायेंगे, तो क्या कुटियों में लोहा और सीमेंट उत्पन्न हो सकता है। एक तरफ हम को बड़े-बड़े उद्योग-धंधों की आवश्यकता है और दूसरी तरफ हम को कुटीर-उद्योग-धंधों की भी जरूरत है। आज यदि गांधीजी होते, तो वह इस नीति का अवश्य समर्थन करते।

श्री नन्दाजी का भी यहां पर आज भाषण हुआ। यह भी एक लम्बा भाषण था। उन्होंने पंचवर्षीय योजना के तीन सब से प्रधान अंग बताये। पहला सार्व-

जनिक सहयोग, दूसरा ट्रेड परसनल (प्रशिक्षित कर्मचारी वर्ग) और तीसरा एकता। अब मैं इसी सम्बन्ध में कुछ बातें कहना चाहता हूं। इसके पहले जो योजना हम ने बनाई थी, उस को सफलतापूर्वक समाप्त कर, हमने यह दूसरी योजना बनाई है। इस योजना में केवल धन ही पर्याप्त नहीं है, धन के साथ जिस सार्व-जनिक सहयोग की नन्दाजी ने बात कही, उस की भी उतनी ही आवश्यकता है।

रूस और चीन दो ऐसे प्रधान देश हैं, जिन में ये योजनाएँ सबसे अधिक सफल हुई हैं; इसलिये हम देखें कि रूस और चीन ने इन योजनाओं के सम्बन्ध में प्रधानतया क्या किया है। सब से पहले उन्होंने अपने देश के उन कारीगरों का सहयोग लिया, जिन के यहां पुश्तों से किसी प्रकार की कारीगरी का काम चलता था, चाहे वे पढ़े-लिखे हों या न पढ़े-लिखे हों। मैं रूस तो नहीं गया, लेकिन चीन गया था और वहां जाने के बाद रूस की बहुत-सी बातें अपने-आप मालूम हो जाती हैं। उन कारीगरों को, चाहे वैज्ञानिक और टैक्निकल (प्राविधिक) शिक्षा न मिली हो, पर जीवन-भर काम करते-करते उन को कुछ विशेष अनुभव प्राप्त हुए थे। उन कारीगरों का चीन में आज भी पूरा-पूरा सहयोग लिया जा रहा है। चीन में मुझे मालूम हुआ कि रूस में भी यही बात हो रही है।

एक बात वहां पर और की गई। इन कारीगरों के अनुभवों का आधार वैज्ञानिक हो जाय और उस से उन को बल मिले, इस के लिये उन्होंने विशेष प्रबन्ध किया। उन्होंने इस प्रकार के विद्यालयों का आयोजन किया, जहां पर जीवन से प्राप्त उन के अनुभव को वैज्ञानिक आधार और बल प्राप्त होने के लिये शिक्षा दी जाती है।

चीन और रूस में कारीगरों का सहयोग प्राप्त करने के अतिरिक्त जनता का सहयोग भी प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। कारीगरों और जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिये रूस और चीन में जो सब से बड़ी-बड़ी बातें की गईं, वे क्या थीं? यहां पर मुझे अपनी वही पुरानी बात कहनी पड़ती है कि यह सहयोग उन से लिया गया, उन देशों की भाषाओं के द्वारा। हमारे यहाँ अभी हाल ही में २–३ सितम्बर को क्या हुआ है? यहां पर राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों की एक परिषद् हुई, और उस में जो निर्णय हुए, वे मुझे बड़े भयावह मालूम होते हैं। उन निर्णयों के सम्बन्ध में सरकार के प्रेस इन्फर्मेशन ब्यूरो के ३ सितम्बर के बुलेटिन में निकला है—

"The general consensus of opinion at the Conference was that the teaching of English should be compulsory at the secondary stage as well as the middle, the senior basic or the lower secondary stage. It is also agreed that the teaching of English should start in the same class in basic and non-basic schools. It was

recommended that steps be taken to ensure that by tne end of the secondary stage students acquire an adequate knowledge of English to enable them to receive education through English effectively at the university stage."

मैं आप से कहना चाहता हूं कि हम ने जो संविधान बनाया है, यह निर्णय उस की धाराओं के विरुद्ध है। मैं आप से कहना चाहता हूं कि स्वराज्य प्राप्त करने के पूर्व, राष्ट्रीय चेतना आने के बाद, हम ने अपनी माध्यमिक शालाओं में जो हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाया था, यह निर्णय उस के विरुद्ध है। मैं आप से कहना चाहता हूं कि स्वराज्य प्राप्त करने के बाद अपने अनेक विश्वविद्यालयों में हमने अपनी भारतीय भाषाओं को जो शिक्षा का माध्यम बनाया है, यह निर्णय उस के विरुद्ध है। इस के अतिरिक्त शिक्षा-विभाग में अब तक जितने आयोग और यूनिवर्सिटी एजूकेशन का प्रयोग हुआ, उन सब के प्रतिवेदनों को आप देखें। उन्होंने जो सिफारिशें की हैं, यह निर्णय उन के विरुद्ध है। इस स्थिति में, जब कि हमारी माध्यमिक शालाओं में हमारी भारतीय भाषाओं को चलते इतने दिन हो गये हैं, जब कि हमारे अनेक विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं का माध्यम हो चुका है, यदि आप माध्यमिक शालाओं में अंग्रेजी को कम्पलसरी--अनिवार्य—बनाना चाहते हैं या विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी को माध्यम बनाना चाहते हैं, तो आप का यह निर्णय स्वराज्य प्राप्त करने के पूर्व, पर राष्ट्रीय चेतना आने के बाद, जो कुछ आप करते आये हैं—स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् जो कुछ आप ने किया है, अपने संविधान में जो बातें इस सम्बन्ध में हमने रखी हैं, उन सब के खिलाफ जाता है। इतना ही नहीं, इस प्रकार आप को 'ट्रेंड परसनल' (प्रशिक्षित कर्मचारी) तैयार करने के उद्देश्य में भी सफलता मिलने वाली नहीं है। 'ट्रेंड प्ररसनल' को तैयार करने के लिए आप को शिक्षा की गति को तीव्रतर करना होगा और आप के अंग्रेजी को अनिवार्य बनाने और माध्यम रखने से तो शिक्षा की गति तीव्रतर न होकर उलटी मन्द होगी। इनके अतिरिक्त इस से जनता और शासकों के बीच खाई बढ़ती जायगी और संघर्ष का भय रहेगा। इन दृष्टियों से आप एक बड़ी भयानक बात करना चाहते हैं।

अभी जो श्री नन्दाजी ने सार्वजनिक सहयोग और ट्रेन्ड परसनल की बात कही, उस को यदि आप कार्य रूप में परिणत करना चाहते हैं, तो राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन में जो निर्णय हुआ है, उस को आप को खत्म करना होगा। फिर यह निर्णय किसी के ऊपर बाइंडिंग नहीं है—न तो किसी राज्य-सरकार के ऊपर और न किसी युनिवर्सिटी के ऊपर। मैं राज्य-सरकारों और विश्वविद्यालयों से यह अपील

करना चाहता हूं कि वे इस मामले में किसी दबाव में न आयें और शिक्षा-मंत्रियों के निर्णय को रद्दी की टोकरी में फेंक दें, जहां तक कि भाषा के विषय का सम्बन्ध है।

अपनी इस पंच-वर्षीय योजना में हम दो बातें करना चाहते हैं—एक तरफ तो हम अपना पार्थिव उत्कर्ष करना चाहते हैं और दूसरी तरफ बौद्धिक उत्कर्ष। केवल पार्थिव उत्कर्ष से हमारा काम चलने वाला नहीं है। जहां तक बौद्धिक उत्कर्ष का सम्बन्ध है, वहां तक अनेक वर्षों से जो अंगरेजी यहां से जा रही थी, स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हम ने निर्णय किया था कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् हिन्दी और हमारी भारतीय भाषाएँ अंगरेजी का स्थान लेंगी, उस अंगरेजी को आप फिर से हमारे देश पर लादना चाहते हैं। आप क्या करना चाहते है, यह मेरी समझ से बाहर है। क्या आप की इच्छा यह है कि हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, इन सब भाषाओं के स्थान पर इस देश के निवासियों की भाषा अंगरेजी हो जाय? आप का यदि यही उद्देश्य है, तो आप को इस में कभी सफलता मिलने वाली नहीं है। इस देश में पौने दो सौ वर्ष अंगरेजी राज्य रहा। उन लोगों ने हरचन्द प्रयत्न किया, हर तरह की कोशिश की कि इस देश पर अंगरेजी भाषा लादी जाय। नतीजा क्या निकला? नतीजा यह निकला कि जो देश किसी समय शिक्षा में संसार का सिरमौर था, सब से ऊंचा देश था, उस में सौ में से नब्बे आदमी निरक्षर भट्टाचार्य हो गये। यह बात भी विचारणीय है कि पौने दो सौ वर्ष के अंग्रेजी राज्य में आखिर इस देश में कितने आदमियों ने अंग्रेजी सीखी। मैं यहां पर केवल हिन्दी के सम्बन्ध में ही नहीं कहना चाहता। शिक्षा-मंत्रियों के जो निर्णय हुए हैं, वे हिन्दी के जितने विरुद्ध जाते हैं, उतने ही उन १३ भाषाओं के भी विरुद्ध जाते हैं, जिन को हमने अपने देश की राष्ट्रभाषाएँ मान कर अपने संविधान में स्थान दिया है। तो यदि आप अपनी पंचवर्षीय योजना में अधिक विकास के साथ, पार्थिव उन्नति के साथ बौद्धिक विकास या बौद्धिक उन्नति भी करना चाहते हैं, तो इन निर्णयों को खत्म करें।

फिर जब आप भावी ट्रेंड परसनल की बात सोचते हैं, तब क्या आप कभी इस बात को भी सोचते हैं कि जिन विश्वविद्यालयों में हमारे नौजवान अभी पढ़ रहे हैं, जिन्होंने अपनी भारतीय भाषाओं के माध्यम से अब तक शिक्षा प्राप्त की है, यकायक, एक दिन में, इतने वर्षों का प्रयत्न खत्म करने के बाद, उस को उलट देने के बाद, उन की क्या स्थिति होने वाली है? उन का भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय हो जाने वाला है; इसलिए आप चाहे इस योजना को पार्थिव दृष्टि से देखें, चाहे आप इस योजना को बौद्धिक दृष्टि से देखें, किसी भी दृष्टि से देखें, हमें इस बात की

आवश्यकता है कि हम अपना टेकनिकल परसनल अपनी भारतीय भाषाओं की शिक्षा के माध्यम द्वारा तैयार करें। और इसके लिए हमें करना क्या चाहिए? हमें सब से पहले यह बात करनी चाहिए कि हम शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखें। मैंने कभी इस बात को नहीं कहा कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी रखा जाये। मेरा स्पष्ट मत है कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहां स्कूलों की शिक्षा का माध्यम प्रान्त की भाषा हो। मेरा स्पष्ट मत है कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहां विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम प्रान्त की भाषा हो। मेरा यह स्पष्ट मत है कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन प्रान्तों की अदालत की भाषा उन प्रान्तों की भाषा हो। यह प्रश्न हिन्दी का नहीं है। यह प्रश्न प्रान्तीय भाषाओं और अंग्रेजी में आपस के संघर्ष का है। मैं आप से कहना चाहता हूं कि जो नीति शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन ने निर्धारित की है, यदि उस का अनुसरण किया गया, तो यह देश के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होने वाली है। तो सर्व प्रथम हम शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखें, उस के बाद जब तक हमारे यहां ग्रन्थों का निर्माण नहीं हो जाता, तब तक हम अंग्रेजी से सहायता ले सकते हैं। मुझे अंग्रेजी से कोई शत्रुता नहीं है ; पर अंग्रेजी के ग्रन्थों से मुख्यतः सहायता लें हमारे अध्यापकगण। वह उन ग्रन्थों से सहायता लेकर हमारे विद्यार्थियों को उन की मातृभाषा में शिक्षा देने का प्रयत्न करें। कहा जाता है कि हमारे यहां अभी वैज्ञानिक ग्रन्थ तैयार नहीं हैं। जहां तक हिन्दी भाषा का सम्बन्ध है, वैज्ञानिक और औद्योगिक विषयों में ग्रन्थ बड़े परिमाण में हिन्दी भाषा में तैयार हो गये हैं और मैं समझता हूं कि यही स्थिति अन्य भारतीय भाषाओं में भी होगी। मैं यह नहीं चाहता कि वैज्ञानिक और औद्योगिक विषयों में शिक्षा देने के लिये हम को अंग्रेजी के माध्यम का सहारा लेना पड़े। हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी शिक्षा का माध्यम अपनी भाषाएँ रखें और आवश्यक ग्रंथों का निर्माण करायें। मैं अनेक बार यह बात कह चुका हूं कि जहां सरकार अपनी अन्य योजनाओं पर करोड़ों और अरबों रुपया खर्च कर रही है, वहां उसे ग्रन्थों के निर्माण पर कम-से-कम पांच करोड़ रुपया सालाना खर्च करना चाहिए, और मेरा निश्चित मत है कि अगर सरकार ने यह पांच करोड़ रुपया ग्रन्थों का निर्माण करने के लिए खर्च किया, तो केवल हिन्दी में नहीं, बल्कि देश की अन्य भाषाओं में भी बड़ी मात्रा में आवश्यक ग्रन्थों की रचना हो जायगी। इन ग्रन्थों के निर्माण की बात पर मैं अनेक बार सरकार का ध्यान आकर्षित कर चुका हूं। अगर इन ग्रन्थों का निर्माण यहां की भाषाओं में कर दिया जाये, तो शिक्षा की गति तीव्रतर ही नहीं, बल्कि तीव्रतम हो जायेगी और जो आप अंग्रेजी के माध्यम द्वारा टेकनिकल परसनल बनाना चाहते

हैं, उस की आप को आवश्यकता नहीं रहेगी। जरूरत इस बात की है कि हम ग्रन्थों का निर्माण करें। इस बात की जरूरत नहीं है कि हम अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनायें।

आप चीन का उदाहरण लीजिये। मैं चीन गया था। मैंने वहां क्या देखा। मैंने वहाँ पर देखकर यह महसूस किया कि यद्यपि चीनी लिपि बड़ी कठिन है; हमारी लिपि तो बड़ी वैज्ञानिक है, लेकिन उन की लिपि इतनी कठिन होते हुए भी सारे वैज्ञानिक और औद्योगिक विषयों के ग्रन्थ चीनी भाषा में तैयार हो गये हैं और उन को किसी अन्य भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती। मैंने देखा कि उन की जितनी टेकनिकल शब्दावली है, वह सारी चीनी भाषा में है। उन्होंने इतने टेकनिकल ग्रन्थ अपनी भाषा में बना लिये हैं कि यहां बैठ कर आप उन की कल्पना भी नहीं कर सकते। वहां पर जितनी वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा दी जाती है, वह चीनी भाषा के माध्यम से ही दी जाती है, अंग्रेजी के द्वारा नहीं। फिर मैंने देखा कि उन को अपनी भाषा पर गर्व है और वे उस को बड़ा गौरव का स्थान देते हैं। वहां पर एक साइनोइंडियन फ्रेंडशिप एसोसियेशन है, जिस की शाखाएँ यहां पर भी हैं, मुझे स्टेशन से लेने के लिए उस एसोसियेशन के उप-सभापित आये थे। उन का नाम श्री चैन था। वह अपने साथ एक दुभाषिया लाये थे और उसके जरिये उन्होंने मुझ से बातचीत करना शुरू किया। वह दुभाषिया हिन्दी नहीं जानता था; पर अंग्रेजी जानता था। वह उन के भाषण को मुझे अंग्रेजी में बता देता था और जो मैं कहता था, उसे उन को चीनी भाषा में समझा देता था।

लेकिन दूसरे दिन जब श्री चैन मेरे पास आये, तब उन्होंने धड़ाके से अंग्रेजी बोलना शुरू किया। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, क्यों कि एक रात में तो कोई आदमी अंग्रेजी नहीं सीख सकता था। मैंने उन से पूछा कि कल तो आप अपने साथ एक दुभाषिया लाये थे; पर आज आप मेरे साथ धड़ाके से अंग्रेजी बोल रहे हैं, इस का क्या कारण है। उन्होंने मुझे बतलाया कि उन की गवर्नमेंट की यह इच्छा है कि किसी भी विदेशी के साथ चीनियों को अपनी भाषा में ही बातचीत करनी चाहिए और इस कार्य के लिए दुभाषियों को अपने साथ रखना चाहिए। उन्होंने मुझ से कहा कि चूं कि आप यहां पर चार-पांच दिन ही रह रहे हैं, इसलिए अगर दुभाषिये द्वारा बात-चीत की जायेगी, तो समय अधिक लगेगा और बात कम हो पायेगी। अस्तु, मैंने अंग्रेजी में बोलना शुरू कर दिया। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उन को अपनी भाषा का कितना गौरव है। आप चाहे तो अंग्रेजी को एक विषय के रूप में पढ़ायें, मुझे उससे कोई विरोध नहीं है; लेकिन न तो हर व्यक्ति को यहां अंग्रेजी पढ़ने की जरूरत है और न अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाना आवश्यक है। हमारी

शिक्षा का माध्यम हमारी भाषाएं हों। हमारे जितने वैज्ञानिक और औद्योगिक विषयों के ग्रन्थ हैं, वे हमारी भाषाओं में तैयार किये जायें। ऐसा करने से हम को अपनी योजनाओं में काम करने के लिए प्रशिक्षित कर्मचारी बड़ी संख्या में उपलब्ध हो सकेंगे ; लेकिन जिस समय हम अपनी द्वितीय पंचवर्षीय योजना तैयार कर रहे हैं, दुर्भाग्य से उसी समय शिक्षा-मंत्रियों का सम्मेलन हुआ और उसने यह निर्णय किया। शिक्षा-मंत्रियों के इस निर्णय से सारे देश में एक तहलका मच गया है। सरकार को कोई-न-कोई ऐसी बात करनी चाहिए कि यह तहलका दूर हो जाये।

अभी कल ही हमारी संसदीय हिन्दी-परिषद् की बैठक हुई, जिस में कि आप के अध्यक्षजी श्री अनन्तशयनम् आयंगर भी उपस्थित थे, अन्य भाषाभाषी भी थे, श्री राजभोज आदि और बहुत-से लोग थे। उस बैठक में सब ने सर्व-सम्मति से एक प्रस्ताव पास किया। चूंकि इस प्रस्ताव में इस कार्य सम्बन्धी सारे उद्देश्य आ गये हैं, इसलिए आप की इजाजत से मैं इस प्रस्ताव को पढ़ देना चाहता हूं। वह प्रस्ताव इस प्रकार है—

"पिछली २ और ३ सितम्बर को शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन में प्रधान मंत्री और केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री ने जो भाषण दिये और सम्मेलन की ओर से जो सुझाव हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं के चलाने के सम्बन्ध में दिये गये, उन से संसदीय हिन्दी-परिषद् को बहुत खेद हुआ है और हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं के भविष्य के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न हुई है। इन भाषाणों तथा सुझावों में इस बात पर जो बल दिया गया है कि वैज्ञानिक और औद्योगिक विषयों के लिए प्रशिक्षण की भाषा हिन्दी और भारतीय भाषाएं न रहें, किन्तु अंग्रेजी रहे और इस कारण सब विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक कक्षाओं तथा उन से नीचे की कक्षाओं में अंग्रेजी अनिवार्य हो, और विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी ही हो, यह संविधान के अभिप्राय के विरुद्ध और देश के लिए भयावह है।"

संविधान के अनुसार नियुक्त भाषा आयोग के प्रतिवेदन के उपस्थित हो जाने पर भी बिना प्रतिवेदन पर विचार किये हुए, इस प्रकार हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी के सम्बन्ध में नये प्रस्ताव का लाना सर्वथा अवैधानिक और अनुचित भावना का द्योतक है।

अंग्रेजी पढाने का प्रबन्ध रखना उचित है, परन्तु प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य करना, देश की प्रगति के विरुद्ध है और विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा में तथा उन की मौलिक चिन्तन-शक्ति के विकास में बाधा डालना है।

संविधान की स्वीकृति के पश्चात् बहुत-से विश्वविद्यालयों ने अंग्रेजी के स्थान में हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषा को अपना माध्यम बनाया है। अब नये सिरे से अंग्रेजी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाना तथा माध्यमिक शिक्षा में उस को अनिवार्य करना, देश की और शिक्षण की प्रगति को पीछे हटाना है। यह दृष्टि-कोण माध्यमिक शिक्षा-आयोग तथा विश्वविद्यालय-आयोग के प्रतिवेदनों तथा पंचवर्षीय योजना के प्रस्तावित शिक्षा-कार्यक्रम के भी विरुद्ध है। स्पष्ट जान पड़ता है कि इन सुझावों के सम्बन्ध में उच्च शिक्षा-विशेषज्ञों से सलाह नहीं ली गयी है; वरन् उनके विचारों की अवहेलना की गयी है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना योग्य है कि जिन बहुसंख्यक विद्यार्थियों ने हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं द्वारा विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा पाई है और जिनकी विशेष प्रवृत्ति अंग्रेजी भाषा की ओर नहीं रही है, उन के भविष्य को शिक्षा-मंत्री-सम्मेलन के सुझाव अन्धकारमय बना देते हैं।

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक पुस्तकें शीघ्रता से आ गयी हैं और आ रही है।

कई वर्षों से कुछ राज्यों के विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं का शिक्षण हिन्दी तथा कुछ अन्य भारतीय भाषाओं द्वारा हो रहा है। आवश्यकता यह है कि देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में भिन्न-भिन्न विषयों पर ऊंची पुस्तकों का निर्माण और प्रकाशन तीव्रता से किया जाये। रूस और चीन आदि देशों में जो इंजीनियर आदि प्रशिक्षित विद्यार्थियों की बहुसंख्या तैयार हो रही है, जिस का प्रधान मंत्रीजी ने निर्देश किया है, वह इस कारण से संभव हो सकी है कि वहां का प्रशिक्षण अपनी भाषा द्वारा होता है, अंग्रेजी या किसी अन्य विदेशी भाषा में नहीं।

हमारे देश में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं द्वारा प्रशिक्षण हो और हमारी भाषाओं में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक साहित्य प्रचुर मात्रा में आता जाय और साथ ही अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों का भी उपयोग अध्यापकगण करें, इस रीति से ही हमारे देश की वैज्ञानिक और औद्योगिक आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है।

संसदीय हिन्दी-परिषद् आशा करती है कि केन्द्रीय शासन इस शिक्षा-मंत्री-सम्मेलन के भाषणों और सुझावों को महत्त्व न देगा और अस्वीकार करेगा।

राज्य-शासनों तथा विश्वविद्यालयों को इस परिषद् का सुझाव है कि वे बिना विचारे और दबाव में आकर कोई प्रतिगामी नीति स्वीकार न करेंगे।

मुझे अब और कुछ नहीं कहना है। मैं इस योजना की हृदय से सफलता चाहता हूं। मैं इस योजना का अनेक अंशों में स्वागत करता हूं और समर्थन करता हूं।

कृपलानीजी के एक मत से मैं जरूर सहमत हूं कि जहां कहीं हम कुटीर-उद्योगों को प्रोत्साहन दे सकें, वहां हम बड़े-बड़े कारखाने न बनायें।

अन्त में मैं एक सुझाव और देना चाहता हूं। हम कैपिटल अर्थात् पूंजी मांगते हैं। पूंजी पर हम सभी जोर देते हैं। मेरा सुझाव यह है कि हम पूंजी की तरह श्रम भी उधार लेने का प्रबन्ध करें। हम श्रम मुफ्त में लेने की कोशिश न करें, उधार लेने की कोशिश करें। हम इस प्रकार की कोई योजना बनायें, जिसमें हम श्रम को उधार ले सकें और इस योजना को कार्य-रूप में परिणत कर सकें।

अन्त में मैं कहना चाहता हूं कि मैं श्री नन्दाजी के एक मत से सर्वथा सहमत हूं कि कई ऐसी चीजें हैं, जिनसे हमें दलबन्दी और राजनीति को अलग रखना चाहिये, और उन को अलग रख कर हम को एक मत से काम करना चाहिये और उन का समर्थन करना चाहिये। यह बात मैं अनेक बार पहले भी कह चुका हूँ। जो देश की उन्नति के काम हैं, जैसे पंचवर्षीय योजना, उन में सब दलों को इकट्ठा होकर काम करना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि जिस प्रकार हम पहली योजना में सफल हुए, जब कि हमें कोई अनुभव नहीं था, अब हम को अनुभव भी हो गया है, दूसरी पंचवर्षीय योजना को, जो उससे कहीं बड़ी है, हम पांच वर्षों के स्थान पर चार वर्षों में ही सफल कर देंगे। हमारा देश इस बारे में सरकार को पूरा सहयोग देगा।

शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर

२५ जुलाई, १९५७

सेठ गोविन्ददास (जबलपुर)—सभापति महोदय, हमारे शिक्षा-विभाग की प्रति वर्ष उन्नति होती जा रही है, शिक्षा का प्रसार बढ़ रहा है, शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएं अधिक खुल रही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है और इसीलिये हमारे जो विरोधी दल के सदस्य हैं, उन्होंने अपने अभी के भाषण में इस बात को स्वीकार किया है। इस दृष्टि से हमारा शिक्षा-मंत्रालय बधाई का पात्र है।

परन्तु यह बधाई देते हुए मुझे इस सम्बन्ध में एक दूसरी बात भी दिखाई देती है। हम को स्वतंत्र हुए दस वर्ष हो गये, हमारे संविधान को लागू हुए सात वर्ष हो चुके; पर इतना समय बीत जाने पर भी अभी हमें अपने शासन का कार्य जन-भाषा में होते हुए दिखाई नहीं देता और यह हमें दिल्ली में इस संसद् में सबसे अधिक दृष्टिगोचर होता है। यदि हम इस देश में प्रजातन्त्र को चलाना चाहते हैं, ऐसे प्रजातंत्र को, जो इस समय दुनियां का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है और जिस प्रजातंत्र

के निवासियों में हर एक को बालिग मताधिकार प्राप्त है, तो वह प्रजातन्त्र बहुत दिन तक नहीं चल सकेगा यदि हम उस प्रजातंत्र के कार्य में जनभाषाओं को, उन्हें जो स्वाभाविक रूप से अधिकार प्राप्त हैं, उस अधिकार से वंचित रखें। दूसरे देशों के इतिहास को देखिए। अनेक देशों ने स्वतन्त्र होते ही अपने शासन में अपनी भाषाओं को किस प्रकार स्थान दिया। आयरलैंड का मैं दृष्टान्त देता हूँ। बर्मा का मैं दृष्टान्त देता हूँ। हिन्देशिया के देशों का मैं दृष्टान्त देता हूँ और सब से आखिर में मैं इजराइल का दृष्टान्त देता हूँ। जिस इजराइल को पुरानी हिब्रू भाषा का पता नहीं रहा था, वह भाषा मृत भाषा हो गई थी, उस इजराइल ने स्वतन्त्र होते ही पुनः हिब्रू भाषा का नया निर्माण किया और आज थोड़े वर्षों के बाद इजराइल के सारे शासन का कार्य हिब्रू भाषा में चलता है।

हमारी पहली पंचवर्षीय योजना समाप्त हो गई। दूसरी पंचवर्षीय योजना चल रही है। यह कहा जाता है कि इस पंचवर्षीय योजना के लिये हमें टैक्नीशियंस की आवश्यकता है और वे टेक्नीशियंस हमें तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब कि हम अंग्रेजी के द्वारा उन्हें तैयार करें। मैं आप से कहना चाहता हूँ कि इससे ज्यादा और कोई गलत बात और कोई गलत-फहमी नहीं हो सकती। जरा देखिये, तो आज अंग्रेजी के द्वारा हमें अपने टैक्नीशियंस तैयार करने में कितना समय लगता है। हमारे जो विद्यार्थी हैं, उन पर प्रायः यह दोषारोपण किया जाता है कि उन को भाषा और भाषा के शब्दों को घोटने की आदत हो गई है, इस का क्या कारण है? इस का कारण यह है कि उन को शिक्षा विदेशी भाषा में दी जाती है ; और उनको जो उन को मातृभाषा है, उसमें शिक्षा नही दी जाती। यदि हम अपने देश में अपनी पंचवर्षीय योजनाओं को सफल करने के लिये टैक्नीशियन्स भी तैयार करना चाहते हैं तो हम को पर्याप्त संख्या में टैक्नीशियन्स तभी प्राप्त हो सकते हैं कि जब हम उन को उन की मातृभाषा में टैक्नीकल शिक्षा दें। जब अंग्रेजी राज्य यहां पर था, उस समय उन को सेना में सैपर्स ऐंड माइनर्स रहते थे, जिनका नाम हम ने सफरमैना पल्टन कर लिया है। वे जब भर्ती होते थे, तब उन को अपने विषयों का कोई टेकनिकल ज्ञान नहीं होता था ; पर उन को उनके विषयों की शिक्षा छः महीनों के अन्दर उन की मातृभाषा के द्वारा दे दी जाती थी। वे सड़कें बनाते थे, पुल बनाते थे, पुल तोड़ते थे, और इस प्रकार नाना प्रकार के कार्य करने के लिये छः महीनों के अन्दर दक्ष हो जाते थे। कहा जाता है कि हम को इस प्रकार की शिक्षा देने के लिये हमारे पास पर्याप्त साधन नहीं हैं, साहित्य नहीं है। मैं पूछना चाहता हूँ कि उस साहित्य को तैयार करने के लिये अब तक कौन-सा प्रयत्न किया गया है?

हमारे संविधान के अनुवाद के लिये हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी ने ३५ या ३६ महानुभावों की एक कमेटी बनाई थी। उस कमेटी के सदस्यों के नाम हर प्रान्तीय सरकार से मंगाये गये थे और उन सरकारों से कहा गया था कि उनके प्रान्तों में जो भाषा की विशिष्ट संस्थाएँ हैं, उन से पूछ कर उन सदस्यों के नाम भेजे जायें। वे ३५ या ३६ सदस्य कोई साधारण रूप में नामजद नहीं किये गये थे। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारों की सिफारिशों पर उन को नामजद किया गया था। हमारे संविधान का अनुवाद हर भाषा में उन के द्वारा ही हुआ। उस के बाद क्या हुआ? शिक्षा-मंत्रालय ने एक वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड बोर्ड आफ साइंटिफिक टर्मिनालजी स्थापित किया। उसमें थोड़े-से लोग हैं, जो नामजद किये हुए है और यह लोग संविधान में जिन शब्दों का उपयोग हो चुका था, जो शब्द प्रचलित हो चुके थे, उनके स्थान पर भी दूसरे शब्दों को गढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं शिक्षा-मंत्रीजी को उस समय का स्मरण दिलाता हूँ, जिस समय यह बोर्ड स्थापित हुआ था। सन् १९५० में इस बोर्ड की स्थापना की गई थी और यह घोषणा की गई थी कि यह बोर्ड पांच वर्ष के अन्दर अंग्रेजी शब्दों को इस प्रकार परिवर्तित कर भारतीय भाषाओं में रख देगा कि जिस से हमें वैज्ञानिक कार्यों के करने में शब्दावली मिल जाय। इस बोर्ड को स्थापित किये सात वर्ष हो गये, लेकिन इन सात वर्षों में इस बोर्ड ने जो शब्दावली तैयार की, वह आज केवल माध्यमिक शालाओं के लिये और केवल दो-तीन वैज्ञानिक विभागों के लिये है; वह भी अधूरी। फिर यह जो शब्द बनाये गये हैं, या जिन को बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, वे भी साधारण से साधारण शब्द हैं, जैसे काऊ शब्द का अनुवाद खेती-विभाग के लिये गाय किया गया। हार्स शब्द का अनुवाद किया है घोड़ा। कृषि-विभाग के जो शब्द तैयार किये गये हैं उन को देखें कि इस प्रकार के साधारण से साधारण शब्दों को वहां स्थान दिया गया है या नहीं, जिसकी कोई जरूरत नहीं थी। संविधान में जब इतने विशेषज्ञों ने मिलकर शब्दावली बनाई थी, तो उस शब्दावली में हेर-फेर करने की क्या आवश्यकता हुई, यह मेरी समझ के बाहर है। उस शब्दावली को काम में लाया जाय, तो हमारी विधियों के लगभग ७५ प्रतिशत शब्द मिल जाते हैं। शब्दों को बनाने का यह तरीका जो अख्त्यार किया गया है, यही गलत है। जब यह बोर्ड स्थापित हुआ, उस समय उसने कहा था कि हम २०००० शब्द प्रति वर्ष बनायेंगे, जिन की संख्या धीरे-धीरे बढ़ते हुए ५०,००० तक पहुँच जायेगी। मैं पूछना चाहता हूँ कि सात वर्षों में इस बोर्ड ने कितने शब्दों का निर्माण किया? इस विषय में मेरे सुझाव हैं। मेरा एक सुझाव यह है कि जो शब्द हमारे देश में प्रचलित हैं, उन में कोई परिवर्तन न कर उन को वैसा का वैसा ले लिया जावे।

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि हमारा संविधान शब्दों का भंडार है। जो शब्द संविधान में स्वीकार कर लिये गये हैं, उन में कोई हेर-फेर न किया जाय। इस हेर-फेर के सम्बन्ध में मैं कुछ दृष्टान्त दूंगा।

यूनियन पब्लिक सर्विस कमिशन के लिये संविधान में जो शब्द स्वीकार किये गये हैं, वे हैं संघ लोक-सेवा-आयोग। उस को बदलने के लिये इस बोर्ड ने एक पहाड़ खोदना शुरू किया और उस पहाड़ के खोदने के बाद निकला क्या? चुहिया। उसके स्थान पर उसने कौन-सा शब्द दिया? संघराज्य-सेवा कमीशन। सब लोग जानते हैं कि आयोग शब्द इस समय सारे देश में प्रचलित हो चुका है। आयोग शब्द के लिये कमीशन शब्द रख कर एक गंगा-मदार का जोड़ा बनाने का प्रयत्न करना भाषा के सौष्ठव की दृष्टि से भी ठीक चीज नहीं है। फिर यह बोर्ड भाषा में सरलता लाने के लिये ही शब्द नहीं बदल रहा है, कई सरल शब्दों की जगह कठिन शब्द ला रहा है। मसलन आरबीट्रेशन के लिये संविधान में मध्यस्थता शब्द का उपयोग किया गया है। यह बोर्ड उसके स्थान पर रखना चाहता है—विवाचन।

तीसरा मेरा सुझाव यह है कि जैसा हमारे संविधान में कहा भी गया है कि हमें अपनी शब्दावली प्रधानतया संस्कृत से लेनी चाहिये। यह इसलिये कि हमारी अधिकांश भाषाएँ संस्कृत से ही निकली हैं। हम को अपनी पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत से लेने में यह लाभ होगा कि उस शब्दावली का हम हरएक प्रान्त में प्रयोग कर सकेंगे। इस विषय में मैं एक बात और कहूँगा—अब हमें शब्दों के फेर में बहुत ज्यादा न पड़ कर—क्यों कि हमने सात वर्षों तक इस बात का विचार कर लिया—हमें अपना साहित्य तैयार करना चाहिये और साहित्य जब हम तैयार करें, तब जहां तक हमारे वैज्ञानिक साहित्य का सम्बन्ध है, वह हम उसी आधार पर करें, जिस प्रकार सफरमैना पल्टन का साहित्य तैयार होता था। उससे हम बहुत जल्दी इस कठिनाई को दूर कर देंगे।

इस सारे विषय में हमें नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। अंग्रेजी का आज भी इतना गुणगान होता है कि उस गुणगान को सुनते हुए मुझे दस वर्ष पहले के गुलाम भारत की याद आ जाती है। बड़े-बड़े आदमी, बड़े-बड़े नेता अंग्रेजी का गुणगान किया करते हैं। अभी हमारे एक बड़े नेता ने एक जगह यह कहा कि अंग्रेजी का प्रचार और प्रसार तो दुनिया में बहुत बढ़ रहा है। बढ़ रहा होगा। मुझे अंग्रेजी से कोई द्वेष नहीं। अंग्रेजी एक समृद्ध भाषा है, लेकिन मैं एक बात कहना चाहता हूँ कि चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न किया जाय, अंग्रेजी हिन्दी और हमारी भारतीय भाषाओं का स्थान इस देश में कदापि नहीं ले सकेगी। पौने दो सौ वर्षों

तक हम गुलाम रहे। उस समय इस बात के पूरे प्रयत्न किये गये कि अंग्रेजी भाषा हमारे देश पर लद कर इस देश की भाषा हो जाये; लेकिन पौने दो सौ वर्षों के शासन की भाषा अंग्रेजी होते हुए भी आखिर इस देश में कितने लोग अंग्रेजी पढ़ सके। मैं तो यहां तक कहना चाहूंगा कि जो अंग्रेजी ठीक तरह से बोल सकते हैं, या पढ़ सकते हैं, उन की संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती है। इस विषय में मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह केवल हिन्दी के लिए नहीं कह रहा हूँ। मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस देश को यदि आप शिक्षित करना चाहते हैं, तो हिन्दी और भारत की जो दूसरी भाषाएँ हमने संविधान में स्वीकृत की हैं, उन सब को हमें समान रूप से प्रोत्साहन देना होगा।

एक बड़ी भारी गलत-फ़हमी और है, जो अहिन्दी-भाषियों के मत में है। वह यह कि हम हिन्दी को अंग्रेजी के सदृश इस देश पर लादना चाहते हैं। यह बिल्कुल गलत है। अंग्रेजी को जो स्थान इस देश में प्राप्त था, वह हम हिन्दी को कदापि नहीं देना चाहते। जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन में शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा को रखा जाय, ऐसे प्रान्तों में न्यायालयों तथा विधान सभाओं की भाषा भी उन प्रान्तों की भाषा को रखा जाय। हिन्दी-भाषा हम केवल केन्द्र और अन्तर्प्रान्तीय कार्य के लिये चाहते हैं। इस देश को यदि हम एक सूत्र में बांधे रखना चाहते हैं, तो हमें एक भाषा की आवश्यकता है। इसीलिए संविधान में हमने हिन्दी को उस भाषा के रूप में स्वीकार किया है।

एक गलत-फहमी को मैं और दूर करना चाहता हूँ और वह यह है कि मैं हिन्दी को दूसरों—प्रान्तों की—भाषाओं से ऊँची भाषा नहीं मानता। कुछ भाषाओं का साहित्य शायद आज भी हिन्दी से ऊँचा होगा, लेकिन हिन्दी को हमने अपनी राजभाषा इसलिए स्वीकार किया है कि इस देश के आधे के करीब लोगों की यह मातृभाषा है और शेष अधिकांश लोग इसे समझ सकते हैं।

मैं शिक्षा-मंत्रीजी से यह निवेदन करूँगा कि वे अपनी नीति में परिवर्तन करें। वे देश के वायु-मंडल को बदलने का प्रयत्न करें। अब चूं कि नई लोक-सभा आयी है, इसलिए इस लोक-सभा के सदस्यों से भी मैं यह अपील करना चाहता हूँ कि वे भी संसद में हिन्दी को अधिकाधिक प्रयुक्त कर इस संसद के वायु-मंडल को बदलें। एक मांग जो मैं सदा किया करता हूँ, वह फिर मैं शिक्षा-मंत्रालय से करता हूँ। वह यह है कि सरकार अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं में करोड़ों-अरबों रुपए खर्च कर रही है, जहां तक हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का सम्बन्ध है, उन का साहित्य तैयार करने के लिए वह कम-से-कम पांच करोड़ रुपए अलग कर दें। मेरा विश्वास है कि यह रकम कोई बड़ी रकम नहीं है; और यह रकम अगर

सरकार ने साहित्य तैयार करने के लिए अलग रख दी, तो मुझे विश्वास है कि पांच वर्ष में हमें पर्याप्त साहित्य प्राप्त हो सकेगा।

जैसा कि मुझसे पहले बोलने वाले माननीय सदस्य ने कहा है—यदि हम इस देश की संस्कृति, इस देश के वायु-मंडल को भारतीय बनाना चाहते हैं और गुलामी से अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं, क्यों कि अंग्रेजी भाषा के साथ हमारी गुलामी का सम्बन्ध है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता, तो हम को इस सारी नीति में परिवर्तन करना पड़ेगा। जितनी जल्दी और जितनी दूर तक इस नीति में परिवर्तन करना चाहिए, मुझे खेद है कि हमारा शिक्षा-मंत्रालय वह नहीं कर रहा है। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि यह विषय उतना ही आवश्यक विषय है, जितना निर्माण के अन्य विषय हैं। क्या मैं आशा करूँ कि इस विषय में जो कुछ भी किया जा सकता है, वह अविलम्ब करने का प्रयत्न किया जायगा।

शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर

१७ मार्च, १९५९

सेठ गोविन्ददास—अध्यक्षजी, जहां तक शिक्षा-मंत्रालय का सवाल है, मैं उन लोगों में नहीं हूँ, जो यह कहते हैं कि स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् उसने कुछ भी नहीं किया है। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् हम, शिक्षा-मंत्रालय जो काम करता है, उसके कई क्षेत्रों में आगे बढ़े हैं। जब तक स्वर्गीय मौलाना अबुलकलाम आज़ाद हमारे शिक्षा-मंत्री थे, तब तक उन्होंने जो कुछ किया, उस में से जो तीन अकादमियाँ हैं, इनका एक ऐतिहासिक स्थान रहने वाला है। जब तक हम को स्वराज्य प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक स्वराज्य प्राप्त करना हमारा मुख्य उद्देश्य था। उसके बाद अब निर्माण का काम हमारा मुख्य उद्देश्य हो गया है, तो उपाध्यक्षजी, जैसा मैंने अभी निवेदन किया, उन लोगों में नहीं हूँ, जो यह मानते हैं कि शिक्षा-मंत्रालय ने कुछ नहीं किया है ; पर प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा-मंत्रालय ने, जो कुछ उसे करना चाहिये था, या जो कुछ हमारे देश की जनता उससे आशा करती थी, वह किया है या नहीं किया। स्वतंत्र देश-निर्माण के युग में सदा आगे बढ़ते हैं। हम भी आगे बढ़ रहे हैं ; परन्तु हमारे आगे बढ़ने की रफ्तार क्या वैसी है, जैसी होनी चाहिये ?

श्री दी० चं० शर्मा (गुरुदासपुर)—नहीं।

सेठ गोविन्ददास—मैंने आप से अभी निवेदन किया कि यह निर्माण का युग है। हमारे देश में निर्माण दो प्रकार का हो रहा है—एक पार्थिव वस्तुओं का

निर्माण है और दूसरा नई पीढ़ी का निर्माण है। जहाँ तक पार्थिव वस्तुओं के निर्माण का सम्बन्ध है, हम आगे बढ़े हैं और हर क्षेत्र में हमारा उत्पादन बढ़ा है, परन्तु जहाँ तक नई पीढ़ी का निर्माण है, मुझे यह बात अत्यन्त खेद के साथ कहनी पड़ती है कि हम करीब-करीब वहीं हैं, जहां उस दिन थे, जब हम स्वतंत्र हुए।

एक माननीय सदस्य—पीछे हैं।

सेठ गोविन्ददास—नई पीढ़ी के निर्माण के लिये सब से अधिक आवश्यकता उचित पाठ्यक्रम की पुस्तकों की है। हमने देखा है कि पाठ्यक्रम की जिस प्रकार की पुस्तकें होती हैं, जिस प्रकार का पाठ्यक्रम चलता है, उसके अनुसार नई पीढ़ी का निर्माण होता है। हिटलर के समय के जर्मनी का आप स्मरण कीजिये, मुसोलिनी के समय के इटली का स्मरण कीजिये और आप देखिये कि यद्यपि हिटलर और मुसोलिनी के सिद्धान्त ठीक नहीं थे, लेकिन उन्होंने इस प्रकार के पाठ्यक्रम को प्रयुक्त किया था कि उनके जमाने की नई पीढ़ी केवल कहती ही नहीं थी, बल्कि इस बात पर विश्वास करती थी कि नात्सीवाद ही जर्मनी का उद्धार कर सकता है, फासिस्टवाद ही इटली का उद्धार कर सकता है। आज हमारे यहां नई पीढ़ी का जो निर्माण हो रहा है, उसमें उचित पाठ्यक्रम न होने के कारण हम एक देशभक्त पीढ़ी तथा अपनी संस्कृति में प्रेम और श्रद्धा रखने वाली पीढ़ी का निर्माण नहीं कर रहे हैं। मैं अभी थोड़े दिन पहले केरल गया था। मैंने वहां देखा कि बहुत थोड़े समय में केरल की सरकार ने इस बात का प्रयत्न किया है कि वहां पर उनके सिद्धान्तों के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण हो जाय। मैं अपने शिक्षा-मंत्रीजी से कहना चाहता हूँ कि इस विषय में उन्हें जल्दी-से-जल्दी प्रगति करनी चाहिये।

हिन्दी को राजभाषा घोषित हुए इतना समय बीत गया है। समूचे देश को एक सूत्र में बांध रखने के लिये हमें एक भाषा की आवश्यकता थी। हिन्दी में कोई सुरखाब के पर नहीं लगे हैं। हिन्दी का हमारे देश में जो स्थान है, वह स्थान, जितनी भाषाएँ हमने अपने संविधान में स्वीकृत की हैं, उन सब का है। उन सब को मैं इस देश की राष्ट्र-भाषाएँ मानता हूँ. कोई बाहर से आई हुई भाषाएँ नहीं मानता हूँ। जो लोग कहते हैं कि हिन्दी के प्रति ही मेरा प्रेम है, वह मुझे गलत समझते हैं। मुझे सारी भारतीय भाषाओं से प्रेम है ; लेकिन प्रश्न यह है कि केवल वही राष्ट्रभाषा इस देश की राजभाषा बनाई जा सकती थी, जो कि यहां के आधे के करीब लोगों की मातृभाषा है और शेष अधिकांश लोग उसे समझते हैं। हिन्दी की प्रगति के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट शिक्षा-मंत्रालय से हमें मिली है, उसके आधार पर मैं कहना चाहता हूँ कि उन्होंने कुछ करने का अवश्य प्रयत्न किया

है, परन्तु वह अत्यन्त असंतोषजनक है। इस सम्बन्ध में एक सब से बड़ा प्रश्न जो हमारे यहां पर है, वह हमारे देश का अंग्रेजी के प्रति असाधारण प्रेम है। मैं दुनिया के करीब-करीब सब देशों में घूमा हूँ, मैंने किसी विदेशी भाषा के लिए इस प्रकार का प्रेम किसी देश में नहीं देखा कि जैसा यहां पर अंग्रेजी के प्रति है। मैंने एक बार कहा था कि अंग्रेज चले गये, मैकाले साहब चले गये, लेकिन मेकाले साहब अपने कुछ गोद लिये हुए पुत्रों को यहां पर छोड़ गये। उस पर कुछ टीका टिप्पणी भी हुई थी; परन्तु मैं फिर कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजी का जो समर्थन करते हैं, उन्हें मैं मेकाले साहब का दत्तक पुत्र मानता हूँ।

एक प्रश्न हिन्दी के सम्बन्ध में और है, वह हिन्दी के रूप के विषय में है। मुझे इस बात को देख कर बड़ा खेद होता है कि इस का कोई भी निर्णय अब तक नहीं हो पाया है। मैं इस बात को मानने वाला हूँ कि भाषा सरल से सरल होनी चाहिए, बोल-चाल की भाषा होनी चाहिए; परन्तु यह मानते हुए भी, जो हमारी वैज्ञानिक पुस्तकें हैं, शब्दकोष और शास्त्रीय पुस्तकें हैं, उनकी भाषा तो कठिन होगी ही। आज अंग्रेजी में फ़र्स्ट क्लास फ़र्स्ट एम० ए० के सामने भी अगर एलोपैथी या एटामिक एनर्जी की पुस्तक रख दी जाये, तो एक शब्द भी उन पुस्तकों का उस की समझ में नहीं आयेगा; इसलिए इस प्रकार की जो पुस्तकें हैं, वे कठिन होंगी ही और इस सम्बन्ध में मैं कहना चाहता हूँ कि हमारे बड़े-से-बड़े नेताओं के मन में भी बहुत बड़ा भ्रम है। अभी बम्बई में अपने एक भाषण में हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलालजी नेहरू ने एक बात कह दी कि "आर्टिफ़िशियल प्लैनेटेरियम" ठीक शब्द है, सरल शब्द है, लेकिन "कृत्रिम नभोमंडल" ठीक शब्द नहीं है। हमारे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि पंडित जवाहरलालजी नेहरू के सदृश हमारे नेता हैं। मैं इस बात को मानता हूँ कि अशोक के बाद कोई ऐसा व्यक्ति हमारे देश में नहीं हुआ कि जिसने हमारे देश को संसार में इतना ऊपर उठाया हो, जितना पंडितजी ने उठाया है; परन्तु पंडितजी को मैं कोई भाषा-विशेषज्ञ नहीं मानता और पंडितजी जब हिन्दी के सम्बन्ध में कोई बात कहते हैं, तो मुझे ऐसा लगता है कि वह अनधिकार चेष्टा करते हैं। जिस आदमी ने हिन्दी की प्राइमरी परीक्षा न दी हो, जो आज भी अगर हिन्दी की प्राइमरी परीक्षा में बैठे, तो फेल हो जाय, जिस आदमी ने कोई भारतीय भाषा न सीखी हो, जो संस्कृत का क, ख, ग, न जानता हो, वह इस तरह की बात कहे कि "आर्टिफ़िशियल प्लैनेटेरियम" सरल शब्द है बनिस्बत "कृत्रिम नभोमंडल" के, तो मैं कहता हूँ कि यह अनधिकार चेष्टा है। और जिन को हम इतनी इज्जत की दृष्टि से देखते

हैं, उन से मैं कहना चाहता हूँ कि इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा करने का वे प्रयत्न न करें।

जहां तक शब्दावली का सम्बन्ध है, मैं शुरू से इस मत का रहा हूँ, और जिस समय संविधान बन रहा था, उस समय भी मेरा मत था, कि हमारे संविधान में इस प्रकार की धाराएं जोड़ दी जायें, जिन से हमारी शब्दावली मूलतः संस्कृत से आये। यह प्रश्न कोई २०, २५, ५०, १००, २०० या ५०० शब्दों का नहीं है, यह प्रश्न लाखों शब्दों का है। जिस को आज अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली कहा जाता है, मैं आप से कहना चाहता हूँ कि अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली के सदृश दुनिया में कोई चीज नहीं है। अंग्रेजी शब्दावली जो है वह केवल इंगलैंड में, इंग्लैण्ड के चार उपनिवेश साउथ अफ्रीका, कैनाडा, न्यूजीलैण्ड और आस्ट्रेलिया तथा अमरीका में प्रयुक्त होती है। अंग्रेजी की जो पारिभाषिक शब्दावली है, वह किसी दूसरे देश में नहीं। हमारे पड़ोस में जो श्याम देश है, उस इलाके की पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत से ली हुई है। अगर पारिभाषिक शब्दावली, जिस को कि हम अन्तर्राष्ट्रीय या इंटरनेशनल कहते हैं, ज्यों-की-त्यों हमारे यहां ले ली जायेगी, तो हिन्दी या भारतीय भाषाएँ हिन्दी या भारतीय नहीं रह जायेंगी, वे कोई दूसरी भाषाएँ हो जायेंगी ; इसलिये पारिभाषिक शब्दावली के लिये सब से आवश्यक चीज यह है कि वह संस्कृत से लेकर ऐसी बनाई जानी चाहिये, जो कि हमारी १४ भाषाओं में, जिन को हमने अपने संविधान में स्वीकृत किया है, प्रयुक्त हो सके। यह तो मुझे हिन्दी के रूप के सम्बन्ध में कहना है।

लिपि के विषय में मुझे यह कहना है कि जहां तक लिपि का प्रश्न है, मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि आखिर इतने वर्ष बीत गये ; पर लिपि का निर्णय क्यों नहीं हो सका। लिपि का निर्णय न होने के कारण टाइप-राइटर के की-बोर्ड और टेलीप्रिंटर आदि सब रुके हुए हैं। मैं शिक्षा-मंत्रालय से कहना चाहता हूँ कि जहां तक लिपि का प्रश्न है, वह जल्दी-से-जल्दी उसे हल करें।

अब साहित्य-निर्माण की बात लें। शिक्षा-मंत्रालय से जो रिपोर्ट हमें दी गई है, उस में दिया हुआ है कि शिक्षा-मंत्रालय कुछ पुस्तकें खरीदना चाहता है। कुछ इधर-उधर की और भी छोटी-मोटी बातें करना चाहता है। इससे साहित्य-निर्माण का प्रश्न हल होने वाला नहीं है। आज हम अपनी पार्थिव योजनाओं पर करोड़ों-अरबों रुपये खर्च कर रहे हैं। मैंने कई बार ऐसी मांग की है और आज फिर कहना चाहता हूँ कि साहित्य-निर्माण के लिये, केवल हिन्दी-साहित्य-निर्माण के लिये नहीं, हमारी चौदहों भाषाओं के साहित्य-निर्माण के लिये शिक्षा-मंत्रालय को ५ करोड़ रुपया सालाना अलग कर देना चाहिये और शिक्षा-विशेषज्ञों, साहित्यिकों,

वैज्ञानिकों, शास्त्रियों के एक ऐसे समुदाय को एकत्र करना चाहिये, जिससे कि केन्द्रीय शासन के द्वारा हमारे साहित्य का निर्माण हो सके।

फिर अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी-प्रचार का सवाल है। इस के बारे में भी हमारे सामने जो रिपोर्ट है, उस में कुछ बातें कही गई हैं कि यह होने वाला है; लेकिन जो अवधि हमने हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर लाने के लिये रखी है, उस अवधि के अन्दर अगर हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान लेना है, तो अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार के सम्बन्ध में जो कहा गया है रिपोर्ट में, और जो रकम रखी गई है, वह अत्यन्त अपर्याप्त है। इसके लिये एक विशद योजना बननी चाहिये और उस योजना के आधार पर काम किया जाना चाहिये।

यह कहा जाता है कि हमें टेकनीशियनों की जरूरत है, कारीगरों की जरूरत है। मैंने चीन में जाकर देखा है कि वहां किस प्रकार कारीगर तैयार किये जाते हैं। उन कारीगरों को विदेशी भाषा में १०-१० या १२-१२ वर्ष तक शिक्षा नहीं लेनी पड़ती। उन में कुछ स्वाभाविक गुण होते हैं, उन सभी गुणों के आधार पर वे अपनी भाषा में शिक्षा पाते हैं। इस पुराने देश में अनेक कारीगर हैं, जिन में स्वाभाविक गुण हैं। अगर हमारी खुद की जन-भाषाओं में उन कारीगरों को तैयार करने का, टेकनीशियन्स को तैयार करने का काम किया जाय, तो १० या १२ वर्ष जो उन को अंग्रेजी भाषा सीखने में लग जाते हैं, वे नहीं लगेंगे और सरलता से यह कारीगर तैयार किये जा सकेंगे।

हम कोशों की तरफ अधिकतर ध्यान देते हैं। मैंने देखा है कि संसार की समस्त भाषाओं में पहले साहित्य तैयार होता है, तब कोश बनते हैं। यहाँ हम घोड़ों के आगे गाड़ी को रखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि पहले कोश तैयार हों, तब साहित्य का निर्माण हो। विविध प्रकार के साहित्य का हमें जो निर्माण करना है, उस की ओर हमारा ध्यान पहले होना चाहिये न कि कोशों की ओर। जब साहित्य का निर्माण होगा, तो कोश अपने-आप उस के साथ बनते जायेंगे।

अन्त में मेरा कहना है कि मानव और पशु में जो सब से बड़ा अन्तर है, वह अन्तर ज्ञान-शक्ति का है। इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य इसलिये है कि निसर्ग ने उसे जो ज्ञान-शक्ति दी है, वह किसी दूसरे प्राणी को नहीं दी। उस ज्ञान-शक्ति का विकास शिक्षा के द्वारा होता है। उस शिक्षा का मुख्य माध्यम भाषा है। साथ ही इस दुनिया में इतने बड़े जन-समुदाय की कोई भाषा नहीं है, जैसी कि हमारी हिन्दी है। हिन्दी के साथ ही हमारी १३ भाषाएँ और हैं, जिन को हमने अपने संविधान में स्वीकृत किया है ; इसलिये भाषा के प्रश्न को मैं शिक्षा-मंत्रालय के

सामने जितने प्रश्न हैं, उन में सब से अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ और उस में हिन्दी के प्रश्न के महत्व को सर्वाधिक। हम आज इस निर्माण के युग में एक दूसरे प्रकार की, अर्थात् नई पीढ़ी का निर्माण कर रहे हैं। उस नई पीढ़ी के ज्ञान का हम अपनी भाषा, अपने साहित्य के द्वारा विकास करने के लिये इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकें तैयार करें, जिससे हमारे देश का या हमारी दूसरी पीढ़ी का निर्माण सर्वाधिक हो सके।

मंत्री महोदय ने जो अनुदान सदन के सामने रक्खे हैं, इतना सब कहते हुए भी मैं आखिर में उन का समर्थन करता हूँ।

शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर

२५ मार्च, १९६०

सेठ गोविन्ददास—उपाध्यक्षजी, मैंने बड़े ध्यान से श्रीमती रेणु चक्रवर्तीजी और आचार्य कृपलानीजी के भाषण सुने। इन दोनों भाषणों से मुझे यह मालूम हुआ कि वे यह समझते हैं कि हमारा शिक्षा-मंत्रालय कुछ भी नहीं कर रहा है। मुझे भी उससे संतोष तो नहीं है; परन्तु डा० श्रीमाली और उन की मातहती में जो लोग कार्य कर रहे हैं, उन के लिये यह कहना कि उन्होंने अब तक कुछ भी नहीं किया, वे कुछ भी नहीं कर रहे हैं, गलत रास्ते पर चल रहे हैं—इससे कम-से-कम, मैं तो सहमत नहीं हूँ।

कृपलानीजी ने न जाने कितनी बार गांधीजी का नाम लिया।

कृपलानीजी की एक बात सुन कर मुझे हर्ष हुआ कि उन्होंने गांधीजी के कुछ बुनियादी सिद्धान्तों की बात कही ; पर जिस समय वे उन बुनियादी सिद्धांतों का जिक्र कर रहे थे, मुझे आश्चर्य हुआ यह देख कर कि उन्होंने गांधीजी की एक बुनियादी बात नहीं कही, जो मैं हमेशा यहां कहा करता हूँ और जो कि प्रमुख रूप से मैं आज भी यहां पर कहने वाला हूँ।

वह बात यह कि गांधीजी हमारी शिक्षा इस देश में किस भाषा में चलाना चाहते थे। जहां तक भाषा का सम्बन्ध है हमारी शिक्षा से, उसका बुनियादी सम्बन्ध है। यदि मैं इस विषय को छोड़ दूँ और शिक्षा की बाकी बातें कहता रहूँ, तो मैं मूल बात को छोड़ कर केवल शाखा और पत्तों की बात करता रहूँगा। मैं हमेशा इस मूल बात को उठाता रहा हूँ और आज फिर उठाना चाहता हूँ। भाषा के विषय में कृपलानीजी ने कुछ नहीं कहा; लेकिन मैं यह नहीं कहता कि श्रीमालीजी ने और उनके साथियों ने कुछ नहीं किया।

कुछ किया है, मैं यह कहता हूँ, पर कुछ करते हुए भी मैं यह कहना चाहता हूँ कि उन्होंने जो कुछ किया, वह भी नहीं के बराबर है।

भाषा आयोग और संसदीय समिति के प्रतिवेदन हो चुके। संविधान के अनुसार उन पर संसद में बहस होने की आवश्यकता नहीं थी, वह भी हो चुकी है; लेकिन इतने पर भी हम देखते हैं कि यह सब होने पर, घोषणाएँ होने पर, वचन मिलने, आश्वासन प्राप्त होने पर भी जहां तक हिन्दी का मामला है और भारतीय भाषाओं का मामला है, वहाँ तक हमारी सरकार एक अचल प्रतिमा के सदृश है। वह चलती ही नहीं है। जब मैं यह कहता हूँ तब मैं निराधार ही कहता हूँ, ऐसा नहीं है। अभी २६ फरवरी, १९६० को पार्लिमेन्टरी अफेयर्स के महकमे से एक पत्र गया है, सब मंत्रालयों को। उसमें लिखा हुआ है—

"The Ministry of Home Affairs, etc. are aware that the Committee on Government Assurances have adversely commented upon delays in implementation of assurances given on behalf of the Government on the floor of the Parliament. The Committee has noted that not even 10 per cent. of the assurances were being implemented within the time-limit of two months as recommended by the Committee in their First and Third Reports of the First Lok Sabha and in the First Report of the Second Lok Sabha. The Committee have desired that special efforts should be made by the Ministries and Departments concerned to expedite implementation of pending assurances."

जैसा कि अभी मैंने निवेदन किया, घोषणाएँ हो जाती हैं, आश्वासन दे दिये जाते हैं, लोगों के मन में यह बात पैदा कर दी जाती है कि चीजें हो रही हैं, लेकिन वे होती नहीं। इस भाषा के विषय में मैं क्या चाहता हूँ, हिन्दी के लोग क्या चाहते हैं, इस सम्बन्ध में मैं आज कुछ नहीं कहूँगा। मैं केवल एक बात कहना चाहता हूँ कि भाषा-आयोग की जिन सिफारिशों को संसदीय समिति ने स्वीकार कर लिया और संसद् में भी उस की रिपोर्ट के ऊपर बहस के दौरान में जिन सिफारिशों का कोई विरोध नहीं हुआ, कम-से-कम वे कार्य-रूप में परिणत की जायें, और अब उसमें अविलम्ब कार्य होना चाहिये।

हिन्दी के विषय को तीन मोटे भागों में बांटा जा सकता है——एक तो जो कार्य केन्द्रीय सरकार को करने हैं, दूसरे जो कार्य हिन्दी भाषा भाषीरा-ज्यों को करने हैं और तीसरे जो कार्य उन राज्यों में होने हैं, जिन की मातृभाषा हिन्दी नहीं

है। केन्द्रीय सरकार को जो कुछ करना है, उस में प्रमुख रूप से तीन मंत्रालय आते हैं। एक शिक्षा-मंत्रालय, दूसरा गृह-मंत्रालय और तीसरा विधि-मंत्रालय। शिक्षा मंत्रालय का अब सब से बड़ा काम वैज्ञानिक शब्दावली और वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण करना है। शब्दावली बिना साहित्य के नहीं बन सकती और बिना शब्दावली के वैज्ञानिक साहित्य निर्मित नहीं हो सकता। संसदीय समिति ने यह बात कही थी कि एक स्थायी आयोग नियुक्त होना चाहिये, जो कि हमारी शब्दावली का निर्माण करे। जहाँ तक इस शब्दावली का सम्बन्ध है, वह ऐसी आसान हो कि हमारी चौदहों भाषाओं में इस शब्दावली का उपयोग किया जा सके। मैं शुरू से कहता रहा हूँ, और आज फिर कहना चाहता हूँ कि जो वैज्ञानिक शब्दावली अंग्रेजी की है, उस को ज्यों-की-त्यों हम अपनी शब्दावली में रखने के लिये तैयार नहीं हैं। अंग्रेजी शब्दावली को अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली मानना, गलत बात है। वह केवल इंगलैंड, अमरीका और इंगलैंड के चारों उपनिवेशों—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, कैनाडा और अफ्रीका—में चलती है। शेष देशों में उन की अपनी शब्दावली है। आज जो बड़ी-सी वैज्ञानिक शब्दावली बन रही है, उस के कुछ नमूने मैं बतलाना चाहता हूँ। मैं यह कोई अपनी तरफ से नहीं बतलाना चाहता, सरकार की तरफ से जो कुछ प्रकाशित हुआ है, उस को ही बतलाना चाहता हूँ। आम हमारे यहाँ की वैज्ञानिक शब्दावली में कहलायेगा "मैंग्निफेरिया इंडिका"। कपास "कहलायेगी गासीपुइम हर्बैकम"। खजूर कहलायेगा "फाएनिक्स सिल्वेस्ट्रिस"। केला कहलायेगा "मूसा सेपिएन्टम"। नीम कहलायेगा "अजादिराल्ट इंडिका" और हींग कहलायेगी "टेरूला असा फाफिडा"।

यह तो मैंने केवल वनस्पति-शास्त्र के शब्द लिये हैं। पशु-शास्त्र की भी यही स्थिति है और दूसरे शास्त्रों की भी ऐसी ही। अगर हम इस अन्तर्राष्ट्रीय कहलाने वाली वैज्ञानिक शब्दावली को लेंगे, तो भाषा का यह रूप हो जायेगा। हम चाहते हैं कि आसान भाषा हो, लेकिन क्या यह भाषा को आसान बनाया जाना है? फिर एक बात का आप और ध्यान रक्खें। हमारे वैज्ञानिक भी आगे चल कर कुछ खोजें करेंगे, अगर आगे चल कर उन्होंने कुछ खोजें कीं, तो क्या उन की खोजों के नाम लातीनी भाषा में रखे जायेंगे? इसीलिये हमारे संविधान में कहा गया है कि मूलतः हमें अपनी शब्दावली संस्कृत से बनानी होगी और वह ऐसी बननी चाहिये, जो हमारी चौदहों भाषाओं में प्रयुक्त की जा सके। फिर वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण होना चाहिये। केवल शब्दावली बनने से काम नहीं चलेगा। वैज्ञानिक साहित्य कुछ विश्वविद्यालयों की मार्फत बनवाइये, कुछ विशिष्ट विद्वानों को देकर बनवाइये। आप इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकें एक वर्ष

या दो वर्ष के अन्दर तैयार कर लें, जो विश्वविद्यालयों में, महाविद्यालयों में और माध्यमिक शालाओं में चल सकें।

फिर केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में कुछ काम कर सकता है। मैं उन कामों का केवल ब्यौरा बता देता हूँ, क्यों कि मेरे पास बहुत समय नहीं है।

१—अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हर माध्यमिक शाला में हिन्दी का एक शिक्षक अनिवार्य रूप से रखा जाये। यदि राज्य-सरकारें यह व्यय न दें, तो केन्द्र को यह खर्च देना चाहिये।

२—हर माध्यमिक शाला में एक हिन्दी का पुस्तकालय हो।

३—हिन्दी में उत्तीर्ण लोगों को अच्छे पुरस्कार दिये जायें।

४—एक इंस्पेक्टर हर राज्य में रहे, जो इस बात को देखे कि उस राज्य में हिन्दी किस प्रकार चल रही है। हिन्दी के लिये हर वर्ष इन राज्यों में एक-एक परिषद् हो। वहाँ पर एक उत्साह पैदा किया जाये हिन्दी के लिये और वहाँ पर ये पुरस्कार बांटे जायें। फिर प्रामाणिक स्तर की गैर सरकारी संस्थाओं को भी—जैसे वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति है, दक्षिण भारत की हिन्दी-प्रचार सभा है—अनुदान दिये जायें। नागरी लिपि में अहिन्दी भाषा का साहित्य भी छापा जाये और उपर्युक्त काम के लिये एक करोड़ रुपया प्रतिवर्ष सरकार अलग रखे, जिस से कि ये काम किये जा सकें।

समस्त भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिये एक अकादमी की आवश्यकता है। अब अकादमी शब्द को तो हमने हिन्दी में अपना लिया है। मैं उन विदेशी शब्दों का, जो कि अब काफी प्रचलित हो गये हैं, उसी रूप में हिन्दी में प्रयोग करने के विरुद्ध नहीं हूँ। मैं नहीं चाहता कि स्टेशन, प्लेटफार्म और टिकट इत्यादि अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर हम हिन्दी शब्दों का प्रयोग करें। मैं उन का उसी रूप में हिन्दी भाषा में प्रयोग करना चाहता हूँ। अब चूं कि एकादमी हमारे यहाँ आ गया है, तो हमें उस का प्रयोग करना चाहिये।

टाइपराइटर के की-बोर्ड की अब तो कृपा कर घोषणा कर दीजिये।

केन्द्रीय सेवाओं के लिये परीक्षाओं का माध्यम वैकल्पिक रूप से हिन्दी भी होना चाहिये। उसके बिना हमारा काम चलने वाला नहीं है।

फिर आप को समस्त भाषाओं में विधि-शब्दावली के लिये एक आयोग नियुक्त करना है। जिस प्रकार आप को वैज्ञानिक शब्दावली के लिये एक स्थायी आयोग की नियुक्ति करनी है, उसी प्रकार विधि के शब्दों के लिये भी आप को एक स्थायी आयोग नियुक्त करना पड़ेगा।

उच्चतम न्यायालय का कार्य आगे चल कर हिन्दी में चल सके, इसके लिए आप को एक पंचवर्षीय योजना बनानी चाहिये। कृपलानी साहब ने योजना की बाबत कहा तो सब कुछ, लेकिन उन्होंने इस प्रकार का कोई सुझाव नहीं दिया कि इस विषय में आप योजना बनायेंगे।

जहां तक आपके डायरेक्टरेट का सम्बन्ध है, निर्देशालय का सम्बन्ध है, मैं उस का हार्दिक स्वागत करता हूँ। इस तरह के निर्देशालय की तो नियुक्ति बहुत पहले हो जानी चाहिये थी, पर एक बात इस सम्बन्ध में और है। कोई भी निर्देशालय कोई भी डायरेक्टरेट तभी काम कर सकता है, जब वह काम उचित आदमियों के हाथ में हो। केवल एक आयोग, एक समिति या एक निर्देशालय नियुक्त कर दिया जाय और उस में ठीक तरह के आदमी न हों, तो काम नहीं हो सकता। निर्देशालय किन आदमियों के हाथ में रहता है और आप किन को यह काम सौंपना चाहते हैं, इस पर भी बहुत-कुछ निर्भर करता है। मैं चाहता हूँ कि आप इसके लिये ऐसे योग्य आदमियों को नियुक्त करें, जिनको कि हृदय से हिन्दी और भारतीय भाषाओं से प्रेम हो और जिन की इच्छा हो कि हिन्दी और भारतीय भाषाएँ चलाई जायें। इस के लिए ऐसे आदमियों को आप नियुक्त करें, जिन को हिन्दी और भारतीय भाषाओं का ज्ञान हो। अगर आप ऐसा करेंगे, तो इसका बड़ा अनुकूल असर पड़ेगा। इसके लिए आप डायरेक्टरेट तो मुकर्रर कर रहे हैं, निर्देशालय तो आप बना रहे हैं; लेकिन इस निर्देशालय में ठीक आदमियों की नियुक्ति होनी चाहिये।

मैंने जैसे आरम्भ में कहा कि मैं यह नहीं मानता कि कोई काम नहीं हुआ है, मैं यह मानता हूँ कि कुछ काम हुआ है, लेकिन इसी के साथ मैं यह कहना चाहता हूँ, कि जिस प्रकार की घोषणाएँ हुई हैं, जिस प्रकार के आश्वासन दिये गये हैं, जिस प्रकार के वचन दिये गये हैं, उन को देखते हुए काम की गति बहुत धीमी है और यह गति कितनी धीमी है, इस के सम्बन्ध में मैंने अभी पालियामेन्टरी एफेयर्स के मुहकमे का एक पत्र आप को पढ़ कर सुनाया। मैं आशा करता हूँ कि यहां पर अब काम में देरी नहीं होगी। अगर हम इस देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना करना चाहते हैं, लोगों को बतलाना चाहते हैं कि इस देश में सच्चा स्वराज्य हो गया है, तो वे हमारी बात को तब तक सही नहीं मानेंगे, जब तक कि उन का पूरा-पूरा काम वे अपनी जन-भाषाओं में नहीं देखेंगे। यदि हम इस देश में प्रजातन्त्र चलाना चाहते हैं, तो यह स्पष्ट बात है कि प्रजातन्त्र विदेशी भाषा में नहीं चल सकता। आज हमारे सरकारी कामों में, हमारे निर्माण के कामों में, जो लोगों की दिलचस्पी नहीं है, लोगों का अनुराग नहीं है, उस का मुख्य कारण यह है कि हमारे यहां का जो साहित्य प्रकाशित होता है, अधिकांश में वह अंग्रेजी में होता

है। हमारे यहां जितना काम होता है, वह अधिकांश में अंग्रेजी में होता है। उसे लोग समझ नहीं पाते। लोग कभी-कभी मुझे गलत समझते हैं ; इसलिये मैं बिलकुल साफ कर दूं कि मैं केवल हिन्दी का ही पक्षपाती नहीं, बल्कि हिन्दी के साथ उन सभी भाषाओं का पक्षपाती हूं जो कि हमारे संविधान में दी हुई हैं। उर्दू के सम्बन्ध में मैं कहना चाहता हूं कि उर्दू का भी मैं समर्थक हूं। मैं चाहता हूं कि हम एक ऐसा समय देखें और अपनी उम्र में देखें, अपने जीवन में देखें, जब कि यहां पर सब के सब काम हिन्दी में और हमारी दूसरी भाषाओं में चलने लगे। मैं अंग्रेजी भाषा का भी द्वेषी नहीं हूं। मैं अंग्रेजी भाषा को आदर की दृष्टि से देखता हूं और उस के साहित्य को उच्च मानता हूं ; लेकिन मेरी स्थिति इस सम्बन्ध में गांधीजी के सदृश है। गांधीजी हमेशा यह कहा करते थे कि अंग्रेजों से वे प्रेम करते हैं, अंग्रेज उन के मित्र हैं, लेकिन अंग्रेजी राज्य को वह उस देश पर अस्वाभाविक मानते थे। उसी प्रकार मैं कहना चहता हूं कि मुझे अंग्रेजी भाषा से प्रेम है, अंग्रेजी-साहित्य से प्रेम है। कोई भी साहित्यिक, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, किसी भी भाषा और किसी भी साहित्य का मैं द्वेषी नहीं हो सकता। मैं अंग्रेजी भाषा का प्रेमी हूं। मैं उस को आदर की दृष्टि से देखता हूं। जिस प्रकार गांधीजी अंग्रेजों से प्रेम करते थे, उन को अपना मित्र समझते थे और अंग्रेजी राज्य को अस्वाभाविक मानते थे, उसी प्रकार अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्य से प्रेम रखते हुए भी अंग्रेजी भाषा का हमारे देश पर जिस प्रकार का साम्राज्य छाया हुआ है, उस को मैं हटाना चाहता हूं। वह देश में अस्वाभाविक है। मैं आशा करता हूं कि श्रीमालीजी के सदृश्य योग्य शिक्षा-मंत्री के जो आश्वासन अब तक हमें मिले हैं, उन के अनुसार काम होगा और हम वह समय देख सकेंगे, जिस में कि हमारी जो अभिलाषाएं हैं, वह सब-की-सब पूरी हो सकें।

समस्त प्रादेशिक भाषाएं देवनागरी लिपि में लिखी जायें

इस प्रस्ताव पर

१७ मार्च, १९६१

डा० गोविन्ददास—सभापतिजी, मैं सब से पहले श्री प्रकाशवीर शास्त्रीजी को उन के बड़े सुन्दर और तर्कपूर्ण भाषण पर बधाई देता हूं। उन के भाषण के बाद दो भाषण और हुए—एक श्री मुकर्जी का और दूसरा श्रद्धेय कृपलानीजी का। कृपलानीजी के भाषण से तो बहुत स्पष्ट हो गया कि चाहे उन्होंने यह कहा हो कि इस प्रस्ताव को फेंक देना चाहिये, पर यथार्थ में वह इस प्रस्ताव के समर्थक हैं।

उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि इस देश की एकता के लिये और हमारे इस प्राचीन देश में जितनी भाषाएँ हैं, उन सब को समझने के लिये इस से अच्छा और कोई प्रस्ताव नहीं हो सकता था।

जहां तक श्री मुकर्जी का सम्बन्ध है, चूं कि वह बंगाल से आते हैं, इसलिये इस समय मुझे उन के भाषण पर आश्चर्य नहीं हुआ। मुझे याद है कि एक समय था, जब, 'नागरी लिपि हमारे देश की लिपि हो', सबसे पहले इस की आवाज बंगाल से उठी थी। जब स्वामी दयानन्द सरस्वती कलकत्ता गये, उस समय वह अपने सब से प्रधान ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" को संस्कृत में लिखने का विचार कर रहे थे; पर मैं श्री मुकर्जी को स्मरण कराना चाहता हूँ।—श्री केशवचन्द्र सेन के कहने-से उन्होंने अपना "सत्यार्थ प्रकाश" हिन्दी और देवनागरी लिपि में लिखा। यही स्थिति राजा राममोहन राय, श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की थी। किस-किस का मैं नाम लूं? बंगाल का इतना बड़ा समर्थन हिन्दी और देवनागरी लिपि का था और आज उस बंगाल में इस प्रकार का विरोध देख कर मुझे दुःख होता है।

जब बंगाली लिपि और देवनागरी लिपि में कोई विशेष अन्तर नहीं है, हमारे देश की जितनी पूर्वीय भाषाएँ हैं—उड़िया, असमिया, बंगाली—उन की लिपियों और देवनागरी लिपि में कोई बहुत अन्तर नहीं है। तब इस प्रकार का विरोध बंगाल से आये, इससे ज्यादा दुःख की बात नहीं हो सकती।

एक बात मैं आप को और बताता हूँ। चूं कि मैं हिन्दी का समर्थक रहा हूँ, मेरी सुनीति बाबू से बात हुई थी। उन्होंने मुझसे कहा कि यह प्रश्न लोव्ज एंड फिशेज का है, यह प्रश्न नौकरियों का है; इसलिये बंगाल आज इस का इतना बड़ा विरोधी है—हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का। मैंने उनसे स्पष्ट कहा कि अगर आप का यह खयाल है कि हिन्दी भाषा-भाषी लोव्ज एंड फिशेज के लिये, नौकरियों के लिये, हिन्दी का समर्थन करते हैं, तो यह आप की बड़ी भारी भूल है। मैंने आज तक कभी भी इस दृष्टि से हिन्दी का समर्थन नहीं किया है। हमारा तो विश्वास है कि यदि हम को देश को एक सूत्र में बांधे रखना है, तो यहां एक भाषा की आवश्यकता है और एक भाषा के साथ एक लिपि की भी आवश्यकता है। जहां तक नौकरियों का मामला है, मैं आप से कहना चाहता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने, हिन्दी भाषा-भाषी समर्थकों ने, कई बार कहा है कि हिन्दी भाषा-भाषियों को कोई सरकारी नौकरी तब तक नहीं मिलनी चाहिए, जब तक कि वे देश की एक और भाषा में परीक्षा पास न कर लें। मैं अभी भी आप से कहना चाहता हूँ कि हिन्दी-भाषा भाषियों को कभी कोई सरकारी नौकरी नहीं मिलनी चाहिए

जब तक कि वे हिन्दी भाषा के साथ-साथ कम-से-कम एक और भारतीय भाषा में पारंगत न हो जायें।

जहां तक लिपि का सम्बन्ध है, मैं कहना चाहता हूँ कि देश के एकीकरण के लिये एक लिपि की आवश्यकता है। यदि हमारी सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जावें, तो उन सब भाषाओं के साहित्य को हम अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

देवनागर पत्र का यहां जिक्र किया गया है। अभी भी संसदीय हिन्दी परिषद् के द्वारा त्रैमासिक देवनागर निकलता है और उसका बहुत बड़ा स्वागत हुआ है। देश में सर्वत्र ही उसका स्वागत हुआ है। जहां तक विरोध का सम्बन्ध है, मैं कहना चाहता हूँ कि मैं प्रायः घूमता रहता हूँ और इस सम्बन्ध में विचार विमर्श भी करता रहता हूँ। मेरा अपना अनुभव यह है कि देवनागरी लिपि का यदि कहीं विरोध आज है, तो वह केवल इस देश के दो राज्यों में है—एक बंगाल में, जहां के विरोध को देख कर मुझे आश्चर्य होता है और दूसरे तमिलनाड में। बाकी प्रान्तों का, जहां तक पंजाब का सम्बन्ध है, पंजाबी भाषा और हिन्दी भाषा का जो झगड़ा है। वह बहुत सरलता के साथ निपट सकता है; क्यों कि गुरुमुखी में और देवनागरी में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। पंजाबी भाषी जो लोग हैं, वे अभी अपने विचार आप के सामने रख देंगे। पंजाबी सूबे का भी झगडा है। भाषा का सम्बन्ध इससे बहुत कम है। उस में राजनीति है।

मेरा अनुभव यह है कि तामिलनाड और बंगाल को छोड़ कर बाकी देश में न लिपि को लेकर कोई विरोध है और न भाषा को लेकर ही। लोग दक्षिण को प्रायः देवनागरी लिपि के विरुद्ध बताते हैं। मैं कहना चाहता हूँ कि आन्ध्र में मैं ने कभी कोई विरोध नहीं देखा है इस देवनागरी लिपि का, मैं ने केरल में कोई विरोध नहीं देखा, मैं ने कर्नाटक में कोई विरोध इस देवनागरी लिपि का नहीं देखा है। दक्षिण के चार राज्यों में से तीन राज्य देवनागरी लिपि के पक्ष में हैं। उत्तर भारत में भी, मैं ने जैसा निवेदन किया, एक बंगाल को छोड़ कर कहीं देवनागरी का विरोध नहीं है।

हमारे माननीय सदस्य प्रकाशवीर शास्त्रीजी ने बहुत स्पष्ट कहा है कि हम दूसरी भाषाओं की जो लिपियां हैं, उनके विरोधी नहीं हैं। हम उन का उतना ही आदर करते हैं, जितना कि देवनागरी का करते हैं। मैं तो आप से एक और बात कहना चाहता हूँ कि यदि हम हिन्दी का प्रचार करना चाहते हैं, तो एक तरफ हम को देवनागरी लिपि की आवश्यकता है, तो दूसरी तरफ हम को इस बात की भी आवश्यकता है कि हिन्दी-साहित्य भिन्न-भिन्न भाषाओं की लिपियों में लिखा जाये। भिन्न-भिन्न भाषाओं की लिपियों में यदि हिन्दी-साहित्य लिखा जाये, तो

उस का अधिक प्रचार होगा, ऐसा हमारा विश्वास है ; इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि जब हम देवनागरी लिपि को सब भाषाओं के लिये प्रयुक्त करना चाहते हैं, तो इस का यह अर्थ नहीं है कि हम किसी भाषा के विरोधी हैं। सब भाषाओं के प्रति हमारी समान पूज्य भावना है, समान आदर है, समान श्रद्धा है। हम कोई रोमन लिपि के भी विरुद्ध नहीं हैं। कोई भी साहित्यकार किसी भाषा का, किसी लिपि का विरोधी नहीं हो सकता है। मुझे बहुत लोग, अनेक बार गलत समझते हैं। मैं हमेशा यह कहता रहा हूँ कि अंग्रेजी भाषा का भी भक्त हूँ, रोमन लिपि का भी मैं भक्त हूँ ; पर जिस तरह से गांधीजी कहा करते थे कि अंग्रेजों के वे मित्र हैं, पर अंग्रेजी राज्य इस देश में अस्वाभाविक है और उसे समाप्त होना चाहिए— उसी प्रकार मेरा कहना है कि हम को रोमन लिपि से भी प्रेम है, अंग्रेजी भाषा से भी प्रेम है, हम अंग्रेजी भाषा सीखें, रोमन लिपि सीखें, इस में कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन जिस प्रकार अंग्रेजी राज्य इस देश में अस्वाभाविक था, उसी प्रकार रोमन लिपि भी इस देश में अस्वाभाविक है और वह इतने पुराने और इतने सुसंस्कृत देश में कभी भी स्वीकृत नहीं हो सकती। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए देश में अगर एकता लानी है, एक दूसरे के साथ सम्पर्क बढ़ाना है और देश की हर भाषा के साहित्य को समझना है, तो हम को एक लिपि की आवश्यकता है और वह लिपि देवनागरी लिपि ही हो सकती है। उसी के साथ दूसरी जो लिपियां हैं, उन में भी हमारी श्रद्धा है, भक्ति है, और उन को भी हमें उसी आदर की दृष्टि से देखना है, जिस आदर की दृष्टि से हम देवनागरी लिपि को देखते हैं।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूँ।

शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर

२० मार्च, १९६१

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, स्वराज्य प्राप्ति के बाद आज पहला अवसर है, जब मैं शिक्षा-मंत्रालय को बधाई देना चाहता हूँ, और यह बधाई डा० श्रीमालीजी और उनके योग्य संयुक्त सचिव श्री रामप्रसन्न नायक को भी है, जो कि हमारे मध्यप्रदेश से केन्द्रीय सरकार में आये हैं। इस बधाई का कारण यह है कि शिक्षा को, जो कि हम एक प्रधान कार्य मानते हैं, देश की उन्नति की बुनियाद मानते हैं, और जिस में हिन्दी का प्रमुख स्थान है, उस का कुछ कार्य अब शिक्षा-मंत्रालय में आरम्भ हुआ है। विज्ञान आयोग स्थापित होनेवाला है। हमारी मंत्राणीजी

योजना और हमारी प्रगति बहुत दूर तक विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों पर अवलम्बित है, और उसके लिये भारत सरकार ने अब निश्चय किया है कि वह विज्ञान-आयोग स्थापित करे। मैं आशा करता हूँ कि यह कार्य अविलम्ब किया जायेगा। हिन्दी का निदेशालय स्थापित हो गया है। अभी उसके मुख्य संचालक तय नहीं हुए हैं। मैं चाहता हूँ कि इस कार्य के लिए ऐसे व्यक्ति को रखा जाय, जिस पर हिन्दी-संसार को विश्वास हो।

इसके बाद सब से महत्त्वपूर्ण कार्य साहित्य-रचना का है। उत्कृष्ट पुस्तकों के अनुवाद के लिए ४० लाख रु० रखे गये हैं। यद्यपि यह बहुत कम हैं, लेकिन मैं आशा करता हूँ, आरम्भ इससे हो सकेगा। फिर यह देश बड़ा गरीब देश है, और गरीब देश के निवासियों को सस्ता साहित्य प्राप्त होना चाहिए। इधर-उधर एक-एक रुपये की कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, लेकिन वे बड़े उथले विषयों की हैं, अधिकांश। मैं कहूँगा, सब तो नहीं, उपन्यास-कहानी इत्यादि हैं; लेकिन शिक्षा-मंत्रालय ने अब कुछ गम्भीर विषयों की भी सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करने का निर्णय किया है।

विश्व-कोश का काम भी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा चल रहा है। केन्द्रीय हिन्दी-शिक्षकों के लिए आगरा में एक महाविद्यालय स्थापित हुआ है। मुझे मालूम हुआ है कि धर्म तथा नीति का विश्व-कोश समाजशास्त्र का विश्व-कोश और इसी प्रकार के दो और विश्व-कोशों का आयोजन किया जा रहा है।

शिक्षा-मंत्रालय के साथ मैं आज इस अवसर पर गृहमंत्रालय को भी बधाई देना चाहता हूँ कि उन्होंने हिन्दी को नौकरियों के लिए वैकल्पिक माध्यम रखना तय कर लिया है। उसके लिए भी मेरे प्रश्न का उत्तर श्री शास्त्री ने कुछ दिन पहले दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि सन् १९६३ से वह यह काम करने वाले हैं। मेरी प्रार्थना है कि इस में जरा जल्दी की जाए; क्यों कि जिन विश्वविद्यालयों ने हिन्दी को माध्यम बना लिया है, उनके विद्यार्थियों के प्रति यह एक अन्याय होगा, अगर इसमें देर की जायगी।

फिर गृह-कार्य मंत्रालय ने भारतीय शासन सेवा के लिए एक हिन्दी का वैकल्पिक परचा भी रखना तय कर लिया है। इन दोनों बातों के लिए गृह-मंत्रालय बधाई का पात्र है और इस सिलसिले में मैं अन्तिम बधाई विधि-मंत्रालय को भी दे दूं कि उसने भी विधि आयोग नियुक्त करने का निश्चय किया है और वह हो भी गया है।

तो, जैसा मैंने आपसे निवेदन किया, यह पहली मर्तबा है, जिस समय मैं हिन्दी के कार्य के लिए भारत सरकार को, उसके गृह-मंत्रालय को और उसके विधि-मंत्रालय को और उसके शिक्षा-मंत्रालय को बधाई देना चाहता हूँ।

अब मैं कुछ और बातें कहना चाहता हूँ। पहला मेरा यह निवेदन है कि शिक्षा के लिए अंग्रेजी जो अनिवार्य बनायी जा रही है, बना दी गयी है, उस की मैं कोई आवश्यकता नहीं मानता। मैं अंग्रेजी अध्ययन के विरुद्ध नहीं हूँ, पर वह हमारे बच्चों को अनिवार्य रूप से सिखाई जाय, इस का मैं कोई प्रयोजन नहीं देखता।

यह कहा जाता है कि सब प्रगतिशील देशों में एक-एक बाहरी भाषा पढ़ायी जाती है। अब आप देखें कि युरोप और अमरीका के जो प्रगतिशील देश हैं, उन में जो एक वैदेशिक भाषा पढ़ायी जाती है, वह क्या कोई एशिया की भाषा पढ़ायी जाती है, कोई भारतीय भाषा पढ़ायी जाती है, चीनी भाषा पढ़ायी जाती है, या कोई अफ्रीकी भाषा पढ़ायी जाती है। ऐसा नहीं होता। फ्रांस की भाषा इंगलैंड में पढ़ायी जाती है, जरमनी में अंग्रेजी पढ़ायी जाती है। यानी ये जो यूरोप के देश हैं इनमें जो वैदेशिक भाषाएँ पढ़ायी जाती हैं, वे भगिनी भाषाएँ पढ़ायी जाती हैं,—एशिया की भारतीय या अफ्रीका की भाषाएँ नहीं पढ़ायी जातीं। मैं स्वयं चाहता हूँ कि इस देश में भी हम को, हिन्दी वालों को, मराठी वालों को, गुजरातीवालों को, और दूसरी भाषाओं वालों को कोई दूसरी भारतीय भाषा पढ़नी चाहिए ; लेकिन वह हमारी भगिनी भाषा हो—बंगला, तमिल, मराठी, कन्नड़, असमिया, गुजराती, मलयालम, उड़िया या कोई दूसरी भारतीय भाषा हो। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। लेकिन जब यूरोप और अमरीका में कोई एशिया की या अफ्रीका की भाषा नहीं पढ़ायी जाती, तो फिर भारत में अंग्रेजी अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाय, यह मेरी समझ में नहीं आता। यदि हम भावनात्मक एकता 'इमोशनल इंटीग्रेशन' लाना चाहते हैं, तो हमारी भारतीय भाषाओं में से कोई भी एक भाषा पढ़ायी जानी चाहिए।

फिर इस सब की आधारभूत संस्कृत भाषा होनी चाहिए। मेरा निश्चित मत है कि कम-से-कम दो वर्ष के लिए संस्कृत हमारे देश में अनिवार्य रूप से पढ़ायी जानी चाहिए। संस्कृत हमारी भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। हमारे देश की सब भाषाओं की, कम से कम उत्तर भारत की सब भाषाओं की, वह जननी है। और दक्षिण की भाषाओं में किसी में ५० प्रतिशत, किसी में ७५ प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं ; इसलिए संस्कृत को कम-से-कम दो वर्षों तक अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिए।

और जहां तक शिक्षा के माध्यम का प्रश्न है, मैं इस बात को कई बार कह चुका हूँ और सरकारी नीति भी यही है कि शिक्षा का माध्यम हमारे देश की भाषाएँ रखी जाएँ; लेकिन इधर-उधर कभी कोई कमीशन मुकर्रर हो जाता है, कभी कोई कमेटी मुकर्रर हो जाती है, कभी कुछ मुकर्रर हो जाता है, और यह कह कर कि विश्व-

विद्यालयों को इस बात की स्वतन्त्रता है, इस नीति के अनुसार काम नहीं होता। मैं यह चाहता हूँ कि इस नीति के ही अनुसार काम होना चाहिए।

अब कुछ बातें मैं कहना चाहता हूँ शब्दों के निर्माण के सम्बन्ध में। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालयों की रिपोर्ट में लिखा है कि दो लाख ९० हजार नये शब्द बनाये गये हैं। लेकिन इस में बड़ा भारी भ्रम है। वास्तव में दो लाख ९० हजार शब्द नहीं बनाये गये हैं। अनेक शब्द एक जगह के साथ दूसरी जगह पर भी रखे गये हैं। मैं एक-दो दृष्टांत देकर बतलाना चाहता हूँ। फिजीकल जागरफी नम्बर २ में 'एबसोल्यूट' शब्द है और उसके बाद 'डार्कनेस' शब्द है; लेकिन आगे चल कर जहां 'डार्कनेस' का उपयोग किया है वहाँ 'डार्कनेस' के नीचे 'एबसोल्यूट' भी रखा गया है। मतलब यह है कि यह शब्द दो जगह प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह 'एक्शन' है। उसके साथ 'ग्राइंडिग' और 'मिकैनिकल' शब्द हैं। आगे चलकर 'ग्राइंडिग' और 'मिकैनिकल' के साथ भी 'ऐक्शन' शब्द दिया गया है। इस तरह आप देखें तो मालूम होगा कि २ लाख ९० हजार नये शब्दों की रचना नहीं की गयी है। फिर यह तो मैंने आप को केवल फिजीकल जागरफी में से बतलाया। फिजीकल जागरफी में ऐसे अनेक शब्द हैं जो इसी तरह की दूसरी शब्दावलियों में आये हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि कितने शब्द बने हैं; लेकिन अगर आप हिसाब लगाकर देखें; तो मेरा खयाल है कि दो लाख ९० हजार के चौथाई शब्द बने होंगे और वह भी जिस को हम पारिभाषिक शब्दावली कह सकते हैं वह नहीं हैं।

जैसे टूरिज्म की शब्दावली लीजिए। उस में आप देखेंगे कि एडवरटाइजमेंट का पर्यायवाची विज्ञापन बनाया गया है। आप देखें कि यह कोई पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दावली नहीं है। हम चाहते हैं कि वैज्ञानिक पारिभाषिक जो शब्दावली बनायी जाय, उसके वैज्ञानिक शब्द संस्कृत से लिए जायें, जो कि हमारी भाषाओं की माता रही है और आज भी है। हमारे संविधान में भी कहा गया है कि हमारी शब्दावली प्रधान रूप से संस्कृत से ही ली जाये।

इस के अलावा जहां तक साहित्य-सृजन का मामला है, मैं उसके बारे में एक दो बातें और कहना चाहता हूँ। अभी जो पुस्तकें लिखायी जा रही हैं, उन का अंग्रेजी अनुवाद भी मांगा जा रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो पुस्तकें हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में लिखायी जाती हैं, उन का अंग्रेजी अनुवाद क्यों होना चाहिये। वे मौलिक रूप में देखी जानी चाहिए। जैसे मलयालम के विद्वान् मलयाली भाषा में लिखी पुस्तकों को देख लें, मराठी विद्वान् मराठी पुस्तकों को देख लें, बंगला विद्वान् बंगला में लिखी पुस्तकों को देख लें और हिन्दी के विद्वान् हिन्दी में लिखी

पुस्तकों को देख सकते हैं। अंग्रेजी के द्वारा इन पुस्तकों का परिचय हो, यह कुछ मुनासिब नहीं मालूम होता।

अब विज्ञान के क्षेत्र में हमें विशेषकर काम करना है। उस में तीन तरह की मौलिक पुस्तकों की आवश्यकता है, अनुवाद के लिए मैं पहले ही कह चुका हूँ—एक विश्वविद्यालय स्तर की, एक माध्यमिक स्तर की और एक साधारण स्तर की। यह इस तरह होना चाहिए कि जैसे फिजिक्स, कमिस्ट्री या बायोलाजी या अन्य विषयों में से एक-एक विषय के लिए लेखकों को नियुक्त किया जाय और उन से पुस्तकें लिखायी जायें और उनके लिए समय मुकर्रर कर दिया जाय कि वह अपनी पुस्तक ६ महीने के अन्दर या एक वर्ष के अन्दर तैयार कर दें। मैं चाहता हूँ कि सन् १९६५ तक, जब से कि हिन्दी पूर्ण रूप से काम में आनेवाली है, हम विज्ञान की पुस्तकें तैयार कर लें।

फिर हमारे वैज्ञानिक साहित्य की आवश्यकता केवल पुस्तकों के अनुवाद से ही पूरी नहीं होगी। जो गवेषणापूर्ण लेख अंग्रेजी में, फ्रांसीसी भाषा में, रूसी में, चीनी में या अन्य भाषाओं में लिखे जायें, उन का भी अनुवाद होना चाहिए और उसके लिए स्थायी वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति होनी चाहिए। यह यदि न होगा, तो हमारा वैज्ञानिक साहित्य अपटुडेट न रह सकेगा।

और अन्त में मैं आप से एक बात कहूँगा कि हमारा प्रयोजन तब तक सफल नहीं होगा, जब तक कि हमारे देश के जनसाधारण को अपनी भाषा में विज्ञान की और दूसरे विषयों की शिक्षा नहीं मिलेगी। इस समय ज्यादातर—हम तोते और बन्दर का काम कर रहे हैं। जिस तरह से तोता, जो उस को रटा दिया जाता है, उस को कह देता है, उसी तरह से हम भी, जो हमको रटा दिया जाता है, उसको पढ़ देते हैं और जिस तरह से बन्दर नकल करता है, उसी तरह से हम नकल करते हैं।

अन्त में मैं अपने भाषण को, एक उद्धरण पढ़कर समाप्त कर दूंगा। यह उद्धरण उस भाषण में से है, जो मैंने बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् में अध्यक्ष-पद से दिया था। उस से अच्छे तरीके से मैं इस विषय को समझा नहीं सकता हूँ। उस भाषण में मैंने कहा था—

'यदि हम वैज्ञानिक जगत् में दूसरों के समकक्ष बनना चाहते हैं, तो हमें स्वयं नयी-नयी वैज्ञानिक खोजें और नये-नये प्रकार के यंत्र निर्माण करने होंगे और यह सब हम पाश्चात्य जगत् की जूठन से नहीं कर पायेंगे। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि हमारा प्रत्येक श्रमिक, प्रत्येक कृषक, प्रत्येक नर-नारी इस बात के लिए सचेष्ट हो जाय कि जो समस्याएँ उस के सामने आती हैं, उन के समाधान के लिए अहर्निश नयी नयी युक्तियां सोचे, नये-नये यंत्र निकाले और इस प्रकार नये-नये वैज्ञानिक तथ्यों का

पता चलाये। आवश्यकता नवनिर्माण अथवा उत्पत्ति की जननी है। जब जीवन की चुनौती हम स्वीकार करते हैं, तभी हम नये सत्य खोज निकालते हैं, नये यंत्र, नयी युक्तियां बना पाते हैं। स्पष्ट है कि हम अपने देश के निन्यानबे प्रतिशत वासियों को यह अवसर इस कारण प्रदान नहीं कर पा रहे हैं कि हम अंग्रेजी से चिपटे हुए हैं और अपने इस देश में वह भ्रम फैला रखा है कि जिसे अंग्रेजी नहीं आती, वह किसी प्रकार की वैज्ञानिक खोज या वैज्ञानिक निर्माण नहीं कर सकता। विदेशी भाषा के माध्यम द्वारा पढ़ने के लिए अपने युवकों को मजबूर करके हम ने उन की प्रतिभा को तो कुण्ठित कर ही दिया है, उन को रट्टू मंडूक बना ही दिया है हम ने साथ-ही साथ अपने देश के साधारण जन में भी असहायता की विचारशून्यता की प्रवृत्ति पैदा कर दी है और ज्ञान के स्रोत हर प्रकार से अवरुद्ध कर दिये हैं। हमारा आर्थिक तंत्र आज लंगड़ी चाल से चल रहा है, उसमें जनता के हृदय का स्पंदन नहीं है, उसके पीछे जनबल नहीं है, इस देश का महान् अपरिमित जनबल नहीं है।"

अन्त में मैं पुनः शिक्षा-मंत्री महोदय को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि जो थोड़े से सुझाव मैंने दिये हैं, उन पर विचार किया जायगा और जो प्रगति इस संबंध में हुई है, वह प्रगति दिन-दूनी और रात-चौगुनी हो सकेगी।

फाईनेंस बिल पर

१३ जून, १९६२

डा० गोविन्ददास—अध्यक्षजी, फाइनेन्स बिल का एक ऐसा अवसर होता है; जब हम केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध रखनेवाली हर बात की और हर मंत्रालय के संबंध में कुछ चर्चा कर सकते हैं। ऐसे अवसर हम को दो मौकों पर मिलते हैं। एक तो राष्ट्रपति के भाषण के ऊपर जब बहस होती है, उस समय, और दूसरे फाइनेन्स बिल पर।

इस समय हमारी तीसरी पंचवर्षीय योजना चल रही है, जिस से हमारे इस फाइनेंस बिल का बहुत सम्बन्ध है। हम निर्माण का काम कर रहे हैं और निर्माण हमारे देश में दो प्रकार का हो रहा है—एक बौद्धिक स्तर का निर्माण और एक आर्थिक स्तर का निर्माण। बौद्धिक स्तर के निर्माण में भाषा का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अंग्रेजी हमारे ऊपर लादी गई अंग्रेजों के यहां आने के बाद, जिसका परिणाम यह हुआ कि जो देश किसी समय संसार का सब से सुशिक्षित देश था, उस देश में सौ में से नब्बे आदमी अनपढ़ रह गये। स्वराज्य के बाद संविधान में हमने अपनी चौदह

भाषाओं को राष्ट्रभाषाएँ बनाया और हिन्दी को राज-भाषा भी और वह इसलिए कि लगभग आधी आबादी की वह मातृभाषा है और अगर हम दक्षिण के कुछ क्षेत्रों को छोड़ दें, तो शेष देश उसे अच्छी तरह समझता है। पंद्रह वर्षों के बाद, अध्यक्ष-जी, हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी, यह बात संविधान-सभा में, जिस का मैं भी एक सदस्य था, सर्वमत से स्वीकृत हुई थी ; लेकिन उसके बाद कतिपय क्षेत्रों से इस का विरोध आरम्भ हुआ, विशेष कर तमिलनाड से और बंगाल से। मुझे अब ऐसा लगता है कि हमने पन्द्रह वर्ष का समय इस काम को देकर बड़ी गलती की है। अगर हमने उसी समय अपनी भाषा में सब काम करना आरम्भ कर दिया होता, तो यह विरोध नहीं हो सकता था।

आयरलैंड का दृष्टान्त हमारे सामने है। उसने स्वतन्त्र होते ही अपना शासकीय काम गैलिक में शुरू कर दिया। इजराइल का दृष्टान्त हमारे सामने है। उसने स्वतन्त्र होते ही हिब्रू में अपना काम शुरू कर दिया। हिन्देशिया का दृष्टान्त हमारे सामने है। वहाँ पर हिन्देशियन भाषा में सब काम शुरू कर दिया गया। यह गैलिक भाषा, यह हिब्रू भाषा यह हिन्देशियन भाषा, सब-की-सब मृत भाषाएँ थीं। हिन्दी मृत भाषा नहीं है और मेरा स्पष्ट मत है कि यदि हम संविधान को लागू करते ही हिन्दी में अपना काम शुरू कर देते, तो हम बखूबी उसे कर सकते थे।

खैर, अब तो परिस्थिति बदल गई है। प्रधान मंत्रीजी ने घोषणा की है कि पंद्रह वर्ष बाद, सन् १९६५ के पश्चात् भी अंग्रेजी हिन्दी के साथ चलेगी। हमारे गृहमंत्रीजी ने कहा है कि इस सम्बन्ध में हम एक विधेयक यहां उपस्थित करना चाहते हैं। इस विधेयक पर मैं आज अपना कोई मत नहीं देना चाहता। विधेयक आने के बाद मैं इस सम्बन्ध में अपनी राय दूंगा ; लेकिन मैं एक बात अवश्य कह देना चाहता हूँ कि इस समय देश में सब से अधिक भावात्मक एकता की आवश्यकता है। हमारा विश्वास है कि भावात्मक एकता का निर्माण तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि देश को एक भाषा के सूत्र में न बांधा जाये ; लेकिन इसी के साथ देश में इस समय भाषा के ऊपर कोई कटुता उत्पन्न करने के भी मैं खिलाफ हूँ। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि किसी व्यक्ति के जीवन में दस, बीस, पच्चीस या पचास वर्ष का समय महत्त्व रखता है, किसी देश और राष्ट्र के जीवन में नहीं। इतना होने पर भी हिन्दी और भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में हम को विचार करना होगा कि उन को उन का उचित स्थान मिले।

अध्यक्षजी, कई बार मैं बड़ा गलत समझा जाता हूँ। यह समझा जाता है कि हिन्दी का ही मैं पक्षपाती हूँ। मैं कई बार इस सदन में और इस के बाहर

भी कह चुका हूँ कि मैं चौदहों भाषाओं का पक्षपाती हूँ, केवल हिन्दी का ही नहीं हूँ। लेकिन सब चीजों को उनका उचित स्थान प्राप्त होना चाहिए। झगड़ा हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का नहीं है, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं से झगड़ा अंग्रेजी का है। इस समय जो यह बात कही जाती है कि हिन्दी लादी जा रही है, उसके सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दी नहीं लादी जा रही है, अंग्रेजी लादी जा रही है। हिन्दी को उचित रूप देने के लिए उसके दर्जे और रूप दोनों पर हमें विचार करना है। केन्द्रीय सरकार द्वारा जो कुछ किया जाता है, अध्यक्षजी, आप यहां जो कुछ करते हैं, लोक-सभा में जो कुछ होता है, राज्य-सभा में जो कुछ होता है, उस से हिन्दी का दरजा या पद बढ़ता और घटता है।

पहले हमारे प्रधान मंत्रीजी जब वैदेशिक-कार्य मंत्रालय पर बोलते थे, उस समय उन का एक भाषण हिन्दी में होता था और एक भाषण अंग्रेजी में होता था, हमारे इस समय के गृह-मंत्री जब रेलवे मंत्री थे, उस समय उन्होंने अपना पहला रेलवे बजट जब उपस्थित किया, तो उन का भाषण हिन्दी में हुआ था। अब यह बात बिलकुल बन्द हो गई है। कहा जाता है कि इस सदन में लोग हिन्दी नहीं जानते, इसलिये अंग्रेजी में भाषण होते हैं। मैं आप से कहता हूँ कि आप जांच कर लें इस बात को कि इस सदन में हिन्दी न जाननेवालों की संख्या अधिक है या अंग्रेजी न जाननेवालों की संख्या अधिक है। बेचारे अंग्रेजी न जाननेवाले कुछ कहते नहीं हैं, हल्ला नहीं मचाते, खुशामद नहीं करते। इस तरह की बातें नहीं करते हैं, इसलिए यह बात मानकर चला जाता है कि सदन में हिन्दी न जाननेवालों की संख्या अधिक है।

मैं इस सम्बन्ध में आप के सामने कुछ सुझाव रखना चाहता हूँ। पहले-पहल मेरा यह सुझाव है कि हमारे जो मंत्री हिन्दी जानते हैं, उनके ५० प्रतिशत भाषण यहां पर हिन्दी में होने चाहिए। दूसरा मेरा सुझाव यह है कि अभी जो यह प्रश्न हिन्दी में किये जाते हैं, उनमें हिन्दी के साथ अंग्रेजी भी जुड़ी रहती है। हिन्दी प्रश्नों का उत्तर हिन्दी में होता है, उसका उत्तर अंग्रेजी में भी होता है, इस सम्बन्ध में मेरा यह सुझाव है कि जो प्रश्न अंग्रेजी में किये जाते हैं, उनके उत्तर अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी होने चाहिये। इसमें यदि अधिक समय लगता हो, तो मेरा सुझाव यह है कि जिस प्रकार कई प्रदेशों की विधान-सभाओं में प्रश्नों के उत्तर प्रश्न के साथ छप कर बंट जाते हैं ; उसी प्रकार यहां भी प्रश्नों के उत्तर छप कर बंट जायें, जिसमें यहां पर केवल पूरक प्रश्नों का सम्बन्ध रहे। मेरा स्पष्ट मत है कि पूरक प्रश्नों के उत्तर उसी भाषा में होने चाहिये, जिस भाषा में पूरक प्रश्न पूछे जाते हैं। यदि हमारे कुछ मंत्री हिन्दी नहीं जानते हैं तो उनके साथ उपमंत्रियों को जोड़ा जाय, जो कि हिन्दी जानते हों और हिन्दी के प्रश्नों के उत्तर वे हिन्दी में दें; लेकिन इतने पर भी,

जैसा मैंने एक बार पहले भी कहा था, जो मंत्री हिन्दी नहीं जानते हैं, उनको मैं हिन्दी में प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विवश नहीं कर सकता, और इस सम्बन्ध में कोई कटुता भी उत्पन्न करने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। फिर यहां पर जो कार्रवाई होती है, उसके सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि राष्ट्रसंघ के सदृश उसका तुरन्त अनुवाद होना चाहिए। यहां पर उस यन्त्र को लगाया जाना चाहिए, जिस में हिन्दी की कार्रवाई का तजुर्मा हो, उसका अनुवाद, तुरन्त अंग्रेजी में हो और अंग्रेजी की कार्रवाई तुरन्त हिन्दी में हो, जिससे कि माननीय सदस्य जिस भाषा में सुनना चाहें सुन सकें।

जहाँ तक हमारे राष्ट्रपतिजी का सम्बन्ध है, अब तक हमारे राष्ट्रपति हिन्दी भाषा-भाषी थे। उनका भाषण पहले हिन्दी में होता था और उसके बाद ही अंग्रेजी में वे अपना भाषण पढ़ते थे। यह सम्भव भी नहीं है और होना भी नहीं चाहिए कि हमेशा हमारा राष्ट्रपति हिन्दी भाषा-भाषी हो, और वह भी शायद इस समय सम्भव नहीं है कि हमारे राष्ट्रपतिजी हिन्दी का ज्ञान रखते हों; इसलिए जिस प्रकार हमारे डा० राजेन्द्रप्रसाद के हिन्दी के भाषण का अंग्रेजी अनुवाद अनेक बार उपराष्ट्रपतिजी पढ़ते थे, उसी प्रकार मेरा निवेदन यह है कि हमारे वर्त्तमान राष्ट्रपतिजी के अंग्रेजी भाषण का अनुवाद हमारे उपराष्ट्रपति, जाकिर हुसेन साहब, हिन्दी भाषा में पढ़ें।

फिर आज से कुछ समय पहले हम देखते थे कि हिन्दी की ओर लोग खिंच रहे हैं, प्रान्तीय भाषाओं की तरफ लोग खिंच रहे थे; लेकिन इसमें फिर परिवर्तन हुआ है। यदि किसी चपरासी को भी उसको नौकरी बिना अंग्रेजी जाने नहीं मिल सकती, तो अंग्रेजी की तरफ खिंचाव होना एक स्वाभाविक बात है; इसलिए मेरा निवेदन है कि सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में, जैसा कि हमारे गृह-मंत्रीजी कह चुके हैं और जिसमें यहां देर हो रही है, माध्यम वैकल्पिक रूप से हिन्दी हो, यह बात जिस समय भाषा आयोग स्थापित हुआ था, और उस पर विचार करने के लिए सदन की जो कमेटी नियुक्त हुई थी, उस समय पूज्य टंडनजी ने और मैंने अपने नोट में कही थी।

फिर हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों से केन्द्र का पत्र-व्यवहार हिन्दी में होना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आता कि केन्द्र का पत्र-व्यवहार, जो हिन्दी भाषा-भाषी राज्य है, उन से अंग्रेजी में क्यों होता है। इस सम्बन्ध में तुरन्त आज्ञा देने की आवश्यकता है।

अब मुझे कुछ सुझाव देने हैं भाषा के रूप के सम्बन्ध में। अभी हमारे सूचना और प्रसारण मंत्रीजी के कुछ ऐसे भाषण हुए, कुछ ऐसी घोषणाएं हुईं और रेडियो

अथवा आकाशवाणी के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ ऐसी बातें कहीं, जिनसे एक बड़ा भारी बावेला मच गया है, और देश-भर में जो हिन्दी पत्र हैं, उन में यह चर्चा चल रही है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित जो भाषा होती है, वह प्रमुख साहित्यिक भाषा मानी जाती है। दृष्टान्त के लिये मैं आपको लन्दन के बी० बी० सी० का उदाहरण देता हूँ। लन्दन के बी०बी०सी० की भाषा साहित्यिक भाषा है। अंग्रेजी साहित्यिक भाषा है ; लेकिन आप लन्दन की जनता की भाषा को देखिये। लन्दन की जनता की भाषा काकनी भाषा है। काकनी भाषा में बी० बी० सी० के प्रसारण नहीं होते हैं। वहां खबरें जो प्रसारित की जाती हैं, वह अंग्रेजी में प्रसारित की जाती हैं।

दिल्ली में आकाशवाणी की भाषा को, जो यह कहा जाता है कि इस देश में समझा नहीं जाता, यह गलत बात है। अगर हम केवल दिल्ली को, पंजाब को और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग को छोड़ दें, तो कोई भाग हिन्दी भाषा-भाषी ऐसा नहीं है, जो इस समय जो भाषा रेडियो से प्रसारित होती है उसे न समझे; बल्कि मैं आपसे आगे कहूँगा कि हिन्दी का अखिल भारतीय रूप है और अखिल भारतीय रूप वाली हिन्दी संस्कृतनिष्ठ ही हो सकती है ; क्यों कि गुजरात, महाराष्ट्र पश्चिम में और पूर्व में बंगाल, असम और उत्कल सब की भाषाएँ जो हैं, वे संस्कृत से निकली हैं। दक्षिण की जो भाषाएं हैं, उनमें भी संस्कृत के शब्दों की अधिकता है। संस्कृतनिष्ठ भाषा ही अखिल भारतीय भाषा हो सकती है, इसीलिए हमारे संविधान में स्पष्ट कहा गया है कि हमारी शब्दावली मुख्यतः संस्कृत से आयेगी।

फिर एक बात और देखिये। इस देश के बाहर रहनेवाले जो लोग हैं और जो आज हिन्दी सीख रहे हैं, देश के कई स्थानों पर हिन्दी सीखी जा रही है, देश के बाहर कई स्थानों पर हिन्दी सीखी जा रही है, वे सब लोग, आज जो भाषा आकाशवाणी से प्रसारित होती है, उससे अपनी हिन्दी को शुद्ध करते हैं; इसलिए आकाशवाणी की भाषा ऐसी भाषा होनी चाहिये, जो कि शुद्ध भाषा हो और ठीक भाषा हो। उसका आज जो स्वरूप है, उसे मान लिया गया है।

एक बात मैं और स्पष्ट कर दूँ। इस सम्बन्ध में भी मैं बहुत कुछ गलत समझा जाता हूँ। उर्दू से मेरा कोई द्वेष नहीं है। उर्दू को मैं इस देश की राष्ट्रीय भाषा मानता हूँ। मैं एक छोटा-सा साहित्यकार भी हूँ। मैंने अपने नाटकों में उर्दू खूब लिखी है। यह प्रश्न उर्दू-द्वेष का नहीं है। उर्दू भाषा कठिन है, यह भी किसी हिन्दी वाले ने नहीं कहा। केवल उर्दू वाला वर्ग ऐसा है, जो हमारी इस हिन्दी का विरोध कर रहा है, लेकिन उस वर्ग में भी आप देखिये कि उन की लड़कियां, उनके लड़के सब आज हिन्दी पढ़ रहे हैं। यह मुट्ठी भर लोग हैं, उर्दू-दां, जो इस का विरोध करते हैं। नयी पीढ़ी में इस का कोई विरोध होनेवाला नहीं है।

फिर जरा जांच करके देख लीजिये कि जो भाषा आकाशवाणी में चल रही है उस भाषा को लोग ज्यादा समझते हैं, या अब जो भाषा बनायी जाने का प्रयत्न हो रहा है उसे लोग ज्यादा समझेंगे।

यह कहा जाता है कि लोग रेडियो अधिक सुनते हैं और समाचार-पत्र कम पढ़ते हैं। यह बिल्कुल गलत बात है। समाचार-पत्र लोग अधिक पढ़ते हैं ; क्यों कि रेडियो कितने लोगों के पास है और रेडियो कहां-कहां लगे हुए हैं ; इसलिये मेरा निवेदन है कि हिन्दी का रूप निखर चुका है, हिन्दी के उस रूप में समाचार-पत्र लिखे जाते हैं, लेख लिखे जाते हैं, ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं और सब कुछ हो रहा है। इस लिए, हिन्दी के इस रूप में परिवर्तन करने का प्रयत्न करना बहुत गलत बात होगी।

हिन्दी में जो उर्दू या अन्य भाषाओं के शब्द आ गये हैं, उन को हम निकालना नहीं चाहते, और मैं प्रधान मंत्रीजी का बिल्कुल समर्थन करता हूँ, जब वह कहते हैं कि हमारी भाषा के दरवाजे बिल्कुल खुले रहने चाहिये; ताकि जो शब्द दूसरी भाषाओं के हमारी भाषा में आ जाएँ, उन को हम पचा सकें। मुझे इस में कोई आपत्ति नहीं है।

फिर जो लोग केवल उर्दू जानते हैं, उनके लिए तो उर्दू में बराबर समाचार प्रसारित होते हैं। हमने कभी उसका विरोध नहीं किया। ऐसी हालत में यह प्रश्न क्यों उठता है यह मेरी समझ में नहीं आता।

जहां तक बेसिक भाषा का सम्बन्ध है, मैं आप से कहना चाहता हूँ, कि ये बेसिक भाषाएँ सदा असफल हुई हैं। अंग्रेजी की साढ़े आठ सौ शब्दों की बेसिक भाषा, जो श्री ओगडन साहब ने निकाली थी, वह असफल हो गई और यह प्रयत्न करना कि इस प्रकार की आठ सौ साढ़े आठ सौ शब्दों की भाषा से साहित्य का निर्माण हो सकेगा, यह गलत बात है, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

फिर भाषा विषय के अनुसार चलती है। बोल-चाल की भाषा में बहुत-सी बातें आ सकती हैं और बहुत-सी बातें नहीं आतीं। उदाहरण के लिए यदि आप किसी अंग्रेजी के फर्स्ट क्लास एम० ए० के सामने एक एलोपैथी की पुस्तक रख दें, तो वह उसकी समझ में नहीं आयेगी। यदि हम एक वैज्ञानिक भाषा तैयार करना चाहते हैं और वैज्ञानिक पुस्तकें निकालना चाहते हैं, तो उनकी भाषा लाजिमी तौर पर कठिन होगी। वह सरल नहीं हो सकती ; लेकिन उसको भी सरल से सरल बनाने का प्रयत्न किया जाय, इसमें मेरा कोई मतभेद नहीं है। मैं प्रधान मंत्रीजी से सर्वथा सहमत हूँ कि आकाशवाणी आदि की हमारी भाषा सरल से सरल होनी चाहिये। उसको कैसा रूप दिया जाना चाहिए, इसके सम्बन्ध में कुछ मतभेद हो सकता है। अभी हाल में वर्धा में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति का रजत जयन्ती समारोह हुआ था।

उस अवसर पर प्रधान मंत्रीजी ने एक संदेश भेजा था, जिस में लिखा था राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जिस भाषा का उपयोग करती है, और जिस भाषा का प्रसार करती है, वह भाषा सरल और ठीक है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के द्वारा जिस भाषा का प्रसार हो रहा है और उसका काम जिस भाषा में चल रहा है, भाषा के उस रूप को मान लिया जाय तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

हिन्दी और उर्दू को हम एक भाषा मानते थे और हम कहते थे कि उर्दू हिन्दी की एक शैली है, लेकिन जब हमारा संविधान बन रहा था, उस समय हमने देखा कि उर्दू भाषा-भाषी हमारे इस कथन का कुछ गलत मतलब निकालते थे। वह यह समझते थे कि उर्दू को हिन्दी भाषा की एक शैली बनाने का अर्थ यह है कि हम उर्दू भाषा को ही समाप्त कर देना चाहते हैं ; इसलिए हमने अपने संविधान की १४ भाषाओं में उर्दू को भी एक अलग भाषा स्वीकार कर लिया। इसलिए, इस झगड़े को खत्म करने का सबसे सीधा रास्ता यह है कि उर्दू और हिन्दी को अलग-अलग भाषाएँ मान लिया जाये, जैसा कि हमारे संविधान में माना गया है, और दोनों की उन्नति का प्रयत्न किया जाय। जब मैं हिन्दी की उन्नति की बात कहता हूँ, तो यह न समझा जाय कि मैं उर्दू या अन्य भारतीय भाषाओं की उन्नति नहीं चाहता।

हिन्दी के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को और कुछ भी करना है और मैं बहुत संक्षेप में इस विषय में कुछ बातें आपके सामने रखना चाहता हूँ —

१. अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का योजनाबद्ध प्रचार और इसके लिए पर्याप्त धन का व्यय।

२. केन्द्रीय राज्य-कर्मचारियों को हिन्दी की शिक्षा। जो परीक्षाओं में उत्तीर्ण हों, उन की वेतन-वृद्धि, जो न हों उन की तरक्की रोकी जाय।

३. पाठ्य पुस्तकों तथा अन्य सभी प्रकार के साहित्य और शब्दावली का निर्माण।

४. हिन्दी का काम करने के लिए हिन्दी कर्मचारियों की एक संगठित सर्विस।

५. हमारे वैदेशिक दूतावासों में हिन्दी का तथा अन्य भारतीय भाषाओं का बृहत् पुस्तकालय और सेरीमोनियल कामों में हिन्दी का ही उपयोग।

६. हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के कुछ पत्रों को पूर्ण पत्र बनाना, जैसे कि अंग्रेजी में निकलते हैं और इसके लिए कागज, विज्ञापन और दूसरे प्रकार की सभी सहायता उन पत्रों को देना।

भाषा के सम्बन्ध में मैंने आप से कहा, अब मैं एक और विषय के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। मैंने अभी आप से कहा कि हमारे देश में निर्माण का काम चल रहा है। एक तरफ चल रहा है बौद्धिक निर्माण का काम और दूसरी तरफ चल रहा है, आर्थिक निर्माण का काम। आर्थिक निर्माण का जहां तक सम्बन्ध है, हमारा देश कृषि-प्रधान देश है और कृषि-प्रधान देश में जब तक हम गो-रक्षा की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक हम आर्थिक निर्माण नहीं कर सकते। मैं कई बार कह चुका हूँ, आप देखें कि कलकत्ता और बम्बई के कसाईखानों में हमारा अच्छे-से-अच्छा पशुधन काटा जा रहा है। मेरा विश्वास है कि अच्छे पशुओं की रक्षा तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि गो-वध कतई बन्द न हो।

फिर हम को गो की नस्ल सुधारना चाहिए। गो-संवर्धन काउंसिल ने इस सम्बन्ध में कुछ अच्छे निर्णय किये हैं। हमारे मित्र, श्री ढेबर भाई उस के अध्यक्ष हैं; लेकिन मैं उन से आप की मार्फत कहना चाहता हूँ कि गो-संवर्द्धन काउंसिल के उन अच्छे निर्णयों को भी कार्य-रूप में परिणत नहीं किया जा रहा है। उस तरफ हमारा ध्यान होना चाहिये।

अन्त में मैं गो-संवर्धन काउंसिल के अध्यक्ष श्री ढेबर भाई के एक भाषण का कुछ अंश पढ़ूंगा, जो उन्होंने गो-संवर्धन काउंसिल के एक अधिवेशन में दिया था। उन्होंने कहा था—

"यदि कृषि हमारे अर्थशास्त्र की नींव है, तो गाय भारतीय कृषि की नींव है। हमें बैलों की आवश्यकता है और वह हमें इस देश की परिस्थिति में गाय से ही मिल सकते हैं। गाय हमें दूध देती है और मुख्यतः खाद देती है। देश की दूध की आवश्यकता आर्थिक दृष्टि से गाय ही पूर्ण कर सकती है और मैं अन्त में कहूँगा कि पशु-पालन, जिस का केन्द्र गाय है, इस देश का एक प्रधान धन्धा है।"

उपाध्यक्षजी, निर्माण के इस कार्य में हिन्दी और गो-रक्षा दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। हिन्दी और हमारी अन्य भारतीय भाषाओं से हमारे मस्तिष्क का सम्बन्ध है। गाय से हमारे शरीर का सम्बन्ध है। मस्तिष्क काम नहीं कर सकता बिना स्वस्थ्य शरीर के; और शरीर नहीं चल सकता, बिना मस्तिष्क के। इसलिए, निर्माण के काम में इन दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और यदि हम निर्माण चाहते हैं इस देश का, तो हमें बौद्धिक और आर्थिक निर्माण के लिये हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं और गो-रक्षा इन दोनों चीजों पर समान रूप से ध्यान रखना होगा।

शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर

२२ मार्च, १९६३

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मैं शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर जब बोलता हूँ, उस समय हमेशा, जिस विषय को मैं शिक्षा की नींव मानता हूँ, उस पर कुछ कहता हूँ। हमारे शिक्षा-मंत्री डा० श्रीमाली को और उन के योग्य सचिव श्री रमाप्रसन्न नायक को इस बात पर मैं बधाई देता हूँ कि जब से श्रीमालीजी ने शिक्षा-मंत्रालय सम्हाला और श्री रमाप्रसन्न नायक उन के सचिव के रूप में यहां आये, तब से हिन्दी का कुछ काम हुआ है। इस पर बधाई देते हुए भी मैं एक बात फिर भी निवेदन करूँगा कि अभी भी इस कार्य की गति धीमी है। दृष्टान्त के लिए अभी भी शब्दावली पूरी नहीं बन पाई है, हालाँ कि मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि शब्दावली इतनी बन चुकी है कि हम अपने राज्यकार्यों को, सचिवालय के कार्यों को और संसद् के कार्यों को बिना अंग्रेजी का एक शब्द भी लिये चला सकते हैं।

कुछ विषय अवश्य रह गये हैं, जिन की शब्दावली अभी नहीं बनी है और हम आशा करते हैं कि इस के ऊपर भी ध्यान दिया जायेगा।

जहां तक वैज्ञानिक शब्दावली का सम्बन्ध है, मैं सदा कहता रहा हूँ कि अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के सदृश, मैं कोई शब्दावली नहीं मानता। अंग्रेजी की जो शब्दावली है, वह इंग्लेड तथा उसके उपनिवेशों, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, न्यूजीलेंड और आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका में ही चलती है। शेष देशों की अपनी शब्दावली है। यदि हम अंग्रेजी की शब्दावली, पारिभाषिक या वैज्ञानिक, ज्यों-की-त्यों अपनायेंगे, तो फिर हिन्दी भाषा या प्रान्तीय भाषाएँ, न रहकर कुछ दूसरी ही चीजें हो जायेंगी। हाँ, इस को मैं स्वीकार करता हूँ कि वैज्ञानिक शब्दावली और पारिभाषिक शब्दावली ऐसी बननी चाहिए, जो हमारे संविधान में स्वीकृत समस्त भाषाओं के काम में आ सके।

मैं बता रहा था कि अभी भी गति धीमी है। इस का दूसरा उदाहरण मैं देना चाहता हूँ। फार्म्स, संहिताएँ, नियमावलियां यानी कोड्स, मैनुअल्ज इत्यादि, केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय बहुत धीरे-धीरे बना रहा है। हाँ, एक बात के लिए केन्द्रीय निर्देशालय धन्यवाद का पात्र है कि उसने एक सुन्दर त्रैमासिक पत्रिका निकाली है "भाषा", मैं चाहता हूँ कि यह त्रैमासिक पत्रिका भी मासिक पत्रिका हो जाये।

तीसरा देरी का दृष्टान्त मैं टाइप राइटर के सम्बन्ध में देता हूँ। टाइप राइटर का बोर्ड निश्चित होने पर भी अभी वह बोर्ड व्यवहार में नहीं आ रहा है; न पुराने टाइप राइटर उसके सदृश बन रहे हैं और न नये ही आ रहे हैं। इससे बहुत असुविधा

हो रही है हिन्दी को चलाने में। मैं आशा करता हूँ कि इस ओर भी ध्यान दिया जायेगा।

हिन्दी के सम्बन्ध में मैं जिस बात को सब से महत्त्व की मानता हूँ, वह शिक्षा माध्यम के विशय में है। शिक्षा के माध्यम के लिये जो पुस्तकों की कमी थी, वह तेरह वर्षों में कभी की पूरी हो जाती, यदि इस ओर ध्यान दिया जाता। अब यह कार्य आरम्भ हुआ है। देखना है कि जो पुस्तकें लिखाई गई हैं, या लिखाई जा रही हैं, वे किस प्रकार की हैं। यह तो उन के प्रकाशित होने पर ही ज्ञात होगा; लेकिन इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की है। जो साहित्य तैयार हो रहा है, वह ऐसे लोगों से लिखाया जा रहा है, जो अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हैं। मेरा इस विषय में सुझाव है कि जिन लोगों से साहित्य लिखाया जाये, उन लोगों को, हमारा जो वैज्ञानिक शब्दावली और पारिभाषिक शब्दावली का आयोग है, कुछ दिन के लिए इस कार्य के लिए उधार ले ले और उन को केवल यही काम सौंपा जाये। अगर यह किया गया, तो उन की जो आज अपने कार्य में व्यस्तता रहती है और जिसके कारण साहित्य-निर्माण में देर होती है, वह नहीं होगी और यह काम आगे बढ़ेगा। अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें भी एक वर्ष के भीतर तैयार हो सकती हैं।

दूसरा मेरा सुझाव यह है कि जो प्राध्यापक अभी अंग्रेजी द्वारा पढ़ाते हैं, वे यदि प्रान्तीय भाषाओं द्वारा पढ़ाने की योग्यता प्राप्त कर लें, तो उन को विशेष पुरस्कार दिये जाने चाहिये।

शिक्षा की गति में तीव्रता लाने के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाएँ हों। जहां-जहां वैज्ञानिक और शास्त्रीय उत्पादन हुआ है, उन-उन देशों के उत्पादन की ओर यदि आप देखें, तो आप को मालूम होगा कि वहां उत्पादन इसलिये तीव्र गति से हो सका है कि उस उत्पादन को करने-वाले जो इन्जीनियर थे, जो दूसरे लोग थे, उन्होंने अपनी भाषा में शिक्षा पाई थी। मैं चीन का ही उदाहरण देता हूँ, जिस से आज हमारा झगड़ा है। चीन में इस प्रकार के इंजीनियरों और दूसरे लोगों को स्वयं की भाषा के द्वारा तैयार किया जाता है। जब तक यह न होगा, तब तक हम अपने उत्पादन को भी उस गति से नहीं बढ़ा सकते, जिस गति से बढ़ाना चाहिये। चीन का तो यह हाल है कि उन का एक सुयोग्य मिस्त्री भी सीधे विश्वविद्यालय में भेज दिया जाता है। शिक्षा का माध्यम उन की अपनी भाषा होने के कारण सिद्धान्त-पक्ष की शिक्षा उसे कुछ ही दिन में मिल जाती है और वह योग्य इंजीनियर बन जाता है। इस विषय में मैं डा० डी० एस० कोठारी—जो बड़े प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं—की राय आप के सामने रखना चाहता हूँ। उन की राय है—

"The immense practical advantage of acquiring knowledge... in one's own language (mother tongue) cannot be gainsaid. It is difficult to guess and remember technical terms if these are in a 'foreign language'. It would result in parrot-like learning, mental strain and the stifling of intelligence.

"Basic concepts of science often have their root in primitive experience. One's initiation into science would not be 'natural' and the grasp and understanding would suffer in vitality and breadth, if one used one term to describe a concept inside the science class-room and another term for it outside the class-room.

"If the scientific terminology was foreign to the language of daily use, those not specialising in science would find it difficult to remember anything of science which they read at school, and retain interest in science.

"The training of skilled workmen, craftsmen and tradesmen can be most easily carried out in the language of the region concerned.

"A large-scale 'popularisation of science' can be achieved only if done in the regional language'.

Dr. M. S. Aney : quite correct.

डा० गोविन्ददास—एक और सुझाव मेरा यह है कि संस्कृत से निकली हुई प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य हिन्दी क्षेत्रों के लिए देवनागरी लिपि में और हिन्दी का साहित्य प्रान्तीय भाषाओं की लिपियों में निकालने की एक योजना बननी चाहिये। जहां तक दक्षिण की भाषाओं का सम्बन्ध है, वहां के लिए उस साहित्य का अनुवाद करना पड़ेगा। उस साहित्य का अनुवाद हो और मूल के साथ देवनागरी में निकले; हिन्दी का उन की भाषाओं में अनुवाद हो और मूल के साथ उन की लिपि में निकले। अगर इस प्रकार से किया जाये, तो जो अहिन्दी भाषा-भाषी हैं, उन को हिन्दी का और जो हिन्दी भाषा-भाषी हैं, उन को दूसरी भाषाओं का ज्ञान सरलता से हो सकेगा।

एक सुझाव मैं यह भी देना चाहता हूँ कि हिन्दी को यदि हमने राज-भाषा माना है, तो प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक ऐसे विद्यालय की स्थापना होनी चाहिये, जिस

में शिक्षा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाय। फिर हर एक विश्वविद्यालय में एक हिन्दी-विभाग हो। अनेक विश्वविद्यालयों में ये विभाग हो गये हैं, लेकिन कुछ में अभी तक नहीं हुए हैं। वहां विशेष छात्र-वृत्तियां दी जायें। अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का अधिकाधिक प्रचार हो और अधिकाधिक छात्र-वृत्तियां दी जायें। मैं मानता हूँ कि इस सम्बन्ध में कुछ प्रगति हुई है; पर इस में और अधिक प्रगति की आवश्यकता है। उत्तर भारत में दक्षिण भारत की भाषाओं को अधिक-से-अधिक प्रोत्साहन दिया जाये।

अन्त में मैं आप से एक ही विषय पर निवेदन करना चाहता हूँ। यदा-कदा, वरन् मैं तो कहूंगा प्रायः यह सुना जाता है कि हिन्दी को हम लादने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह बात जितनी असत्य है, उतनी दूसरी कोई बात नहीं हो सकती। आजकल कुछ पत्रों ने तो यहां तक लिखना शुरू कर दिया है कि हमने अपने संविधान में हिन्दी को राज-भाषा बहुत छोटे बहुमत से बनाया है बड़ी गलत बात है यह। मैं संविधान सभा का भी सदस्य था। संविधान में हमने हिन्दी को राजभाषा बनाने का सर्वमत से निर्णय किया था, एक मत भी उस के विरुद्ध नहीं था। इस सम्बन्ध में अभी कुछ "स्टेट्समैन" में निकला है और "हिन्दू" ने लिखा है। मैं चाहता हूँ कि यह जो एक तथ्य की बात है, इस को देख लिया जाय कि हिन्दी को राज-भाषा हमने सर्वमत से संविधान-सभा में बनाया था, या बहुमत से बनाया था। मैंने आप से निवेदन किया है कि संविधान-सभा का मैं सदस्य था और मैं बतलाना चाहता हूँ कि हिन्दी को, संविधान-सभा में जब सर्वमत से राज-भाषा बनाया गया, तो उस में अहिन्दी भाषा-भाषी लोग भी आ गये और हिन्दी-भाषी लोग भी आ गये; इसलिए हिन्दी को लादने का प्रश्न नहीं उठता। महात्मा गांधी ने यदि हिन्दी का दक्षिण भारत में प्रचार करने का प्रयत्न किया तो क्या, उन्होंने हिन्दी को वहां लादने का प्रयत्न किया। आज भी जो प्रयत्न किया जा रहा है, वह क्या हिन्दी को लादने का प्रयत्न किया जा रहा है? हिन्दी को लादने का प्रयत्न नहीं हो रहा है, लादने का प्रयत्न हो रहा है अंग्रेजी को, जिसे इस देश के दो प्रतिशत लोगों से अधिक लोग नहीं जानते। संसद में ही आप देखिए। यदि कोई हिंदी के प्रश्न होंगे, तो उन का अंग्रेजी में अनुवाद होगा, लेकिन जो अंग्रेजी के प्रश्न होते हैं, उन का अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं मानी जाती। पहले तो हमारे कुछ मंत्रीगण हिन्दी में भाषण देते थे, लेकिन अब तो वह भी कतई बन्द हो गया है। इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि संसद में, लोक सभा में और राज्य-सभा में, हिन्दी न जानने वालों की अपेक्षा अंग्रेजी न जानने वाले अधिक हैं; और हिन्दी समझी नहीं जाती, इस बिना पर यहां की सारी कार्रवाई अंग्रेजी में होती है, तब भी बार-बार यह कहा जाय कि हम हिन्दी लादने का प्रयत्न

करते हैं, यह बड़ी गलत बात है। जैसा मैंने आप से निवेदन किया, हिन्दी को लादने का प्रयत्न नहीं हो रहा है, प्रयत्न हो रहा है अंग्रेजी को लादने का। और इसी लिये मैं स्पष्ट कर चुका हूँ, कांग्रेस में रहते हुए भी स्पष्ट कर चुका हूँ कि जब सन् १९६५ के बाद भी अंग्रेजी को अनिश्चित काल तक के लिये चलाने का विधेयक यहाँ पर आयेगा, तो मैं उस का घोर विरोध करने वाला हूँ।

इस सारे मामले को राष्ट्रीय दृष्टि से देखना चाहिये। यदि हम को इस राष्ट्र में एकता रखनी है, भारत को सच्चा भारत रखना है, तो वह अंग्रेजी से होने वाला नहीं है। अंग्रेजी का स्थान केवल हिन्दी नहीं ले सकती, इस को मैं स्वीकार करता हूँ। हमारे संविधान में जितनी भाषाएँ स्वीकृत हो चुकी हैं, उन सब को मिलाकर अंग्रेजी का स्थान लेना है। जो स्वीकृत नहीं हुई हैं, ऐसी भी भाषाएँ हैं, हमें उन को भी मिला कर लेना है। हिन्दी केवल केन्द्रीय भाषा रहेगी, अन्तर्प्रान्तीय कार्यों की भाषा रहेगी। मैंने अनेक बार कहा है, जब मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष था, तब भी कहा था, कि हिन्दी पर जितना प्रेम हम को है, उतना ही प्रेम हमारा अन्य भारतीय भाषाओं पर भी होना चाहिए। जितनी भाषाएँ हमारे संविधान में स्वीकार की गई हैं, वे सब राष्ट्र भाषाए हैं, बाहर से आई हुई भाषा केवल अंग्रेजी है।

मैं हमेशा कहता रहा हूँ और आज फिर दोहराना चाहता हूँ कि जिन राज्यों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहां की विधान सभा का कार्य, सचिवालय का कार्य, न्यायालयों का कार्य और वहां की शिक्षा के माध्यम का कार्य बराबर प्रान्तीय भाषाएँ करें। हमें उन को प्रोत्साहन देना है। केन्द्र में हिन्दी को प्रोत्साहन देना है; प्रांतों में प्रान्तीय भाषाओं को प्रोत्साहन देना है। लेकिन देश को एक सूत्र में बांधे रखने के लिये हमें एक भाषा की आवश्यकता है, और वह भाषा हिन्दी ही इसलिये हो सकती है, और इसीलिए हिन्दी स्वीकार भी की गई है कि वह यहां के लगभग आधे लोगों की मातृभाषा है और शेष देश के कुछ हिस्सों को अगर छोड़ दिया जाय, तो सब जगह वह समझी जाती है; इसलिये देश को एक सूत्र में बांधने के लिए शिक्षा-मंत्रालय को इस चीज को अपने सामने रखना चाहिए और इसी दृष्टि से अपनी सारी कार्रवाई करनी चाहिए।

राज-भाषा विधेयक पर

२३ अप्रेल, १९६३

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, अभी अध्यक्ष महोदय ने जाते हुए एक बात कही थी कि यह मामला बड़ा नाजुक है। मैं उन से....

Shri S. Kandappan (Tiruchengode) : Sir, I want to make one request.

डा० गोविन्ददास—जी नहीं, मैं अपनी भाषा में बोलूंगा।

Mr. Deputy-Speaker : Order, order. He is not yielding.

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मैं वर्षों तक यहां पर......

Shri S. Kandappan : Sir, we are discussing a very important Bill, on which point I think even Dr. Govind Das will agree. We have to make one request to him. We will not be able to follow his speech here. Even if he prefers to deliver his speech in Hindi, at least he can give us a translation of it in English so that we are able to follow what he says.

Mr. Deputy-Speaker : It is left to Dr. Govind Das. Both Hindi and English can be used here for speeches.

Shri Thirumala Rao (Kakinada) : Sir, may I make one appeal to you. Dr. Govind Das is going to advance arguments on behalf of Hindi, and they are mainly addressed to the non-Hindi-speaking areas. He is one of the leaders of the movement. I think all Members in this House including the Members from the South are to fully understand the weight of his arguments. I would, therefore, request him to speak in English (*Interruption*).

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मुझे बड़ा दु:ख है कि मैं बीसों वर्षों तक यहां पर अंग्रेजी में बोलता रहा हूँ, और उस के बाद मैंने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने देश में अपनी भाषा में बोलूंगा और विदेशों में अंग्रेजी में बोलूंगा ; इसलिए अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है। अन्त में जो बातें मैं यहां कह रहा हूँ, उन को अंग्रेजी में भी कह दूंगा।

मैं कह रहा था, आप से, कि अध्यक्ष जी एक बात कह कर गये हैं कि यह मामला बड़ा नाजुक है। इस में कोई संदेह नहीं है। मेरे लिये यह इसलिये और भी नाजुक हो जाता है कि जिन पंडित जवाहरलालजी के नेतृत्व में मैंने पिछले ४३ वर्ष तक काम किया, सार्वजनिक क्षेत्र में, जिन श्री लालबहादुरजी के साथ-साथ मैं न जाने कितने वर्षों तक काम करता रहा हूँ, उन के विरोध में शायद मुझे यहां कुछ कहना पड़ेगा।

शास्त्रीजी ने अपने भाषण में कहा कि इस मामले में सदस्यों की स्ट्रांग व्यूज हैं। बिलकुल ठीक है। इस सम्बन्ध में बड़ा बुनियादी मतभेद है, और मैं उन में से एक हूँ। मैंने ५० वर्ष तक, अपनी सारी जिन्दगी में, यह काम किया है, जिस के विरुद्ध जाना मेरे लिए, जीवन के इस सन्ध्या-काल में, सम्भव नहीं है; लेकिन मैं इतना पंडितजी और शास्त्रीजी को आश्वासन देना चाहता हूँ कि इस विधेयक का विरोध करते हुए भी, उन के मतों का विरोध करते हुए भी, उन के प्रति मेरी वैसी ही श्रद्धा है, वैसा ही विश्वास है, जैसा कि अब तक रहा है, और भविष्य में भी वैसा ही रहनेवाला है। मैं जीवन भर कांग्रेसवादी रहा हूँ, और चाहे आज मैं इस विधेयक के विरुद्ध होऊँ, लेकिन इसके बाद भी मैं कांग्रेस में ही रहने वाला हूँ, किसी दूसरी संस्था में जानेवाला नहीं हूँ।

अभी यहां कुछ लोगों ने कहा कि हिन्दी कभी केन्द्र में आनेवाली नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे हिन्दी के ही विरोधी नहीं हैं, मैं तो कहूंगा कि वे भारत का विभाजन चाहते हैं और स्वयं अपनी भाषा के विरुद्ध हैं। कुछ उन में ऐसे भी हैं, जो इस देश में निवास करते हैं और उन की दृष्टि अभी भी इंग्लेंड की तरफ है।

शास्त्रीजी ने उदारता की बात कही। मैं उन से बिलकुल सहमत हूँ। मैं आज एक लम्बा भाषण देने वाला हूँ, क्यों कि यह मेरा विषय रहा है, लेकिन मैं उन को इस बात का आश्वासन देता हूँ, कि आरम्भ से अन्त तक वे उस में कटुता का एक शब्द कहीं नहीं पायेंगे।

मानव-समाज में जब कभी भी कोई बड़ी बात हुई है, तब उसके लिए वातावरण तैयार किया गया है। हमारे देश की आधुनिक स्वतन्त्रता का भी यही इतिहास है। हमारे देश का वर्तमान वायु-मंडल तैयार किया था राष्ट्रपिता ने, जिन्होंने इस नये भारत का निर्माण किया है; और उन्होंने इस सम्बन्ध में क्या कहा था, यदि मैं यहां उसे पढ़ दूं, तो कोई अनुचित बात न होगी। इसी के साथ में एक बात और कहना चाहता हूँ। आज जो कुछ मैं कहूंगा, वह अपनी ओर से बहुत कम होगा, जो कुछ मैं यहां पर कहूंगा, वह यहां के महापुरुषों की ओर से ही कहूंगा। गांधीजी ने सन् १९१८ में कहा था, जब कि देश का नेतृत्व उनके हाथ में आ रहा था:—

"यह भाषा का विषय बड़ा भारी और बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यदि सब नेता सब काम छोड़ कर केवल इसी विषय पर लगे रहें तो बस है। यदि हम लोग भाषा के प्रश्न को गौण समझें, या उधर से मन हटा लेंगे, तो इस समय लोगों में जो प्रवृत्ति चल रही है, लोगों के हृदयों में जो भाव उत्पन्न हो रहा है, वह निष्फल हो जायेगा। भाषा माता के समान है। माता पर जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगों में नहीं है।

—हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं। हमारी प्रजा अज्ञान में डूबी है। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रान्तीय सभाओं में और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजी का व्यवहार बिलकुल त्याग दें।"

यह हमारे राष्ट्रपिता ने सन् १९१८ में कहा था। मैं कहना चाहता हूं कि यदि भारत को सच्चा भारत रहना है, तो वह भारतीय भाषाओं के बिना नहीं रह सकता। यह प्रश्न हिन्दी का नहीं है। यह बहुत गलत कहा जाता है कि हिन्दी वाले यह चाहते हैं और हिन्दी वाले वह चाहते हैं। यह प्रश्न भारतीय भाषाओं का है। एक ओर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ हैं; और दूसरी ओर अंग्रेजी है। अंग्रेजी केवल भाषा के रूप में यहां नहीं है। अंग्रेजी के साथ सारी अंग्रेजियत बंधी हुई है। उसके साथ अंग्रेजी संस्कार बंधे हुए हैं, अंग्रेजी संस्कृति बंधी हुई है और अंग्रेजी सभ्यता बंधी हुई है। भारतीय भाषाओं के साथ भारतीयता है; इसलिये यदि हमें इस देश को सच्चा भारत बनाना है, तो मैं कहूंगा कि ऐसा हम अंग्रेजी द्वारा किसी प्रकार भी नहीं कर सकते। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में कोई संघर्ष नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता, जब हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं के संघर्ष की बात कही जाती है। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की एक ही संस्कृति है। वे सब एक ही संस्कृति से निकली हैं। शब्द-भंडार भी उन सब का एक है। उत्तर की भाषाएँ तो संस्कृत से निकली हैं. दक्षिण की भाषाओं में प्रचुर परिमाण में संस्कृत की शब्दावली है।

एक माननीय सदस्य—वर्णमाला भी एक है।

डा० गोविन्ददास—फिर एक भाषा बढ़ती है तो सारी अन्य भाषाएँ भी बढ़ती हैं। मैं आप को एक दृष्टान्त दूंगा। केन्द्रीय सरकार इस समय शब्दावली बना रही है। उस शब्दावली को कुछ थोड़े हेर-फेर के साथ सब राज्यों ने स्वीकार कर लिया है। तो इस प्रकार जब एक भाषा बढ़ती है, तब अन्य भाषाएँ भी बढती हैं।

फिर भाषा प्रयोगशाला में नहीं बढ़ती। भाषा बढ़ती है तब, जब वह व्यवहार के क्षेत्र में आती है। प्रयोगशालाओं में कभी दुनिया में भाषा नहीं बढ़ी। मैं इतिहास का एक छोटा-सा विद्यार्थी रहा हूं। मैंने भाषाओं का इतिहास पढ़ा है, और क्यों कि यह मेरा विषय रहा है, मैं आप से कहना चाहता हूं कि कोई भाषा प्रयोगशाला में नहीं बढ़ी, भाषा बढ़ी है व्यवहार में। फिर प्रान्तीय भाषाओं की बढ़ती भी केन्द्र में हिन्दी की बढ़ती से होगी। अगर केन्द्र में अंग्रेजी में सब कुछ चला, तो अन्य भारतीय भाषाएं नहीं बढ़ सकतीं। प्रान्तीय भाषाओं का भी विकास नहीं

हो सकता। फिर तो सारे प्रान्त अंग्रेजी की ओर देखेंगे। इस सम्बन्ध में भी राष्ट्र-पिता का ही एक कथन सुनिए—

"अंग्रेजी को प्रान्तीय भाषाओं का या हिन्दी का स्थान नहीं देना चाहिए। अगर अंग्रेजी ने यहां लोगों की भाषाओं को निकाल न दिया होता, तो प्रान्तीय भाषाएं आज आश्चर्यजनक रूप में समृद्ध होतीं। अगर इंगलैंड फ्रेंच भाषा को अपने राष्ट्रीय काम-काज की भाषा मान लेता, तो आज हमें अंग्रेजी का साहित्य इतना समृद्ध न मिलता। नार्मन विजय के बाद वहां फ्रेंच भाषा का ही जोर था, लेकिन उस के बाद लोक-प्रवाह विशुद्ध अंग्रेजी के पक्ष में हो गया। अंग्रेजी साहित्य को आज हम जिस महान् रूप में देखते हैं, वह उसी का फल है।"

संविधान-सभा में जब भाषा विषयक विवाद चल रहा था, उस समय एक प्रश्न उठा कि आठवें शिड्यूल में हम अंग्रेजी को भी स्थान दें। उस समय जो कुछ हमारे प्रधान मंत्रीजी ने कहा था, उस को भी आप सुन लीजिए। हमारे प्रधान मंत्री-जी ने स्पष्ट रूप में कहा था —

"There is an insidious move on the part of some to include English as one of the languages of the Eighth Schedule. This is obviously a wrong thing to do, as English is not an Indian language, though it is acquired and owned as mother tongue by some Indians like the Anglo-Indian community. It should be enough if we recognise the need of learning English, or a modern European language. It would be absurd, therefore, and unwarranted too, to include English as an Indian langauge in the Schedule. In this move to include English is to by-pass the basic principles of the replacement of English by India's national language. It will be wholly in contravention of the spirit and contents of the Constitution and the modern history of our people during the last half a century."

यह हमारे प्रधान मंत्रीजी का कथन है और किसी का कथन नहीं है।

सब से महत्त्वपूर्ण बात हमारे लिए स्वतंत्रता है, लेकिन स्वतंत्रता की हम रक्षा कब कर सकते हैं? स्वतंत्रता की रक्षा अंग्रेजी के दौर-दौरे से होनेवाली नहीं है। स्वतंत्रता की रक्षा तब होगी, जब उस स्वतंत्रता को, उस स्वराज्य को यहां के लोग अपनी स्वतंत्रता और अपना स्वराज्य मानेंगे। इस सम्बन्ध में भी आप राष्ट्रपिता का कथन सुनिए। उन्होंने कहा था—

"अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो, तो निस्सन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी ; लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखे मरने वालों, करोड़ों निरक्षरों, निरक्षर बहनों और दलित व अन्त्यजों का हो और इन सब के लिए होने वाला हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।"

स्वतंत्रता के साथ चार प्रमुख बातें आती हैं, जो हमें देखनी हैं। पहली बात है भारतीय एकता, दूसरी बात है भारत में समाजवादी समाज की रचना, तीसरी बात है भारत में प्रजातंत्र की सफलता और चौथी बात है भारत की आर्थिक उन्नति। हम एक-एक बात को ले लें। क्या भारतीय एकता अंग्रेजी से रह सकती है ? बार-बार यह कहा जाता है कि यह विधेयक इसलिए लाया जा रहा है कि भारत की एकता बनी रहे। यह कैसी एकता है ? आप देखें कि अंग्रेजी के द्वारा कैसे एकता रहेगी? अंग्रेजी भाषा ने यहां के पढ़े-लिखे लोगों में और यहां की जनता के बीच एक बहुत बड़ी खाई खोद दी है। एक बड़ी दीवार खड़ी कर दी है। जब तक हम उस खाई को पाट नहीं देंगे और जब तक हम उस दीवार को ढहा नहीं देगें, तब तक भारतीय एकता नहीं कायम रह सकती। आज क्या हाल है, आप देखें कि जितना काम हो रहा है, जितना भारत की एकता का प्रयत्न हो रहा है, वह सब-का-सब एक छोटे-से तबके की ओर से, एक छोटे-से तबके के द्वारा हो रहा है, जो कि अंग्रेजी भाषा का प्रेमी है। इस में बहुत कम हिस्सा यहां की आम जनता का है। देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिए कोई भी विदेशी भाषा काम नहीं दे सकती; इसीलिए हमने संविधान में हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया था; क्योंकि वह यहां के ४२ प्रतिशत लोगों की मातृभाषा है, और देश के कुछ छोटे-छोटे क्षेत्रों को छोड़ कर बाकी समूचे देश में समझी जाती है।

इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी का भी एक कथन सुनिये—

"यह बात नहीं कि मैं भाषा के पीछे दीवाना हो गया हूँ।. . .फिर भी मैं भाषा पर इतना जोर इसलिए देता हूँ कि राष्ट्रीय एकता हासिल करने का यह एक बहुत जबरदस्त साधन है। और जितना दृढ़ इस का आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।"

आज यह खेद का विषय है कि गांधीजी की इन बातों को हम भूल गये हैं। अब जब एकता नहीं लाई जा सकती, तब फिर समाजवाद इस से कैसे लाया जा सकता है? जब अंग्रेजी भाषा को लोग समझते नहीं हैं, तब समाजवाद की स्थापना अंग्रेजी के द्वारा कैसे होगी, यह समझ में नहीं आता है। फिर जो प्रजातंत्र के चलने की बात है, वह तो अंग्रेजी द्वारा चलना संभव ही नहीं है, क्यों कि इस देश के ९८ फी सदी

लोग अंग्रेजी नहीं जानते। अगर हमको प्रजातंत्र चलाना है, अगर हमारे यहां बालिग मताधिकार है, तो उस भाषा में प्रजातंत्र चल सकता है, जो कि इस देश की भाषा हो, या इस देश की मातृभाषाएं हों। अंग्रेजी के द्वारा इस देश में प्रजातंत्र नहीं चल सकता। इसीलिए आप देखते हैं कि हमारी केन्द्रीय सरकार के कामों में, हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में, और हमारी अन्य दूसरी बातों में, यहां की जनता को कोई दिलचस्पी नहीं है।

फिर चौथी बात रही, आर्थिक उन्नति की। यह आर्थिक उन्नति, बिना विज्ञान की उन्नति के नहीं हो सकती। और विज्ञान की उन्नति के लिए हमें वैज्ञानिक चाहिए। अभी शिक्षा-मंत्रालय के अनुदानों पर बोलते हुए मैंने निवेदन किया था कि हमारे एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० कोठारी इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं। डा० कोठारी ने जो कहा था, इस अवसर पर मैं उस को उद्धृत नहीं करना चाहता; क्यों कि थोड़े ही दिन पहले मैं उस को कर चुका हूं। हमारे वैज्ञानिक तीव्र गति से तभी तैयार हो सकते हैं, जब उन्हें वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी और हमारी अन्य भारतीय भाषाओं के द्वारा मिले।

इस सम्बन्ध में भी महात्मा गांधी का मत है—

"यह कभी नहीं हो सकता कि हजारों लोग अंग्रेजी भाषा को अपना माध्यम बनायें, और यह अगर मुमकिन हो, तो भी चाहने लायक तो कतई नहीं। इस की सीधीसादी वजह यह है कि अंग्रेजी के जरिए मिलने वाला उच्च और पारिभाषिक ज्ञान, आम लोगों तक नहीं पहुंच सकता। यह तो तभी हो सकता है कि जब इस ज्ञान का प्रसार, ऊपर के दरजेवालों में भी किसी देशी भाषा के द्वारा हो।"

जब संविधान में हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया गया और हिन्दी के साथ शेष तेरह भाषाओं को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया, तब हिन्दी के प्रति और हमारी अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति लोगों के मन में कितने उत्साह और जागृति की लहर उठी थी। लोग हिन्दी और भारतीय भाषाओं की ओर झुके थे; लेकिन जब से यह चर्चा चलने लगी कि फिर से अंग्रेजी यहां हमेशा के लिए चलने वाली है, तब से यह जोश, जो हमारी जनता में हिन्दी के राज-भाषा और सारी भारतीय भाषाओं के राष्ट्रभाषा होने पर हुआ था, वह ठंडा हो कर खत्म हो रहा है। फिर से लोग अंग्रेजी की ओर मुड़ रहे हैं। यह स्वाभाविक भी है। लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी इसलिए पढ़ाते हैं कि इस ग़रीब देश में सरकारी नौकरियां अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को ही मिलती हैं। छोटी-से-छोटी नौकरी भी बिना अंग्रेजी के ज्ञान के नहीं मिल सकती, तब अगर लोग अंग्रेजी के द्वारा शिक्षा प्राप्त

करने की कोशिश करते हैं, तो इसमें लोगों का दोष नहीं है ; बल्कि यह हमारा दोष है।

यह कहना ग़लत है कि अकेले अहिन्दी भाषा-भाषी लोग हिन्दी का विरोध कर रहे हैं। हिन्दी के प्रचलन का, हिन्दी को केन्द्र में चलाये जाने का विरोध केवल अहिन्दी भाषा-भाषी लोग ही नहीं; वरन् हिन्दी भाषा-भाषी भी कर रहे हैं। और यह विरोध कौन लोग कर रहे हैं? यह विरोधी वही दो प्रतिशत लोग कर रहे हैं, जिन के हाथ में सारी राजसत्ता है, जिन के हाथ में देश का सारा कामकाज है, जो आज भी अपना आधिपत्य इस अंग्रेजी के द्वारा इस देश में बनाये रखना चाहते हैं। वे हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का प्रचलन नहीं होने देना चाहते ; क्यों कि उन का स्वार्थ अंग्रेजी से सधता है ; इसलिए यह कहना कि केवल अहिन्दी भाषा-भाषी विरोध कर रहे हैं, यह बात सही नहीं है। अहिन्दी भाषा-भाषी भी कर रहे हैं और हिन्दी भाषा-भाषी भी कर रहे हैं। वे लोग इस का विरोध कर रहे हैं, जिन का स्वार्थ अंग्रेजी से सधता है। फिर यह बात भी गलत है कि सारे हिन्दी भाषा-भाषी प्रांत हिन्दी के विरोधी हैं। दक्षिण में मद्रास को छोड़ कर केरल, मैसूर और आंध्र हिन्दी के विरुद्ध नहीं हैं। पूर्व में बंगाल को छोड़ कर असम और उड़ीसा हिन्दी के विरुद्ध नहीं हैं। पश्चिम में गुजरात और महाराष्ट्र हिन्दी के विरुद्ध नहीं हैं। केवल बंगाल और तमिलनाड तक ही यह विरोध केन्द्रित है। पहले मैं बंगाल को लेता हूँ। यह आवाज़ पहले-पहल बंगाल से उठी थी कि भारतवर्ष में एक भाषा की ज़रूरत है और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। केवल बंगाला भाषा के ही नहीं ; वरन् हमारे भारत के एक महान् साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने हिन्दी के विषय में अपने एक भाषण में कहा था—

"अंग्रेजी के विषय में लोगों की जो कुछ भावना हो, पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि हिन्दी के बिना हमारा कार्य नहीं चल सकता। हिन्दी की पुस्तकें लिख कर और हिन्दी बोल कर भारत के अधिकांश भाग को निश्चय ही लाभ हो सकता है। यदि हम देश में बंगला और अंग्रेजी जानने वालों की संख्या का पता चलायें, तो साफ प्रकट हो जायगा कि वह कितनी न्यून है। जो सज्जन हिन्दी भाषा द्वारा भारत में एकता पैदा करना चाहते हैं, वे निश्चय ही भारतबन्धु हैं। हम सब को संगठित होकर इस ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिये।

न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्र तो देवनागरी लिपि के इतने प्रेमी थे कि उन्होंने "देवनागर" नामक मासिक पत्र निकाला, जिस में समस्त भारतीय भाषाओं का साहित्य देवनागरी लिपि में छपता था। सारे भारत की भाषाओं का साहित्य

देवनागरी लिपि में निकालने का प्रयत्न किया था। अब फिर से वह त्रैमासिक पत्र संसदीय हिन्दी-परिषद् द्वारा निकला है। उन्होंने उस समय हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में कहा था—

"हिन्दी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। कलकत्ते की "एक लिपि विस्तार-परिषद्" समस्त भारतवर्ष में एक नागरी लिपि का प्रचार करने में तनमन से लगी हुई है। यद्यपि मैं बंगाली हूं, तथापि मेरे दफ्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिये वह गौरव का दिन होगा, जिस दिन मैं हिन्दी स्वच्छन्दता के साथ बोलने लगूंगा और प्लेटफार्म के ऊपर खड़ा होकर हिंदी में वक्तृता दूंगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा। जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ-साथ हिंदी में वर्तालाप करूंगा।"

नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने इस बारे में क्या कहा था उसे भी सुन लीजिये—

"सब से पहले मैं एक ग़लत-फहमी दूर कर देना चाहता हूं, कितने ही सज्जनों का खयाल है कि बंगाली लोग या तो हिंदी के विरोधी होते हैं, या उस के प्रति उपेक्षा करते हैं। यह बात भ्रमपूर्ण है और इसका खंडन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। मैं व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहता; पर इतना तो अवश्य कहूँगा कि हिंदी साहित्य के लिये जितना कार्य बंगालियों ने किया है, उतना हिंदी भाषी प्रांत को छोड़ कर और किसी प्रांत के निवासियों ने शायद ही किया हो।...मैं इस बात को मानता हूं कि बंगाली लोग अपनी मातृभाषा से अत्यन्त प्रेम करते हैं और यह कोई अपराध नहीं है। शायद हम में से कुछ ऐसे आदमी भी हैं, जिन्हें इस बात का डर है कि हिन्दी वाले हमारी मातृभाषा बंगला को छुड़ा कर उसके स्थान पर हिंदी रखवाना चाहते हैं, यह भ्रम भी निराधार है। हिन्दी-प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि जो काम आज अंग्रेजी से लिया जाता है, वह आगे चल कर हिंदी से लिया जाय।".....

"प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी-प्रचार से मिलेगी, उतनी किसी दूसरी चीज से नहीं मिल सकती। अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं की भरपूर उन्नति कीजिये, उस में कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन ही कर सकते हैं; पर सारे प्रान्तों की सार्वजनिक भाषा का पद हिंदी को ही मिला है।....यदि हम लोगों ने तन-मन-धन से प्रयत्न न किया, तो वह दिन दूर नहीं है, जब भारत स्वाधीन होगा और उस की राष्ट्रभाषा होगी हिन्दी।"

यह हमारे नेताजी का कहना था। जैसा मैंने कहा—यह कहा जाता है कि तमिलनाड इसके खिलाफ है। इसके लिए मैं बतलाना चाहता हूं कि सन् १९५८ में तमिलनाड में "दि लैंग्वेज कन्वेन्शन". नाम से एक परिषद् हुई थी। उस

परिषद् के स्वागताध्यक्ष श्री के० भाष्यम् और उस परिषद् के अध्यक्ष भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के० सन्तानम् थे, जो कि आजकल हमारी राज्य सभा के सदस्य हैं। श्री भाष्यम ने अपने भाषण में कहा था—

"The danger is pointed out that imposition of Hindi will lead to disruption of the country. Is this correct ? On the other hand, if Hindi is progressively introduced in the Union administration and communication between the States is also in Hindi it is possible to express in Hindi mass feeling of the inhabitants of the region to the inhabitants in another region in a much more effective way than English."

और श्री सन्तानम् ने अपने भाषण में क्या कहा था, वह भी सुनिये—

"Hindi has functioned for the past many decades as the lingua franca of India at the mass level. Even the British Government recognised this fact by making it the lingua franca of the Indian military forces. Under Mahatma Gandhi's leadership, intense propaganda for Hindi has been carried on for the past 40 years and thousands of boys and girls in non-Hindi States have been educated in Hindi to a level similar to the S. S. L. C."

"The Hindi taught in the school will be continually nourished by the Hindi spoken in the bazaar and the Hindi heard in the Cinema, the radio and other places. On the other hand, no English will be heard anywhere except in select gatherings of professors and scholars."

इस के बाद आप शेष अहिन्दी-भाषा-भाषी राज्यों के सम्बन्ध में कुछ बातें सुन लीजिए। कर्नाटक में अभी थोड़े दिन पहले ही—कर्नाटक दक्षिण में है—एक आल-कर्नाटक हिन्दी कन्वेन्शन हुआ। जिसके अध्यक्ष थे बंगलोर के भूतपूर्व मेयर, श्री आर० अनन्त रामन्, बी० एस-सी०, एल-एल० बी० और जिस का उद्घाटन किया मैसूर लेजिस्लेटिव कौंसिल के चेयरमैन, श्री जी० बी० हल्लीकेरी, ने। वहां पर जो प्रस्ताव पास हुआ, उस को सुन लीजिए—

"Although Hindi has been the declared official language of the Indian Union, provision has been made for the continued

use of English in the form of an official language until 1965. But now there is a move to amend the Constitution so as to retain and raise English to the status of an Associate Official language, it is said, as a result of extraordinary pressure from a section of the Non-Hindi speaking public. The Karnatak Hindi Convention views this with concern. The Convention is of the opinion that to give place in the Constitution an official status to a foreign language is below the self-respect of any nation and a hindrance to the healthy growth of the official language as well as the regional languages.

× × × × ×

Therefore, this Convention earnestly urges upon the Government to give up their efforts to make English an associate official language for an unspecified period."

इसी प्रकार कटक में एक सम्मेलन हुआ, जिसके अध्यक्ष थे पद्मश्री श्री आर्त्त-वल्लभ महान्ति, एम० ए०। उस सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया—

"यह सम्मेलन अंग्रेजी भाषा शिक्षा का विरोध न करते हुए भी अंग्रेजी भाषा को अनिर्दिष्ट काल के लिए हिन्दी के साथ सहयोगी या अतिरिक्त भाषा के रूप में ग्रहण करने का एकान्त विरोधी है। यदि अंग्रेजी को अतिरिक्त भाषा के रूप में ग्रहण करने का प्रयोजन हो, तो इसे केवल १९६५ से और पांच वर्ष अर्थात् १९७० ई० तक ही रखा जा सकता है।"

इस विषय में स्वामी विचित्रानन्द दास, एडवोकेट ने अपना यह संशोधन पेश किया था, कि पांच वर्ष के स्थान पर दस वर्ष रखा जाये, किन्तु उपस्थित साहित्यिकों में से किसी ने भी उन का समर्थन नहीं किया।

हाल ही में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का एक अधिवेशन हुआ, जिस के सभापति श्री अनन्तशयनम् आयंगर थे, जो आंध्र के रहने वाले हैं, तेलुगु-भाषा-भाषी हैं। वह बहुत दिनों तक हमारे स्पीकर थे। उन्होंने अपने अभिभाषण में कहा—

"हिन्दी भाषा की समृद्धि से अप्रत्यक्ष रूप में उत्तर भारत की सभी अन्य भगिनी-भाषाओं की समृद्धि होगी और दक्षिणी भाषाओं की भी इससे समृद्धि होगी, क्यों कि उन के काम-काज की भाषा हिन्दी ही होगी।" आगे चल कर उन्होंने कहा—

"हिन्दी के प्रति भारत के किसी कोने में वास्तविक घृणा नहीं है और सामान्य रूप से सभी मानते हैं कि इस का प्रसार अवश्य होना चाहिए एवं यह पूर्ण रूप से राष्ट्र के काम-काज की भाषा बने। ऊपर से जो विरोध कुछ ओर से देखने में आता है, उस का कारण यह है कि हिन्दी-साहित्य को अधिकाधिक समृद्ध करने के पूर्व अंग्रेजी से हिन्दी पर उतर आने का हठ अथवा खींचा-तानी हो रही है।"

अभी दक्षिण के एक विद्वान् और मैसूर विश्वविद्यालय के अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर श्री चन्द्रहासन दिल्ली पधारे थे। उन्होंने एक वक्तव्य में कहा—

"अगर अंग्रेजी को जबरदस्ती लादा जा सकता है, तो क्या कारण है कि हिन्दी को नहीं लादा जा सकता, जब कि बात ऐसी नहीं है। हिन्दी तो भारत की भाषा है, भारत की अधिक जनसंख्या द्वारा समझी और बोली जानेवाली भाषा है। संविधान में जब १९६५ के बाद हिन्दी का राजभाषा के रूप में प्रयोग करने की व्यवस्था कर दी गई, तो अब ऐसा क्यों किया जा रहा है कि हिन्दी को राजभाषा नहीं बनने दिया जायगा।.....द्रविड़ मुन्नेत्र कड़घम हिन्दी का विरोध करता है; पर वह तो भारत की अखंडता का भी विरोधी है। वह तो अलग द्रविड़स्तान चाहता है। उसे देश की एकता में विश्वास नहीं है।"

गाडगिल साहब महाराष्ट्रीय हैं, हिन्दी भाषा-भाषी नहीं हैं। वे बहुत समय तक इस सदन के सदस्य थे और पंजाब के राज्यपाल भी रहे हैं। उन्होंने अपने एक भाषण में कहा है—

"हिन्दी एक संघटित करने वाली शक्ति है। जन-साधारण को एक विशाल जीवन की तरफ ले जाने का मार्ग है।....वह अब किसी एक प्रदेश की न होने की वजह से सारे देश की होगी और सारे देश का बौद्धिक और व्यवहारी जीवन समृद्ध करेगी। हिन्दी का प्रचार-कार्य एक वाङ्मयज्ञ है।"

उपाध्यक्ष महोदय—अब माननीय सदस्य अपना भाषण समाप्त करने का प्रयत्न करें।

डा० गोविन्ददास—उपाध्यक्ष महोदय, मेरा जो दृष्टिकोण है, उस को कोई आपके सामने नहीं रखेगा और कम-से-कम कांग्रेस वाले तो नहीं रखेंगे; इसलिए मुझे अपनी बात कहने के लिए कुछ समय और दिया जाये।

गुजरात विद्यापीठ के उपकुलपति, श्री देसाई ने अपने एक लेख में कहा है—

"दुख तो यह है कि यह भी कहा जाता है कि हिन्दी तैयार नहीं है, या पूरी तरह विकसित नहीं है। स्वभाषा का ऐसा अपमान करते हुए शर्म आनी

चाहिए और कभी कोई भाषा बिना उस का उपयोग किये कहीं विकसित हुई देखी है ?. इसलिए सरकार को प्रामाणिकता से हिन्दी के उपयोग के लिए पूरा मौका देना चाहिए। अभी तक कानून से ऐसा नहीं किया गया है। इस बाधा को दूर करने की जरूरत है। इसके बजाय हिन्दी कभी आ ही न सके, ऐसा कानूनी कदम उठाया जा रहा है।"

वे आगे कहते हैं—

"ऊपर की विचारणा से उल्टा यह दिखाई देता है कि अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में ग्रहण करना। यह किसी तरह का उपाय ही नहीं है। इससे तो भाषाकीय अंधेर और कारबार में अराजकता ही पैदा होगी, क्यों कि अंग्रेजी भाषा वैसे भी देश की जनसंख्या के एक प्रतिशत तक पहुँची है और वह भी उसे ठीक तरह से नहीं आती। और प्रजा गति देखते हुए इसके बारे में हर साल शिथिलता ही बढ़ेगी। उसके चिह्न सर्वत्र नजर आते हैं। इस वजह से शिक्षा और राज-व्यवस्था दोनों में सुधार नहीं हो रहा है। प्रजा चीखती रहती है, मगर कोई सुनता ही नहीं। स्वराज्य की नौकरशाही, अंग्रेजीशाही बन चुकी है। यह भी निभ नहीं सकेगी, क्यों कि माध्यम के रूप में उपयोग करने के लिए अंग्रेजी ही उसे (नौकरशाही को) कम आती जायगी।"

मेरे पास और भी बहुत से उद्धरण हैं, लेकिन चूं कि आप कहते हैं कि वक्त नहीं है, इसलिए मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि बम्बई, पूना आदि के अनेक लोगों ने हिन्दी को शीघ्र ही केन्द्र की राजभाषा के स्थान पर प्रस्थापित करने का अनुरोध किया है। उनमें से कुछ नाम ये हैं—श्री विमलशंकर ना० शास्त्री, श्री कान्तिलाल एम० जानी, श्री रतिलाल र० जोशी, श्री मधुसूदन एम० देसाई, श्री कोकिला र० पटेल, श्री नन्दकिशोर ओझा, श्री इन्दिरा र० पारेख, श्री विपिनचन्द्र वादवे, श्री किशोरीलाल वशिष्ठ आदि। ऐसे कितने ही लोग हैं, जिन्होंने यह कहा है कि अंग्रेजी सहभाषा के रूप में हमेशा के लिए, अनिश्चित काल के लिए मुकर्रर न की जाये।

मैं इन उद्धरणों को पढ़ना समाप्त करता हूँ—अन्त में केवल अंग्रेजी के दो उद्धरण पढ़कर सुनाऊँगा। आयरलैंड के विख्यात कवि, थामस डेविस कहते हैं—

"A nation without a mother-tongue cannot be called a nation. The defence of one's mother tongue is more essential than the defence of the boundaries of one's motherland, because the mother tongue is a more powerful barrier against the intrusion of foreigners than even the natural barriers of rivers and mountains"

यह कहा जाता है कि हमारी भाषाएँ सक्षम नहीं हैं; लेकिन अंग्रेजी के एक प्रमुख विद्वान् श्री क्रस्ट कहते हैं—

"Indian vernaculars are magnificient vehicles of speech and capable of expressing any human conception and being the vehicle of the highest scientific education."

अन्त में मैं आपसे यह कहूँगा कि मेरी समझ में नहीं आता कि इस संकट-कालीन परिस्थिति में इस विधेयक को क्यों लाया जा रहा है। अभी १९६५ तक बराबर अंग्रेजी चल सकती थी ; इसलिए मैं इसका इस वक्त लाया जाना किसी प्रकार भी उचित नहीं समझता। मैं यह नहीं कहता कि सरकार ने हिन्दी के लिए कोई काम नहीं किया है। उस ने कुछ काम किया है, लेकिन यदि गत बारह वर्षों के एक युग में उसने संविधान की भावना के अनुसार उचित काम किया होता, तो आज इस विधेयक की आवश्यकता न होती। देश के प्रचंड बहुमत के विरोध मे सरकार यह विधेयक ला रही है। इस देश के ९८ फ़ीसदी लोग अंग्रेजी नहीं जानते और दो फ़ीसदी अंग्रेजी जानने वालों के लिए ९८ फ़ीसदी लोगों के ऊपर अंग्रेजी लादी जा रही है।

जैसा कि मैंने अभी कहा है, इससे स्वतंत्रता की रक्षा नहीं हो सकेगी, इससे एकता की स्थापना नहीं हो सकेगी, इससे समाजवाद की रचना नहीं होगी, इससे हमारी आर्थिक उन्नति नहीं होगी, इससे इस प्रकार के कोई भी काम हो जायें यह सम्भव नहीं है। और प्रजातंत्र तो इसके द्वारा चल ही नहीं सकता है। विधेयक के द्वारा अनिश्चित काल के लिए अंग्रेजी लादी जा रही है। मुझे भय है कि गत बारह वर्षों में हिन्दी को चलाने के लिए जिस प्रकार कोई योग्य कार्य नहीं हुआ, यदि यह विधेयक इसी तरह से स्वीकृत हुआ, इसमें कोई समय न रखा गया—दस वर्ष, पांच वर्ष या कोई भी अवधि निर्धारित न की गई—तो उसी प्रकार इस विधेयक के स्वीकृत होने के बाद भी कोई व्यावहारिक कार्य नहीं हो सकेगा। जो कुछ पिछले बारह वर्षों में हुआ है, वही भविष्य में होने वाला है और पन्द्रह बीस वर्षों के बाद हमारे सामने वही परिस्थिति आयेगी, जो कि आज हमारे सामने है।

हिन्दी को चलाने के विषय में सरकार ने कभी कोई आयोजना नहीं बनाई। जो आयोग मुकर्रर हुआ, वह भी कोई आयोजना नहीं बना सका और इसी प्रकार संसद् की कमेटी भी कोई आयोजना नहीं बना सकी। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में भी हिन्दी चलाने की कोई आयोजना नहीं बनी। बिना कोई आयोजना बनाये इस प्रकार के विधेयक को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं तो यह मानता हूँ कि

आज भी सारा काम-काज हिन्दी में चल सकता है। मैं यह भी मानता हूँ कि हम ने गलती की कि जिस दिन से संविधान लागू किया, उसी दिन से सब काम हिन्दी में नहीं चलाया। आयरलैंड में उस के स्वतंत्र होने के बाद, दूसरे दिन से ही गैलिक में जब काम चल सकता है, इजराईल में उसके स्वतंत्र होने के बाद सब काम हिब्रू में चल सकता है, जो कि दोनों मृत भाषाएँ थीं, तो हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ जो कि मृत भाषाएँ नहीं हैं, इनके द्वारा उस दिन से सारा काम चल सकता था और आज भी मैं समझता हूँ कि चल सकता है।

जैसा मैंने आरम्भ में निवेदन किया है, मुझे दुःख है कि जिनके नेतृत्व में—पंडितजी के—मैंने आज तक अपना सारा जीवन व्यतीत किया है, शास्त्रीजी मेरे साथी रहे हैं, उन के द्वारा लाये गये विधेयक का मुझे विरोध करना पड़ रहा है। तीन बार उन के मत से मुझे अपना विरोध करना पड़ा है। एक बार उस वक्त, जब कि संविधान सभा में अंकों का प्रश्न आया था; दूसरी बार उस वक्त, जब कि गो-वध-बन्दी सम्बन्धी मेरे विधेयक का सरकार ने विरोध किया था और तीसरी बार यह है। लेकिन, यह मेरी अंतरात्मा का प्रश्न है। यह वह प्रश्न है, जिस को सुलझाते-सुलझाते और जिसके लिए काम करते-करते पचास वर्ष का अपना सारा जीवन मैंने व्यतीत किया है और जिस प्रश्न को स्वराज्य के बाद मैं सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न समझता हूँ; इसलिए अपनी अंतरात्मा के अनुसार काम करने के लिए, इस जीवन के संध्याकाल में, मैं बाध्य हूँ। मेरी निगाहों में पंडितजी इतने उदार हैं, शास्त्रीजी इतने उदार हैं कि वे मुझे गलत नहीं समझेंगे और मेरा जो इस सम्बन्ध में मत है, उस का आदर करेंगे।

मुझे बड़े दुःख के साथ इस विधेयक का विरोध करना पड़ रहा है।

राज्य-भाषा विधेयक के अंतिम वाचन पर

२७ अप्रैल, १९६३

डा० गोविन्ददास—अध्यक्षजी, श्री एन्थनी साहब ने इस विधेयक का विरोध किया अपनी दृष्टि से, मैं इस का विरोध करता हूँ अपनी दृष्टि से। यह आश्चर्य की बात है। अंग्रेजी में एक कहावत है।—

"Two extremes meet."

यह कभी-कभी सत्य हो जाता है।

जब मैं इसका विरोध करता हूँ, उस समय मुझे अत्यधिक दुःख होता है। मैंने उस दिन भी कहा था, और आज फिर कहता हूँ कि जिन पंडित जवाहरलाल

जी नेहरू के नेतृत्व में मैंने सारी जिन्दगी काम किया, जिन श्री लालबहादुरजी शास्त्री के साथ में वर्षों काम करता रहा, उन के मतों के विरुद्ध आज मुझे कुछ कहना पड़ रहा है। मैंने उस दिन भी कहा था और आज भी कहता हूँ कि यह मेरी अंतरात्मा और मेरी कान्शेन्स का सवाल है। इस के पहले दो बार ऐसे मौके आये थे—एक तब, जब संविधान-सभा में अंकों का प्रश्न आया; और दूसरा तब, जब गो-बध-बंदी सम्बन्धी मेरा विधेयक यहां पर आया।

अभी श्री रंगा साहब ने कुछ कहा। मैं उन्हें याद दिलाता हूँ कि संविधान सभा के अवसर पर वह पहले व्यक्ति थे, जिन के पास मैं गया था और उन्होंने सब से पहले इस बात पर हस्ताक्षर किये थे कि इस देश की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी होगी। आज उनकी एक बात सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि जब यहां पर अंग्रेजी राज्य था, उस समय अंग्रेजी विदेशी भाषा थी, लेकिन आज वह विदेशी भाषा नहीं रही। अजीब तर्क है। मेरी समझ में नहीं आया कि अंग्रेजों के रहते यदि वह विदेशी भाषा थी, तो आज वह स्वदेशी भाषा कैसे हो गई? अजीब बात है!

जहां तक द्रविड़ मुनेत्र कड़घम के सदस्यों का सम्बन्ध है और जहां तक एन्थनी साहब का सम्बन्ध है, एक भारत का विभाजन चाहते हैं और दूसरे आज भी भारत में रहते हुए इंगलिस्तान की ओर देखते हैं। तो ऐसे लोगों से मुझे कुछ नहीं कहना है; लेकिन जो हृदय में राष्ट्रीय विचार रखते हैं, उनसे मैं आज फिर इस बात को दोहराना चाहता हूँ कि जब तक अंग्रेजी का चलन इस देश में रहेगा, तब तक भारत सच्चा भारत नहीं हो सकता, तब तक यहां की जनता स्वतंत्रता और स्वराज्य के अर्थ को नहीं समझ सकती, तब तक इस देश में सच्ची एकता नहीं हो सकती, क्योंकि जो दो फ़ीसदी लोग अंग्रेजी जानते हैं और जो ९८ फ़ीसदी लोग अंग्रेजी नहीं जानते, उन के बीच एक खाई खुदी हुई है, एक दीवार खड़ी हुई है। जब तक वह खाई न पट जायगी, जब तक वह दीवार न ढह जायगी, तब तक इस देश में सच्ची एकता नहीं हो सकती।

जो विधेयक इस देश में एकता लाने का प्रयत्न करने के लिए लाया गया है, मेरा नम्र निवेदन है—इसमें मतभेद हो सकता है—वह एकता को भंग करने के लिए सब से बड़ा साधन है। इससे न जनता स्वराज्य का अर्थ समझ सकती है, न इस से देश में एकता हो सकती है, न इससे आर्थिक उन्नति हो सकती है; क्योंकि तीव्र गति से वैज्ञानिक तैयार नहीं हो सकते। न उससे प्रजातंत्र चल सकता है; इसलिए बड़े भारी हृदय से, बड़े दुःख के साथ, हृदय के ऊपर, अपनी छाती पर पत्थर रख कर मुझे इस विधेयक का विरोध करना पड़ रहा है।

कुछ प्रश्नोत्तर

दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य का अध्ययन

६ अप्रैल, १९४९

सेठ गोविन्ददास—क्या शिक्षा-मंत्री बतलायेंगे कि दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य की पढ़ाई को प्रोत्साहन देने के लिये कौन-कौन कदम उठाये गये?

माननीय मौलाना अबुलकलाम आजाद—इस विश्वविद्यालय में संस्कृत, हिन्दी और बंगाली का सम्मिलित विभाग है। इस विश्वविद्यालय ने एम० ए० के लिये हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य का पाठ्यक्रम भी निश्चित किया है।

नोटः—मूल प्रश्न और उत्तर अंग्रेजी में।

न्यायालयों में हिन्दी

२१ फरवरी, १९५०

सेठ गोविन्ददास—क्या गृह-मंत्री बतलायेंगे कि किसी हाई कोर्ट ने ऐसा निर्देश निकाला है, जिस के द्वारा जहां न्यायाधीश और वकील हिन्दी समझते हों, वहां हाई कोर्ट और उस की मातहत अदालतें हिन्दी में बहस और फैसले कर सकें?

सरदार पटेल, गृह-मंत्री—माननीय सदस्य का ध्यान संविधान की धारा ३४८।२ की ओर आकर्षित किया जाता है। इस धारा के अनुसार, राष्ट्रपति ने राजस्थान और मध्यभारत के हाई कोर्टों में हिन्दी, पेपसू हाई कोर्ट में पंजाबी और हिन्दी और हैदराबाद हाई कोर्ट को उर्दू के उपयोग करने के लिये, वहां के राज-प्रमुखों को अनुमति दे दी है; परन्तु इस अनुमति में फैसले, डिक्रियां और आर्डर सम्मिलित नहीं हैं जो संविधान के अनुसार अंग्रेजी में ही होने चाहियें। इस संबंध में किसी अन्य राज्य से कोई प्रस्ताव नहीं आया है। जहां तक निचली अदालतों का संबंध है, इस विषय में राज्य-सरकारों को अधिकार है।

सेठ गोविन्ददास—क्या माननीय मंत्रीजी को मालूम है कि जब निचली अदालतों में बहस हिन्दी में होती थी, वह भी अब बन्द हो रही है?

सरदार पटेल—सरकार को इस संबंध में कोई जानकारी नहीं है।

नोट:—मूल प्रश्न और उत्तर अंग्रेजी में।

मूल शब्दों के कोश

१३ मार्च, १९५३

सेठ गोविन्ददास—क्या माननीय मंत्रीजी को यह बात मालूम है कि जहां तक मूल शब्दों के कोश का सम्बन्ध है, वहाँ तक एक बहुत बड़ा कोश मध्य प्रदेश की सरकार ने डाक्टर रघुबीर की अध्यक्षता में तैयार किया है?

श्री के० डी० मालविया—जी हाँ, ऐसी सूचना तो सरकार को है कि हिन्दी मूल शब्दों का कोश मध्य प्रदेश में भी बना है तथा और जगह भी प्रयत्न किया गया है।

सेठ गोविन्ददास—तो जहां तक मूल शब्द-कोश का सम्बन्ध है, नये कोश के निर्माण के पहले क्या समिति का यह काम नहीं है कि जितने इस प्रकार के मूल शब्द-कोश बन चुके हैं, उन पर पहले ध्यान दिया जाय, बजाय इसके कि नये कोश बनाये जायें?

श्री के० डी० मालविया—यह एक सुझाव है, इस पर सरकार अभी कोई राय नहीं दे सकती।

वैज्ञानिक शब्दावली

८ अप्रैल, १९५३

सेठ गोविन्ददास—क्या माननीय मंत्रीजी को यह मालूम है कि अभी उन्होंने जो दृष्टान्त दिया, वह भी कोई अन्तर्राष्ट्रीय शब्द नहीं है, और हर भाषा में उस के लिये भी अलग-अलग प्रयोग होता है। ऐसी हालत में क्या माननीय मंत्री जी ने या इस विशेषज्ञों की कमेटी ने यह निश्चय किया है कि हमारी जो वैज्ञानिक शब्दावली होगी, वह मूल रूप में संस्कृत से ली जायगी?

प्रधान मन्त्री (श्री जवाहरलाल नेहरू)—अगर इजाजत हो, तो मैं इस का जवाब दे दूं। जितने ऐसे मुल्क हैं, जहां सायंस बढ़ी हुई है, वहां आक्सीजन के लिये एक ही शब्द है। जहां बढ़ी हुई नहीं है वहां के लिये सेठजी बतला दें कि किस मुल्क में उस के लिये क्या कहा जाता है?

सेठ गोविन्ददास—मैं इस सम्बन्ध में आप के सामने पूरा नोट पेश करूंगा।

श्री जवाहरलाल नेहरू—रोजमर्रा का सवाल दूसरा है। सायंस के बढ़ने में तो सायंस की तरक्की है, न कि भाषा की। अगर सायंस गिर जाती है, तो न भाषा की बेहतरी है न सायंस की।

अहिन्दी-भाषी राज्यों में राष्ट्रभाषा का प्रचार व प्रसार

२९ अप्रैल, १९५३

सेठ गोविन्ददास—क्या शिक्षा-मंत्री यह बतलाने की कृपा करेंगे कि केन्द्रीय सरकार ने १९५२ में अहिन्दी भाषी राज्यों में राष्ट्रभाषा के प्रचार और प्रसार के लिये क्या-क्या, कहां-कहां प्रयत्न किये थे ?

मौलाना आजाद—१९५२–५३ में दिल्ली की अखिल भारतीय हिन्दी-परिषद् को दस हजार रुपयों का अनुदान इसलिये दिया गया था कि वह आगरे में अहिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिये एक प्रशिक्षण-विद्यालय खोले।

हिन्दी के मौलिक ग्रन्थों और अन्य भाषाओं से हिन्दी के अनुवादों के लिये उन्नीस हजार रुपयों के पुरस्कार घोषित किये गये हैं। जो हिन्दी भाषा-भाषी और अहिन्दी भाषा-भाषी दोनों क्षेत्रों के लिये होंगे।

उड़ीसा, आसाम, बंगाल और महाराष्ट्र चार अहिन्दी भाषा-भाषी राज्यों में हिन्दी-शिक्षा केन्द्रों की स्थापना के लिये एक योजना बनाई जा रही है। जो इसी बजट वर्ष में कार्यरूप में परिणत की जायेगी।

जो संस्थाएं हिन्दी-प्रचार का कार्य कर रही हैं, उन्हें पचत्तर हजार रुपये के अनुदान दिये जा रहे हैं।

नोट:—मूल उत्तर अंग्रेजी में।

संविधान में स्वीकृत शब्दों में परिवर्तन

१४ दिसम्बर, १९५५

सेठ गोविन्ददास—क्या इस बात का भी ध्यान रक्खा जा रहा है कि जिन शब्दों को हम लोग अपने संविधान में स्वीकृत कर चुके हैं, उन में अब कोई नया परिवर्तन न किया जाय, क्यों कि उन का व्यवहार सभी जगह होने लगा है ?

डा० एम० एम० दास—इस का उत्तर देने के लिए मुझे नोटिस चाहिए।

राजभाषा-आयोग का प्रतिवेदन और संसदीय कमेटी

२२ अगस्त, १९५६

सेठ गोविन्ददास—अभी मंत्रीजी ने कहा है कि इस रिपोर्ट (भाषा-आयोग की रिपोर्ट) के सम्बन्ध में दो प्रकार से विचार किया जा सकता है—वह पहले प्रकाशित कर दी जाय और फिर उस के बारे में संसद् की एक कमेटी बनाई जाय, या पहले एक कमेटी बना दी जाय और फिर उस को प्रकाशित किया जाय। जहां तक लोक-सभा का ताल्लुक है, उस के चुनाव बहुत जल्दी होने वाले हैं और अब उस का सिर्फ एक ही अधिवेशन नवम्बर में होगा। क्या इस बात की आशा की जा सकती है कि वह रिपोर्ट जल्दी-से-जल्दी प्रकाशित कर दी जाय और इसी अधिवेशन में संसद् की एक कमेटी बना दी जाय, जिस से अगले अधिवेशन में कमेटी की रिपोर्ट पर विचार किया जा सके।

श्री दातार—गवर्नमेण्ट इस प्रश्न के दोनों विकल्पों पर विचार कर रही है।

सेठ गोविन्ददास—मेरा प्रश्न यह है कि क्या आशा की जा सकती है कि इस रिपोर्ट के ऊपर विचार करने के लिए जो कमेटी बनने वाली है, वह इसी अधिवेशन में बन जाय, जिससे अगले अधिवेशन में कमेटी की रिपोर्ट पर विचार किया जा सके।

श्री दातार—ज्यादा-से-ज्यादा जल्दी इस पार्लिमेन्टरी कमेटी की नियुक्ति की जायगी।

सेठ गोविन्ददास—अध्यक्षजी, मेरे एक प्रश्न का उत्तर अब तक नहीं मिला है। मैं यह जानना चाहता था कि संविधान के नियम के अनुसार इस रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सिंगल ट्रांस्फरेबल वोट से जो कमेटी चुनी जायगी, क्या इस अधिवेशन में उस कमेटी के बनाये जाने की आशा है, जिस से उस कमेटी की रिपोर्ट लोक-सभा के अगले अधिवेशन में आ जाय ?

श्री दातार—मैं इस बारे में इतना ही कह सकता हूँ कि जल्दी-से-जल्दी यह कमेटी नियुक्त की जायेगी।

हिन्दी-परीक्षा-समिति और राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति तथा दक्षिण भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा

२७ अगस्त, १९५६

सेठ गोविन्ददास—क्या मंत्रीजी को यह बात मालूम है कि इस देश में जो

इस प्रकार की दो गैर सरकारी संस्थाएँ हैं, वर्धा की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और दक्षिण-भारत की हिन्दी-प्रचार-समिति, उन के कामों में—क्यों कि यह रिपोर्ट जल्दी नहीं आ रही है—बहुत हानि पहुँच रही है और जो विद्यार्थी इन परीक्षाओं में बैठते थे, उन की संख्या घट रही है ? ऐसी हालत में क्या इन दो संस्थाओं के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया जायेगा ?

डा० का० ला० श्रीमाली—जहां तक मुझे मालूम है, इन संस्थाओं में प्रतियोगिता है और इस कारण से हिन्दी के विकास में काफी हानि हुई है। यह कमेटी इसीलिये नियुक्त की गई थी और इससे कहा गया था कि देश में जितनी भी परीक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ हैं, उन के बारे में यह विचार करे और रिपोर्ट दे। अब इस कमेटी को कह दिया गया है कि वह सितम्बर से पहले अपनी रिपोर्ट दे दे और अगर इसने अपनी रिपोर्ट पेश न की, तो सरकार को क्या कार्यवाही करनी चाहिये, इस पर विचार किया जायेगा।

सेठ गोविन्ददास—अभी माननीय मंत्रीजी ने कहा कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा और दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास में प्रतियोगिता है। मैं समझता हूँ, यह बात गलत है। इसका कारण है कि इन दोनों के कार्य करने के क्षेत्र बिल्कुल अलग-अलग हैं। जिस क्षेत्र में दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा कार्य करती है, उस में वर्धा की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति कार्य नहीं करती और जिस में वर्धा की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति कार्य करती है, उस में दक्षिण-भारत की हिन्दी-प्रचार-सभा कार्य नहीं करती। ऐसी हालत में, क्या इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि इन दोनों संस्थाओं को पर्याप्त प्रोत्साहन मिले, क्यों कि अहिन्दी के क्षेत्र में सब से ज्यादा काम इन्हीं दोनों संस्थाओं ने किया है।

डा० का० ला० श्रीमाली—जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, जो भी संस्था इस क्षेत्र में काम करती है, वह उस की सहायता करनी चाहती है ; परन्तु यह भी सत्य है—मेरा यह स्वयं का अनुभव है—कि इन संस्थाओं में आपस में प्रतियोगिता होने के कारण हिन्दी के विकास में काफी हानि हुई है। मुझे आशा है कि सेठ जी इस बारे में कुछ करेंगे ; लेकिन यह तो राय का सवाल है। उन की राय मुझ से भिन्न हो सकती है।

गजेटियरों का संशोधन

३१ अगस्त, १९५६

सेठ गोविन्द दास—जहां तक इन गजेटियरों का संबंध है, क्या इस बात पर

भी विचार किया जा रहा है कि ये गजेटियर अंग्रेजी के साथ-ही-साथ हिन्दी और अन्य प्रांतीय भाषाओं में निकाले जायें ?

डा० एम० एम० दास—जहां तक मुझे मालूम है, ये गजेटियर अंग्रेजी में लिखे जायेंगे, इस के बाद अन्य भाषाओं—विशेषकर—हिन्दी भाषा में इन के अनुवाद का कार्य दिया जायेगा।

नोट—मूल उत्तर अंग्रेजी में।

हिन्दी टेली प्रिन्टर

२६ फ़रवरी, १९५८

सेठ गोविन्ददास—जहाँ तक इस रिपोर्ट का सम्बन्ध है, इस पर कार्रवाई करने के पहले, क्या इस की-बोर्ड के सम्बन्ध में कुछ और हिन्दी की संस्थाओं की भी राय ली जायेगी ?

डा० का० ला० श्रीमाली—काफी राय ली गयी है। इस की-बोर्ड को बनाने के पहले और टेली प्रिंटर को बनाने के पहले। यह मामला तो बहुत पुराना है और काफी लम्बे अरसे से चल रहा है। अब तो इस पर अन्तिम निर्णय लेने का समय है।

दिल्ली में क्षेत्रीय भाषाओं द्वारा शिक्षा

२५ मार्च, १९५८

सेठ गोविन्ददास—क्या माननीय मंत्रीजी को यह बात मालूम है कि दिल्ली में, दिल्ली की राजधानी होने के कारण, सभी भाषाओं के लोग रहते हैं, और ऐसी हालत में क्या सरकार इस सम्बन्ध में कोई योजना बनायेगी कि यहां पर सभी भाषा-भाषी लोगों के लिए इस प्रकार के स्कूलों का प्रबन्ध किया जाये ?

डा० का० ला० श्रीमाली—जी हां, सरकार की यह नीति है ; बल्कि जहां-जहां इस तरह का भाषाओं का सवाल है, हमने सब स्टेट गवर्नमेंटों को भी लिखा है कि यदि उन के यहां स्टेट लेंग्वेज से भिन्न भाषा बोलने वाले लोग हों, तो वहां पर उस भाषा को पढ़ाने का पूरा प्रबन्ध किया जाये, और मैं आप को बतला देना चाहता हूँ, कि दिल्ली में दो स्कूल ऐसे हैं, जहां तमिल पढ़ायी जाती है, और एक स्कूल ऐसा है, जहां तेलगू पढ़ायी जाती है। हमारी हमेशा यह नीति रही है कि प्रारम्भिक काल में बच्चों को अपनी मातृभाषा द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिए।

हाई कोर्टों में भारतीय भाषाओं में काम

७ अप्रैल, १९५८

सेठ गोविन्ददास—क्या कोई ऐसे नियम हैं कि जिन के कारण यदि कोई हाई कोर्ट अपना काम वहां की अपनी भाषा में करना चाहे, तो उस को करने के लिए केन्द्रीय सरकार से इजाजत की जरूरत पड़ती है, और अगर ऐसे कोई नियम हैं, तो क्या इस बात का कोई विचार किया जा रहा है कि इन नियमों में इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाये कि जिससे जो हाई कोर्ट अपनी भाषा में अपनी कार्रवाई करना चाहे वह कर सकें।

पं० गो० ब० पन्त—कांस्टीट्यूशन में यह है कि फैसले और डिग्री वगैरह तो अंग्रेजी में होने चाहिए। उसके अलावा जो और कार्रवाई होती है, उसके लिए प्रेसीडेंट, अगर किसी खास प्रदेश से इस बात का सुझाव आये, तो इजाजत दे सकते हैं। राजस्थान और केरल में दरअसल विलीनीकरण से पहले इन भाषाओं में काम होता आया है। इधर किसी जगह कोई खास ऐसी कार्रवाई नहीं की गयी।

सेठ गोविन्ददास—क्या माननीय मंत्रीजी को मालूम है कि मध्य प्रदेश में जब ग्वालियर में हाई कोर्ट था, उस समय ग्वालियर का हाई कोर्ट अपनी भाषा में काम करता था, और अभी भी ग्वालियर में हाई कोर्ट की एक बेंच रखी गयी है। क्या ऐसे स्थानों पर कि जहां पहले वहां की भाषाओं में काम होता था, वहां की भाषाओं में काम होने की इजाजत देने का गवर्नमेंट विचार कर रही है?

पं० गो० ब० पन्त—अगर कोई प्रादेशिक गवर्नमेंट यहां की गवर्नमेंट को लिखे, तो उस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायेगा।

देवनागरी लिपि

२ मार्च, १९५८

श्री भक्त दर्शन, श्री विभूति मिश्र, श्री दी० चं० शर्मा—

क्या शिक्षा-मंत्री २ दिसम्बर, १९५८ के तारांकित प्रश्न संख्या ४९२ के उत्तर के सम्बन्ध में यह बताने की कृपा करेंगे कि देवनागरी लिपि के संशोधन के बारे में अन्तिम निर्णय करने की दिशा में इस बीच क्या प्रगति हुई है?

शिक्षा-मंत्री (डा० का० ला० श्रीमाली)—दूसरी बातों के साथ-साथ इस मामले पर भी विचार करने के लिये जितनी जल्दी हो सके, शिक्षा-मन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव है।

सेठ गोविन्ददास—क्या माननीय मंत्रीजी को यह बात मालूम है कि देवनागरी लिपि सब से अधिक वैज्ञानिक लिपि है और उसमें बहुत थोड़े सुधार की जरूरत है। ऐसी हालत में जब तक यह सुधार नहीं हो जाते हैं, तब तक टाइप राइटर और दूसरे काम सब रुके हुए हैं। क्या मंत्रीजी यह बतलाने की कृपा करेंगे कि इस में इतनी देरी क्यों हो रही है?

डा० का० ला० श्रीमाली—पिछली बार यह सवाल उठा था। उस समय मैंने इस के बारे में यह स्पष्ट कर दिया था कि सन् १९५३ में उत्तर प्रदेश सरकार ने लखनऊ में एक कान्फ्रेंस बुलायी थी...

सेठ गोविन्ददास—उस को तो पांच वर्ष बीत गये।

डा० का० ला० श्रीमाली—जी हाँ। इस कान्फ्रेंस में लिपि के बारे में कुछ निर्णय लिये गये थे। केन्द्रीय सरकार ने, जितने भी प्रस्ताव पास हुए थे, उन को स्वीकार कर लिया था; लेकिन उसके बाद उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९५७ में दूसरी कानफ्रेंस बुलवायी और पुराने निर्णयों में कुछ रद्दोबदल कर दिया। तो अब एक दिक्कत पैदा हो गयी। जहां तक इस गवर्नमेंट का ताल्लुक था, उसने सन् १९५३ की जो सिफारिशें थीं, उन को मान लिया था और आगे का काम बढ़ रहा था। इस बीच उत्तर प्रदेश सरकार ने बिना पूछे यह दूसरी कान्फ्रेंस बुलायी और उस में पुराने निर्णयों को बदल दिया। तो जब तक इस मामले में अन्तिम फैसला न हो जाये, आगे काम नहीं बढ़ सकता, लेकिन मैं हाउस को यह आश्वासन दिलाना चाहता हूँ कि जितनी भी जल्दी हो सकेगा, एजूकेशन मिनिस्टर्स की कान्फ्रेंस बुला कर इस मामले को तय किया जायेगा।

सेठ गोविन्ददास—अभी मंत्रीजी ने यह कहा कि भिन्न-भिन्न राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों की एक परिषद् बुलायी जा रही है और कुछ विशेषज्ञों को भी बुलाया जा रहा है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या हिन्दी की प्रतिष्ठित संस्थाओं, जैसे नागरी प्रचारिणी सभा, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा, दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा के प्रतिनिधियों को भी इस परिषद् में बुलाने का विचार किया जा रहा है?

डा० का० ला० श्रीमाली—जी हां, एक्सपर्ट्स को बुलाया जायेगा।

सेठ गोविन्ददास—मैं यह जानना चाहता था कि क्या इन संस्थाओं के प्रतिनिधियों को भी निमंत्रण दिया जायेगा?

डा० का० ला० श्रीमाली—मैं इसी वक्त तो इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता कि किन-किन संस्थाओं के प्रतिनिधियों को बुलाया जायेगा। लेकिन मैं इतना निवेदन कर सकता हूँ कि जो भी इस विषय के विशेषज्ञ हैं, उन को आमंत्रित किया जायेगा।

विभिन्न भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद

२१ अप्रेल, १९५९

सेठ गोविन्ददास—क्या इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अनुवाद कराये जाने वाले ग्रन्थ करीब-करीब सब विषयों के हों और दो-तीन विषयों के ग्रंथोंका अनुवाद न हो? साथ ही क्या इस बात का ध्यान रखा जाता है कि जिस प्रकार हिन्दी के ग्रन्थों का दूसरी भाषाओं में अनुवाद हो रहा है, उसी प्रकार जो दूसरी भाषाएँ हैं, उन का भी अनुवाद हिन्दी में किया जाये?

श्री हुमायूं कबीर—माननीय सदस्य का जो दूसरा सवाल है, वह श्रीमान् भक्तदर्शन ने पूछा था; इसलिये उस का जवाब देने की दरकार नहीं। जहां तक पहले सवाल का ताल्लुक है, हर एक जबान में जो अच्छी किताबें हैं, हम उन को चुनते हैं और जिस जबान में जिस पहलू में उस का अच्छा लिट्रेचर है, उसी को चुना जाता है। हो सकता है कि किसी जबान में पोयट्री हो, किसी में उपन्यास हो। यह तो भाषा पर निर्भर है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को कोश के लिए सहायता

१५ फरवरी, १९६०

सेठ गोविन्ददास—क्या यह बात सही है कि इसी तरह का एक प्रामाणिक कोश इलाहाबाद के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने बनाने का निर्णय किया था और क्या इस सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने सरकार के पास कुछ नमूने भी भेजे थे और उन्होंने कुछ अनुदान भी मांगा था? इस सम्बन्ध में क्या हुआ?

डा० का० ला० श्रीमाली—मैं याददाश्त से कहना चाहता हूँ कि जहां तक मुझे मालूम है, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को भी कोश बनाने के लिये सहायता दी गई है।"

सेठ गोविन्ददास—वह सहायता कितनी दी गई थी और क्या उस को और भी सहायता दी जायगी?

डा० का० ला० श्रीमाली—यह प्रश्न तो हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का था। अगर माननीय सदस्य नोटिस देंगे, तो मैं बता दूंगा। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है कि कितनी सहायता दी गई, लेकिन जहां तक मुझे याद है, उसे सहायता दी गई थी।

हिन्दी-निर्देशालय

१८ फरवरी, १९६०

सेठ गोविन्ददास—अभी-अभी भाषा-आयोग की रिपोर्ट और संसदीय भाषा समिति की रिपोर्ट पर भी लोक-सभा में और राज्य-सभा में बहस हुई थी और इस सम्बन्ध में आगे काम किस प्रकार चलाना है, इस विषय में गृह-मंत्रालय और हमारे राष्ट्रपतिजी कुछ विचार कर रहे होंगे। क्या इस निर्देशालय को यह काम भी सौंपा जायगा कि इस सम्बन्ध में सरकार जो कुछ भी निर्णय करे, उस को भी शीघ्र-से-शीघ्र कार्यरूप में परिणत किया जाय?

डा० का० ला० श्रीमाली—जी हां, जो भी निर्णय होंगे, हिन्दी के प्रसार और प्रचार के सम्बन्ध में, वे काम यह डायरेक्टोरेट लेगा। अगर कोई नया काम बढ़ा और नई जिम्मेदारी आई, तो जहां तक डायरेक्टोरेट का सम्बन्ध है, वह उस को उठाने का प्रयत्न करेगा।

हिन्दी अंक

२१ मार्च, १९६०

सेठ गोविन्ददास—जहां तक दक्षिण भारत का संबंध है, वहां तक मुझे कुछ नहीं कहना है; लेकिन जहां तक उत्तर भारत का संबंध है, वहां तक क्या माननीय मंत्रीजी को यह बात मालूम है कि हिन्दी पुस्तकों के साथ, जैसे टाइम टेबुल इत्यादि में अंग्रेजी —या जिन को हम अंतर्राष्ट्रीय अंक कहते हैं—अंकों का प्रयोग हुआ, तो उस प्रकार की पुस्तकें बिक भी न सकेंगी, और क्या इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि जहां तक उत्तर भारत का संबंध है, वहां तक हिन्दी की पुस्तकों में हिन्दी के ही अंकों का प्रयोग हो?

श्री गोविन्दवल्लभ पंत—संसदीय कमेटी ने अपनी लगभग सर्व-सम्मति से दी गयी रिपोर्ट में कहा है कि केन्द्रीय सरकार हिन्दी प्रकाशनों में अंतर्राष्ट्रीय अंकों के साथ देवनागरी अंकों के उपयोग संबंधी नीति एक सी होनी चाहिए। वैज्ञानिक और तांत्रिक प्रकाशनों में अंतर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग ठीक माना

गया है। कमेटी के इस प्रस्ताव के समय माननीय सदस्य स्वयं उपस्थित थे और उन्हें तथा दक्षिण-भारत के सदस्यों को यह स्वीकृत था।

नोट—इस प्रश्न के उत्तर का यह भाग अंग्रेजी में।

सेठ गोविन्ददास—परन्तु माननीय मंत्रीजी को यह बात मालूम है कि इस प्रस्ताव के भी कुछ सदस्य विरुद्ध थे और उन्होंने इसके सम्बन्ध में कुछ कहा है।

श्री गोविन्दवल्लभ पंत—मैं नहीं जानता कि कौन-से सदस्य विरुद्ध थे। मगर जहां तक इस कमेटी की रिपोर्ट का संबंध है, उस में यह दिया हुआ है कि सिवाय उन के जो चाहते हैं कि हिन्दी न्यूमरल्स को काम में लाया जाय, और कोई विरुद्ध नहीं है।

टाइप राइटरों और टेलो प्रिन्टरों के बोर्डों की लिपि

१७ अगस्त, १९६०

सेठ गोविन्ददास—जहां तक इन टाइप राइटरों के की-बोर्डों का और टेली-प्रिंटरों का सम्बन्ध है, जो लिपि इन में काम में ली जायगी, क्या वह वही लिपि होगी, जो अब केन्द्रीय सरकार ने स्वीकृत की है, या उस में अभी और भी परिवर्तनों की गुंजाइश है और क्या इस बारे में अभी और सलाह ली जा रही है ?

डा० का० ला० श्रीमाली—जहां तक लिपि का संबंध है, उस को तो अन्तिम रूप दे दिया जा चुका है और उसी के मुताबिक अब टाइप राइटर बनाया जायगा और मैं आशा करता हूँ कि कम-से-कम कुछ अरसे के लिये तो टाइप राइटर का अन्तिम रूप होगा, हमेशा के लिये तो मैं नहीं कह सकता, क्यों कि अगर और आगे खोज हुई, तो उस में अवश्य परिवर्तन किये जा सकते हैं ; लेकिन कुछ अरसे तक के लिये तो इस को अन्तिम रूप दे दिया गया है।

सेठ गोविन्ददास—जहां तक टाइप राइटर और टेली प्रिंटर्स के निर्माण का सम्बन्ध है, क्या इस बात का प्रयत्न किया जायगा कि यह भारतवर्ष में ही तैयार कराये जायेंगे, या यह बाहर से तैयार करवा कर मंगवाये जायेंगे ?

डा० का० ला० श्रीमाली—इस के बारे में इंडस्ट्रीज मिनिस्ट्री से मशविरा किया जायेगा और अगर भारतवर्ष में इन को तैयार किया जा सका, तो यह बहुत खुशी की बात है ; लेकिन अगर यहां आसानी से न बन सकें, तो फिर बाहर से मदद ली जायेगी।

राष्ट्रभाषा सम्बंधी राष्ट्रपति का आदेश

२० अगस्त, १९६०

सेठ गोविन्ददास—जो सरकारी नौकरियों की परीक्षाएं हैं, क्या उन परीक्षाओं के माध्यम में हिन्दी को वैकल्पिक रूप से रखने का कोई विचार किया जा रहा है?

श्री गो० ब० पन्त—जो कोई विचार किया गया है, उस का निर्णय हुआ है, प्रेसीडेंट साहब ने जो अहकाम जारी किये हैं, वे उन में दिये गये हैं। उसके बाद कोई विशेष विचार किसी तरह का नहीं हुआ है।

सेठ गोविन्ददास—मैं यह जानना चाहता था कि यह बात कई बार उठती है कि हिन्दी को सरकारी नौकरियों के लिए वैकल्पिक रूप से माध्यम रखा जाये, यद्यपि राष्ट्रपतिजी के आदेश में इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है; पर क्या सरकार इस सम्बन्ध में भी कुछ विचार कर रही है?

श्री गो० व० पन्त—सरकार अब कोई नई बात नहीं विचार कर रही है।

साहित्य-रत्न परीक्षा का स्थान

२४ अगस्त, १९६०

सेठ गोविन्ददास—जैसा कि मंत्रीजी ने कहा, साहित्य-रत्न परीक्षा का स्तर बी० ए० से ऊँचा और एम० ए० से नीचा है; परन्तु क्या यह बात सही है कि जब कोई साहित्य-रत्न परीक्षा में उत्तीर्ण स्नातक किसी नौकरी के लिए दरख्वास्त देता है, तब उस पर कोई विचार नहीं किया जाता और उससे पूछा जाता है कि उसने कहां से एफ० ए० पास किया है और वह कहां का ग्रेजुएट है।

डा० का० ला० श्रीमाली—ऐसा कोई उदाहरण आप मेरे सामने लायें, तो उसे देखा जा सकता है। जैसा कि, मैंने आप से कहा, जहां तक गवर्नमेंट का ताल्लुक है, उस को बी०ए० से कुछ ऊँचा माना जाता है और वह एम० ए० से कुछ नीचा। अगर वह इस परीक्षा को एम०ए० के बराबर करना चाहते हैं, तो इसके स्तर को कुछ ऊँचा उठाना होगा और अगर इस को बी०ए० के बराबर करना चाहते हैं, तो स्तर को कुछ नीचा करना पड़ेगा।

सेठ गोविन्ददास—मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं आया। मैं यह जानना चाहता था कि सरकारी नौकरियों के लिए जब वे दरख्वास्त देते हैं, तब क्या उन सरकारी नौकरियों के वे काबिल समझे जाते हैं, जिस के लिए बी०ए० की योग्यता होना आवश्यक है?

अध्यक्षजी—मंत्रीजी का कथन है कि इस संबंध में कोई उदाहरण नहीं दिया गया। यह परीक्षा बी० ए० के ऊपर और एम० ए० के नीचे मानी जाती है। यदि इस प्रकार का कोई उदाहरण पेश किया जायेगा, जहां इस संबंध में कोई अड़चन आई है, तो उसे देखा जायगा।

सेठ गोविन्ददास—अध्यक्ष महोदय, मैं आप से यह कहना चाहता हूँ कि इस तरह के स्नातक यदि सरकारी नौकरियों के लिये दरख्वास्त देते हैं, तो इस वक्त यह जो स्तर माना गया है, इस का कोई खयाल नहीं किया जाता और इस तरह के उदाहरण होंगे, तो मैं पेश करूंगा।

डा० का० ला० श्रीमाली—मैं निवेदन कर चुका हूँ कि शिक्षा-मंत्रालय ने इस परीक्षा को माना है और होम मिनिस्ट्री ने भी इस को मान लिया है। और इस के मुताबिक एक प्रेस नोट २२ अप्रैल १९६० को दिया गया है। मगर आप के पास ऐसे उदाहरण हों, तो आप लायें, जहां कि इस परीक्षा को बी० ए० की परीक्षा के मुताबिक नहीं माना गया है और उन की जांच की जायेगी।

सेठ गोविन्ददास—जब सरकार ने इस परीक्षा को मान्यता दी है, तो क्या सरकार विश्वविद्यालयों को लिखेगी कि इन स्नातकों की यदि एम० ए० या पी०एच० डी० पाठ्यक्रमों के लिए कोई दरख्वास्त आये, तो उसे विश्वविद्यालयों को स्वीकार करना चाहिए?

डा० का० ला० श्रीमाली—उन को हम लिख तो देंगे; लेकिन जैसा कि आप जानते हैं, उन को हम इस मामले में आदेश नहीं दे सकते।

नोट—अध्यक्षजी का मूल कथन अंग्रेजी में।

मोनोग्राफों की भाषा

२४ अगस्त, १९६०

सेठ गोविन्ददास—जहां तक इन मोनोग्राफ्स का संबंध है, यह केवल चित्र के सदृश कोई चीज है, या इसमें कोई भाषा भी लिखी जायेगी और अगर भाषा भी लिखी जायेगी, तो क्या जितनी भाषाएँ हमने स्वीकार की हैं, अपने संविधान में, उन सब भाषाओं में भी ये बनाये जायेंगे?

डा० का० ला० श्रीमाली—जी हां, वे बनाये जा सकते हैं। हिन्दी में होंगे; लेकिन बाद में अंग्रेजी में भी और दूसरी भाषाओं में भी बनाये जा सकते हैं।

सेठ गोविन्ददास—बनाये जा सकते हैं, यह बात तो ठीक है। मगर मैं जानना

चाहता हूँ कि इस संबंध में क्या कोई निर्णय किया गया है कि वे सभी भारतीय भाषाओं में बनाये जायेंगे, या अभी इस के बारे में कोई निर्णय नहीं किया गया है ?

डा० का० ला० श्रीमाली—अभी कोई निर्णय नहीं किया गया है।

हर भारतीय भाषा में ग्रन्थ-रचना

२९ अगस्त, १९६०

सेठ गोविन्ददास—क्या इस बात के लिए कोई विस्तृत योजना तैयार की जा रही है कि सब विषयों के ग्रन्थ हर भाषा में तैयार करने की कोशिश की जाये और यह कब तक आशा की जा सकती है कि विश्वविद्यालयों के माध्यम के ये साहित्य सरकार तैयार करा सके ?

डा० का० ला० श्रीमाली—वर्किंग ग्रूप का यही मकसद है। मैं माननीय सदस्य से निवेदन करना चाहता हूँ कि वह इस रिपोर्ट की प्रतीक्षा करें। जब यह रिपोर्ट आयेगी, तो उस की एक प्रति लाइब्रेरी में रख दी जायेगी।

हिन्दी-विश्व-कोश

२१ नवम्बर, १९६०

सेठ गोविन्ददास—हिन्दी-विश्व-कोश के पहले खंड के तैयार होने में जो इतना समय लगा, इस का क्या यह भी कारण हुआ कि सरकार से जो सहायता नागरी प्रचारिणी सभा को मिलनी चाहिये थी, उस में बहुत बिलम्ब हुआ और यदि यह बात सही है, तो क्या भविष्य में इस बात का ध्यान रक्खा जायेगा कि काम में देरी, सहायता न पहुँचने की वजह से न हो ?

डा० केसकर—मैं नहीं जानता कि विलम्ब जो हुआ, वह सरकार से सहायता न मिलने के कारण हुआ। माननीय सदस्य एक प्रसिद्ध लेखक हैं और वे जानते हैं कि इतने बड़े काम को हाथ में लेने पर आरम्भ में कुछ विलम्ब अनिवार्य है, वैसे मुझे पूरा विश्वास है कि आगे जो खंड प्रकाशित होंगे। वे ज्यादा शीघ्रता से निकलेंगे।

द्विभाषा-कोश

२९ नवम्बर, १९६०

सेठ गोविन्ददास—अभी मंत्रीजी ने यह कहा कि कुछ राज्यों और कुछ संस्थाओं ने इस संबंध में—द्विभाषी कोशों के लिए—अनुदान दिये हैं। क्या मैं जान

सकता हूँ कि किन संस्थाओं को और किन राज्यों को इस प्रकार के कोशों को बनाने के लिए अनुदान दिये गये हैं?

डा० एम०एम० दास—इस प्रकार के तेरह संगठन हैं। आप इजाजत दें, तो मैं उन के नाम पढ़ दूं। मद्रास और मैसूर दो विश्वविद्यालय और राजस्थान तथा पंजाब की दो सरकार एवं कुछ संगठन भी हैं, क्या मैं उन सब के नाम पढ़ दूं?

अध्यक्षजी—इस की आवश्यकता नहीं है।

सेठ गोविन्ददास—क्यों कि हमने हिन्दी को इस देश की राजभाषा बनाया है; इसलिये क्या यह प्रयत्न किया जा रहा है कि इस प्रकार के द्विभाषी कोशों के संबंध में इस बात का खयाल रखा जाये कि दो भाषा के कोश हिन्दी के साथ-साथ बनाये जायँ।

डा० एम० एम० दास—जहां तक हिन्दी भाषा के विकास का सम्बन्ध है, यह विषय शिक्षा-मंत्रालय से संबंध रखता है। मेरे मंत्रालय का सम्बन्ध संस्कृत और हिन्दी को छोड़ कर अन्य भाषाओं के विकास से है।

सेठगोविन्द दास—मैं यह कह रहा था, दूसरी भाषाओं का भी चूं कि हिन्दी से संबंध है, सलिए दूसरी भाषाओं के विकास के लिए क्या इस प्रकार की आवश्यकता नहीं है कि वे कोश हिन्दी के साथ बनाये जायें?

डा० एम० एम० दास—इस की आवश्यकता है। यदि हमें किसी संगठन की कोई दरख्वास्त आर्थिक सहायता के लिये, विशेषकर इस विषय की आर्थिक सहायता के लिये, मिलेगी तो हम ऐसी दरख्वास्तों पर विचार करेंगे।

नोट—प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न मूल हिन्दी में हैं, उत्तर और अध्यक्ष का कथन मूल अंग्रेजी में।

सरकारी नौकरियों के लिए हिन्दी वैकल्पिक माध्यम

१५ मार्च, १९६१

डा० गोविन्ददास—अभी मंत्रीजी ने यह कहा कि पार्लियामेन्टरी लैंग्वेज कमेटी ने १९६३ मुकर्रर किया है। चूं कि मैं भी उसका एक सदस्य था, इसलिए मैं उन से यह पूछना चाहता हूँ कि क्या वे यह जानते हैं कि पार्लियामेन्टरी लैंग्वेज कमेटी ने १९६३ की अवधि देर से देर नियत की थी और क्या वे यह भी जानते हैं कि कई विश्वविद्यालयों ने माध्यम हिन्दी बना दिया है और उन विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को नौकरियों के लिए हिन्दी वैकल्पिक न होने के कारण बहुत कठिनाइयां हो रही हैं और क्या ऐसी हालत में यह प्रयत्न किया जायेगा कि १९६३ के बहुत पहले हिन्दी को एक वैकल्पिक माध्यम बना दिया जाय?

श्री लालबहादुर शास्त्री—मैंने तो यह नहीं कहा कि जो कुछ करना है, वह १९६३ से ही किया जायेगा; लेकिन मैंने कहा कि १९६३ का समय आपने रखा है, इस बीच हम कुछ फैसला करेंगे। मैं आप को यह भी बतला दूं कि आई० ए० एस० या दूसरे ऊँचे दरजे की परीक्षाएँ हिन्दी में की जायें, इसके पहले मुनासिब यह होगा कि जो असिस्टेंट अभी हैं और जिन का इम्तिहान यू० पी० एस० सी० में होता है, उन को हिन्दी भाषा में अपनी परीक्षा देने का मौका दिया जाय। यह एक बतौर प्रयोग के होगा, जिस के कि बाद हम आगे का भी फैसला कर सकते हैं। यू० पी० एस० सी० को हमने इस सम्बन्ध में लिख भी दिया है।

शिक्षा का माध्यम

५ अप्रैल, १९६१

डा० गोविन्ददास—जहां तक शिक्षा के माध्यम का सवाल है, सरकार की नीति तो स्पष्ट है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि अभी तक कितने विश्वविद्यालयों ने अपने यहां शिक्षा का माध्यम हिन्दी या राज्य-भाषाओं को बनाया है, और यह कब तक आशा की जाती है कि इस के लिए पूरा साहित्य तैयार हो जायगा, जिससे सरकार की जो नीति है कि हमारी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम बनाई जायें, उस को सब विश्वविद्यालय स्वीकार कर सकें?

डा० का० ला० श्रीमाली—जो इन्फार्मेशन अगस्त सन् १९६० तक मेरे पास आई है, वह यह है कि किसी न किसी स्टेज पर जिन युनिवर्सिटीज ने माध्यम बदला है, अंग्रेजी से या तो हिन्दी या प्रान्तीय भाषा, वे इस प्रकार हैं—

आगरा, अलीगढ़, इलाहाबाद, आन्ध्रप्रदेश, बनारस, बरोडा, बिहार, दिल्ली, गुजरात, गोरखपुर, जबलपुर, जादवपुर, उत्कल, करनाटक, कुरुक्षेत्र, लखनऊ, पंजाब, पटना, पूना, राजस्थान, सागर, एस० एन० सी० टी० विमैन्स युनिवर्सिटी, विश्वभारती, बनारस संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस और विक्रम विश्वविद्यालय।

डा० गोविन्ददास—मेरे एक प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह कब तक आशा की जाती है कि हमारा साहित्य तैयार हो जायगा, जिस से सब विश्वविद्यालयों का माध्यम हमारी भाषाएँ हो जायेंगी।

डा० का० ला० श्रीमाली—जहां तक इस की अवधि का सम्बन्ध है, मैं कोई निश्चित अवधि नहीं बता सकता। जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है, अब यह निश्चित किया गया है कि युनिवर्सिटीज को हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं में पुस्तकें तैयार

करने में सहायता मिलेगी। जहां तक आर्थिक सहायता का सम्बन्ध है, वह किताबें लिखने के लिए और तर्जुमा करने के लिए पूर्ण रूप से दी जायगी ; लेकिन यह काम ज्यादातर यूनिवर्सिटीज को करना पड़ेगा। उनके द्वारा ही वह काम हो सकता है। मैं आश्वासन दे सकता हूं कि इस विषय में जो कुछ भी हो सकेगा, वह सरकार करेगी, लेकिन इसमें युनिवर्सिटीज के सहयोग की आवश्यकता है। जो बड़े लेखक, वैज्ञानिक और राइटर्ज हैं, उनके सहयोग की आवश्यकता है। उनके लिखने पर ही ये पुस्तकें तैयार हो सकती हैं।

कृषि-मंत्रालय के अधीन की सरकारी संस्थाओं की हिन्दी में वार्षिक रिपोर्ट

२० अप्रैल, १९६१

श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री अर्जुनसिंह भदौरिया श्री ब्रजराजसिंह—क्या खाद्य-मंत्री तथा कृषि-मंत्री यह बताने की कृपा करेंगे कि—

(क) खाद्य तथा कृषि-मंत्रालय के अधीन जो विभिन्न सरकारी संस्थाएँ हैं, उन की वार्षिक रिपोर्ट अभी तक हिन्दी में न निकलने के क्या कारण हैं ; और

(ख) भविष्य में वे रिपोर्ट अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी निकालने की व्यवस्था के अनुसार क्या कार्य होने लगेगा ?

कृषि-उपमंत्री (श्री मो० वे० कृष्णप्पा)—(क) और (ख) कुछ वार्षिक रिपोर्टें, जो कि इस मंत्रालय और इसके अधीन कार्यालयों द्वारा प्रकाशित की जातीं हैं ; पहले ही से हिन्दी में भी प्रकाशित की जा रही है।

उन कार्यालयों को, जो कि अपनी रिपोर्ट केवल अंग्रेजी ही में प्रकाशित करते हैं, निर्देश दिया जा रहा है कि वे पूर्व हिदायतों के अनुसार हिन्दी में भी प्रकाशित करें।

श्री प्रकाशवीर शास्त्री—क्या मैं जान सकता हूँ कि माननीय मंत्रीजी को इस बात की जानकारी है कि कृषि-कार्य से सम्बन्धित जो व्यक्ति भारतवर्ष के अन्दर हैं, उन में से अधिकांश संख्या ऐसे व्यक्तियों की है जो अपनी प्रादेशिक भाषाओं में परिचित है अथवा हिन्दी भाषा से परिचित हैं, लेकिन इस मंत्रालय की ओर से जो साहित्य प्रकाशित होता है, उस में अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाले साहित्य की मात्रा अधिक है ? और क्या भविष्य में इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि इस प्रकार के साहित्य को उचित अनुपात से प्रकाशित किया जाये ?

खाद्य तथा कृषि-मंत्री श्री स० का० पाटिल—पूरा ध्यान रक्खा जायेगा। वह सब भाषाओं में प्रकाशित होना चाहिए। अंग्रेजी में प्रकाशित होना गलत है। वह कमी है, और मैं समझता हूँ कि इस का पूरा उपयोग नहीं होता है। चूंकि लोग दूसरी भाषाएँ समझते हैं, जैसे प्रादेशिक भाषाएँ और हिन्दी, इसलिए उन में इसे प्रकाशित होना चाहिये।

डा० गोविन्ददास—अभी मंत्रीजी ने कहा कि पूरा ध्यान रक्खा जायेगा। मैं उन से कहना चाहता हूँ कि बहुत समय से इस बात का वचन दिया जा रहा है, लेकिन वह वचन कार्यरूप में परिणत नहीं किया जा रहा है। क्या मैं जान सकता हूँ कि कब तक हम यह आशा कर सकते हैं कि उन के मंत्रालय का इस प्रकार का सारा साहित्य हिन्दी में और प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित होगा?

श्री स० का० पाटिल—समय तो मैं नहीं दे सकता हूँ; लेकिन मुझे याद नहीं आता कि पिछले बीस महीनों में मैंने कभी भी इस प्रकार का वचन दिया था और उसे पूरा नहीं किया।

सरकारी कार्यालयों में हिन्दी

१४ मई, १९६२

डा० गोविन्ददास—भाषा-आयोग और उस आयोग पर विचार करने के लिए जो संसदीय भाषा-समिति बनी थी, उसने अपनी रिपोर्ट में जो कुछ कहा था, क्या वे सब सिफारिशें कार्य-रूप में परिणत कर दी गई हैं और अगर नहीं की गई हैं, तो क्यों नहीं की गई हैं?

श्री लालबहादुर शास्त्री—उस पर जो प्रेसीडेंट-आर्डर निकला है, उसे माननीय सदस्य ने देखा होगा और जिन बातों की ओर प्रेसीडेंट-आर्डर ने ध्यान दिलाया है कि कार्यवाही की जाय, हम उन के अनुसार धीरे-धीरे काम करने की कोशिश कर रहे हैं।

श्री गोविन्ददास—अभी मंत्रीजी ने कहा कि भाषा आयोग और संसदीय हिन्दी-समिति की रिपोर्ट के ऊपर हमारे राष्ट्रपतिजी का आर्डर निकला है। क्या उस आदेश के अनुसार सारी कार्यवाही हो गई है, यदि नहीं, तो क्यों नहीं हुई है और कब तक उस के होने की संभावनाएँ हैं?

श्री लालबहादुर शास्त्री—हम उसी आदेश के अनुसार कार्यवाही कर रहे हैं और करने की कोशिश लगातार जारी है।

अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी की पुस्तकें

५ जून, १९६२

डा० गोविन्ददास—क्या माननीय मंत्री इस बात को जानते हैं कि अभी यह योजना (अहिन्दी क्षेत्रों को हिन्दी की पुस्तकें भेजने की योजना) सिर्फ एक वर्ष के लिए कार्य-रूप में परिणित की गई है और क्या मंत्रीजी को यह बात मालूम है कि जहां-जहां ये पुस्तकें भेजी गईं, वहां-वहां बहुत उत्साह के साथ इन पुस्तकों को पढ़ा गया, ऐसी हालत में जैसा श्री विभूति मिश्र ने कहा है, क्या माननीय मंत्री इस बात पर विचारेंगे कि २ लाख रुपया जो इस पर व्यय किया जानेवाला है यह बहुत कम है, और चूंकि इस वर्ष यह प्रस्ताव फिर कार्य-रूप में परिणित किया जायगा, इसलिये क्या इस रकम को बढ़ाया जा रहा है?

अध्यक्ष महोदय—उन्होने जवाब तो दे दिया कि जैसे-जैसे यह काम चलेगा, उस को बढ़ायेंगे। आप ने सुना नहीं।

डा० गोविन्ददास—मेरा मतलब यह था कि यह दो लाख रुपया—ऐसी हालत में जिस हालत में ये पुस्तकें इतने उत्साह से ली गई हैं—क्या रकम बहुत कम है और क्या इस रकम को बढ़ाये जाने का विचार किया जा रहा है?

डा० का० ला० श्रीमाली—जी हां, यह योजना जैसे-जैसे उपयोगी पायी जायेगी, इस राशि को बढ़ाया जायगा। मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी हुई है कि यह योजना इस योग्य पायी गयी है।

समाज-शिक्षा के माध्यम की भाषा

१३ अगस्त, १९६२

डा० गोविन्ददास—जहां तक समाज-शिक्षा की भाषा के माध्यम का सवाल है, क्या हर प्रांत में उस प्रान्त की भाषा का माध्यम है, या और कोई भाषाएँ ऊपर से लादी गयी हैं?

श्रीमती सौंदारम—समाज-शिक्षा का कार्यक्रम स्वाभावतः और विशेषतः प्रौढ़ शिक्षा से संबंध रखता है और यह साक्षरता लाने का कार्यक्रम है। यह क्षेत्रीय भाषाओं और मातृभाषा द्वारा ही किया जा सकता है।

नोट—मूल उत्तर अंग्रेजी में।

– १४० –

आकाशवाणी के हिन्दी-प्रसारण की भाषा के संबंध में नियुक्त समिति की सिफारिशें

३० अगस्त, १९६२

डा० गोविन्ददास—अभी मंत्रीजी ने यह कहा कि जो कमेटी बनाई गई है, उस कमेटी की क्या सिफारिशें होती हैं, उस पर विचार किया जायेगा। मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस की जो भी सिफारिशें हों, क्या वे मान्य की जायेंगी, या वह सिफारिशें अगर मंत्रीजी ठीक समझेंगे, तो मान्य की जायेंगी और अगर उन को ठीक नहीं समझेंगे, तो नहीं मानी जायेंगी ?

कोई उत्तर नहीं मिला।

सार्वजनिक आयोजनों में

मध्यप्रांत विदर्भ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
बारहवां अधिवेशन, अकोला

अध्यक्षीय भाषण

१३ दिसम्बर, १९४७

स्वागत-समिति की सभानेत्री महोदया, प्रतिनिधिगण, बहनो और भइयो !

लगभग २७ वर्ष पहले की बात है। सन् १९२० का मई महीना था। जोर की गरमी पड़ रही थी। ऊपर सूर्य तपता था और नीचे धरती। लू और झुलस रही थी। ऐसे समय चौबीस वर्ष का नवयुवक मैं एक ठंडे स्थान पचमढ़ी में आराम करते-करते पचमढ़ी से सीधा सागर इसी मध्य प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन का सभापतित्व करने गया था। २७ वर्ष बीत जाने पर भी उस समय की सारी घटनाएँ आज मेरी आँखों के सामने घूम रही हैं। अनेक वयोवृद्ध साहित्य महारथियों के रहते, जिन में मुख्य थे पं० विनायकरावजी, बाबू जगन्नाथप्रसादजी भानु, पं० कामताप्रसादजी गुरु, पं० रघुवरप्रसादजी द्विवेदी, पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री आदि। सागर के उस अधिवेशन का सभापति उस समय का चौबीस वर्ष का यह तरुण चुना गया था, क्यों चुना गया था, आज निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता; पर चुना गया था मध्यप्रांत के उस समय के दो सबसे अधिक सम्मानित व्यक्तियों के प्रयत्न से। ये दो व्यक्ति थे—पं० माधवरावजी सप्रे और पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल। क्यों उन्होंने मेरे चुने जाने के लिए प्रयत्न किया था, यह भी आज निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता; कदाचित् इसलिए कि वे मुझे सार्वजनिक जीवन में घसीटकर लाना चाहते थे। और मुझे अपने चुनाव पर हर्ष भी हुआ, इस से भी मैं इन्कार नहीं कर सकता। महत्त्वकांक्षा—जिसके लिए वृद्धावस्था से मरने तक भी दोष दिया जा सकता है—कदाचित् इस अवस्था में सब से अधिक रहती है। आज जब मैं उस बात को सोचता हूँ, तब जान पड़ता है कि उतने वयोवृद्धों के रहते मेरा यह पद स्वीकार करना, एक धृष्टता मात्र थी। "कर्मवीर" एक साप्ताहिक पत्र उसके थोड़े समय पहले जबलपुर से निकला था और उसके संपादक थे पं० माखनलालजी चतुर्वेदी। उन्होंने मेरे चुनाव का विरोध किया था, और उस समय वह विरोध चाहे मुझे बुरा मालूम हुआ हो; पर आज मैं कहता हूँ कि उन का विरोध सर्वंशा उचित और स्वाभाविक था।

सत्ताईस वर्ष बाद आज आपने फिर मुझे उसी पद पर बिठाया है। उस समय भीषण गरमी थी और इस समय वैसी ही सरदी है। उस समय मुझे पचमढ़ी से सागर की एक छोटी-सी यात्रा करनी पड़ी थी। आज दिल्ली से अकोले की एक लंबी यात्रा करनी पड़ी है। जैसी गरमी उस समय थी, वैसा ही देश का राजनैतिक और सामाजिक वायु-मंडल भी होता जा रहा था और जैसी ठंढ इस समय है वैसी ही देश के राजनैतिक और सामाजिक वायु-मंडल के ठंडे होने की हमें भविष्य में आशा करनी चाहिये। जितनी छोटी यात्रा कर उस समय मैं सागर पहुँचा था, उतना ही थोड़ा समय लगा, देश की क्रान्ति को आरम्भ होने में। जितनी लंबी यात्रा कर मुझे इस बार यहां आना पड़ा है, उतना ही लंबा समय लगता दीखता है, हर दिशा में ठंडक होने में।

और इन संस्मरणों तथा इस वर्णन में एक बात तो भूल ही गया। आपने मुझे जो यह सेवा का अवसर दिया, उसके लिये आप को धन्यवाद नहीं दिया; खैर, अब ले लीजिये।

इन सत्ताईस वर्षों में सन् १९२० से सन् १९४७ तक कितने बड़े-बड़े परिवर्तन इस देश के हर क्षेत्र में हुए हैं? सन् १९२० और सन १९४७ ये दोनों ही वर्ष, भारत के इतिहास में सदा स्मरण रखे जायेंगे। १९२० में भारत की स्वतन्त्रता का संग्राम आरंभ हुआ था और १९४७ में समाप्त। राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक हर क्षेत्र में इस बीच कितनी कशमकश चली, उसके कैसे-कैसे नतीजे निकले! संसार के इतिहास में अब तक जिन-जिन उपायों को काम में लेकर देशों ने स्वातंत्र्य-संग्राम लड़े, उन से सर्वथा भिन्न उपायों को काम में लाकर भारत स्वतन्त्र हुआ। इतिहास बताता है कि राजनैतिक और सामाजिक क्रान्तियाँ प्रायः साथ-साथ नहीं होतीं; परन्तु जिन दिनों इस देश की राजनैतिक क्रान्ति हुई, उन्हीं दिनों सामाजिक भी। अस्पृश्यता समाप्त हो गई, स्त्रियों का पर्दा चला गया। बाल-विवाह आदि न जाने कितनी सामाजिक कुरीतियाँ खत्म हो गईं। और जो साहित्य भूत का दिग्दर्शन कराते हुए वर्तमान में भविष्य का निर्माण करता है, उस का भी इस काल में कैसा सृजन हुआ? हिन्दी में द्विवेदी युग के पश्चात् के सारे साहित्यिक महारथी इसी गांधी-युग में हुए।

तो यह समय है क्रान्ति के बाद का समय। क्रान्ति प्रलय कर के नई सृष्टि के बीज बोती है। उस समय जो साहित्य-सृजन होता है, वह प्रगतिवाद का साहित्य है, यह कहा जाता है। प्रगतिवाद चाहे आज समाजवाद या साम्यवाद का पर्यायवाची वाद माना जाता हो, पर ऐसे अवसरों पर जो भी साहित्य-सृजन हुआ है तथा भविष्य में होगा,

वह सारा सृजन प्रगतिवाद का सृजन है वैज्ञानिक दृष्टि से यह माने बिना रहा ही नहीं जा सकता।

आज भारत स्वतन्त्र है। सामाजिक रूढ़ियाँ भी मिट गईं। ध्वंस का एक कार्य समाप्त हो चुका है। अभी भी कुछ ध्वंस का कार्य बाकी है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। आज समाज में सौ में से जो एक सुखी और निन्यानबे दुःखी हैं, यह सामाजिक रचना रह नहीं सकती। रहना चाहिये भी नहीं। सामन्तशाही तो सिसक रही है, पर पूंजीवाद अभी केवल लड़खड़ाया है। विदेशी राज्य और सामाजिक रूढ़ियों के प्रलय के बाद पूंजीवाद का ध्वंस करना है, परन्तु भविष्य में प्रलय की कृतियों के साथ-साथ सृष्टि भी करनी होगी। पूंजीवाद का अन्त होने तक सृष्टि रोकी नहीं जा सकती। सृष्टि तो इस काल में भी नहीं रुकी ; पर भविष्य में यह तेजी से करनी होगी, और उस में सब से अधिक सहायता साहित्य से ही मिल सकती है, और मिलेगी।

जब तक देश को स्वतन्त्र करने का सवाल हमारे सामने था, तब तक अन्य सारे कार्य उस के पीछे थे। अपने-अपने रुचिकर कार्यों को एक ओर रख इस स्वतन्त्रता के संग्राम में भाग लेना प्रत्येक भारतीय का मुख्य धर्म और कर्त्तव्य-कर्म था ; परन्तु देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद अपनी-अपनी रुचि के क्षेत्र में हर व्यक्ति को काम करने की आजादी मिल गई है। भविष्य में अपनी-अपनी रुचि के क्षेत्र में ही हर व्यक्ति को काम करना भी चाहिये ; क्यों कि हमें हर क्षेत्र को उन्नत करना है।

साहित्य-सृजन का जरिया भाषा है। भाषा बोली जाती है, साथ ही लिखी भी। देश की स्वाधीनता के साथ ही पाकिस्तान की स्थापना भी हुई है, इसे हम नहीं भूल सकते। पाकिस्तान की स्थापना होना उचित हुआ या अनुचित, कांग्रेस ने पाकिस्तान मंजूर करके, गलत बात की या सही, इन बातों का निर्णय करने का स्थान यह मंच नहीं है ; पर पाकिस्तान की स्थापना के साथ जो अनेक विषय हमारे सामने आ गये हैं, और उन में एक विषय जो राष्ट्रीय भाषा और उस भाषा की लिपि का है, उस संबन्ध में यदि इस मंच से कुछ न कहा जाय, और उस संबंध में यदि यह सम्मेलन अपनी राय व्यक्त न करे, तो यह सर्वथा अनुचित बात होगी।

अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा हो, यह मत जो डाक्टर गौर के सदृश व्यक्ति प्रकट करते हैं, उन्हें अंग्रेजी भाषा की ही एक उपाधि दी जा सकती है। यह उपाधि एक ही शब्द की है और वह अंग्रेजी शब्द है, "फासिल"। मैं न यहाँ इस शब्द का हिन्दी अर्थ बताना चाहता और न इस संबंध में कोई व्याख्या करना चाहता हूँ। अधिकांश व्यक्ति तो इस शब्द का अर्थ जानते ही होंगे, जो न जानते हों वे कोश में देखने की कृपा करें। हाँ, तो इने-गिने व्यक्तियों को चाहे अभी भी अंग्रेजी भाषा को

इस देश की राष्ट्रभाषा बनाने की राय हो, पर यह मत न अधिकांश नेताओं का है और न जनता का।

तब राष्ट्र भाषा कौन-सी हो? यह सवाल है। जब देश एक था और परतंत्र, तब अंग्रेजी से हमारी मुठभेड़ थी और हम हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा बनाया चाहते थे; पर देश के टुकड़े हो जाने पर बात बदल गई है। यहां कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दुस्थानी है, यह एक स्वाभाविक बात जान पड़ती है। यह प्रश्न 'हिंदुस्तानी' शब्द का नहीं है। शब्दों का कुछ विशिष्ट अर्थों में प्रयोग होते-होते—शब्दों का रूप चाहे कैसा ही हो—उन का एक विशेष अर्थ बन जाता है, हिन्दुस्तानी भाषा का भी एक विशेष अर्थ हो गया है। हिन्दुस्थानी भाषा का अर्थ है—वह भाषा, जिस में प्रतिशत इतने शब्द संस्कृत, अरबी, फारसी भाषाओं के आने चाहिये और जो देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों में लिखी जानी चाहिये। भारत के विभाजन के बाद ऐसी भाषा भारतीय संघ के लिये उपयुक्त नही हो सकती। इतना ही नहीं, यदि ऐसी भाषा इस देश की राष्ट्रभाषा बनाई गई, तो भारतीय संघ में रहनेवाले हिंदू मुसलमानों की एकता में यह भाषा बहुत दूर तक बाधक होगी। आज मुस्लिम लीग समाप्त कर देने की बात चल रही है। भारतीय संघ में रहनेवाले मुसलमान इस बात के ऐलान पर ऐलान कर रहे हैं कि वे भारत के प्रति वफादार रहेंगे। भारत के प्रति उन की सच्ची वफादारी तभी रह सकती है, जब अपना मजहब मानते हुए—क्योंकि मजहब शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग होता है, उस से उस दुनिया का अधिक तर संबंध है, इस दुनिया का बहुत कम—वे भारतीय संस्कृति को अपनावें। चीन में रहनेवाले मुसलमानों ने इस्लाम को मानते हुए भी चीनी संस्कृति को अपनाया है। उन की भाषा चीनी है। अरबी, फारसी नही। रूस के मुसलमानों का भी वही हाल है। हिन्दुस्तान में भी बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, मदरास, आंध्र, तमिल, कर्नाटक, मलयालम में रहनेवाले मुसलमान इन प्रांतों की भाषा बोलते और लिखते हैं। हाल ही में इन प्रान्तों में उर्दू का प्रचार अवश्य किया गया है; पर जब से यह हुआ है, तभी से इन प्रान्तों में हिन्दू-मुस्लिम दंगे-फसादों का भी आरम्भ हुआ। हां, तो सवाल यह है कि भारत की राष्ट्रभाषा दो क्यों हो? या कम-से-कम ऐसी भाषा क्यों कि जिस का रूप निश्चित नहीं है और जो दो लिपियों में लिखी जाय? ऐसी हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाना, जो देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों में लिखी जाय, हिन्दू-मुसलमानों को निकट लाने का प्रयत्न नहीं, उन्हें एक दूसरे से दूर हटाने का प्रयत्न है। उन में एकता करने की कोशिश करना नहीं; पर उन में सदा फूट बनी रहे, इसका विधान है। सन् १९१६

में लखनऊ के कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अधिवेशन के समय शासन सुधार संबंधी जो कांग्रेस-लीग योजना बनी थी, उस में संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्र के स्थान में पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र इसलिये स्वीकार किये गये थे कि यह उपाय हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का सब से बड़ा साधन माना गया था। यह समय ने हमें बता दिया कि पृथक् निर्वाचन क्षेत्र के जो बीज बोये गये, वे किस प्रकार उगे, पल्लवित, पुष्पित और अन्त में पाकिस्तान के रूप में फलित भी हो गये। पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों का जो नतीजा निकला है, उससे भी बुरा निकलेगा, यदि ऐसी हिन्दुस्तानी देश की राष्ट्रभाषा बनाई गई, जो देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों में लिखी जाय। पशु से मनुष्य को पृथक् करनेवाली सब से प्रधान वस्तु भाषा है, क्योंकि मानव के समस्त ज्ञान का आधार वही है। स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद भाषा के प्रश्न को हमें सब से अधिक महत्त्व देना ही होगा।

भारतीय विधान परिषद् में भाषा का विषय उठा हुआ है। वहां इस संबंध में कई विचारधाराएँ चल रही हैं। उन में मुख्य चार हैं—

१. हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाया जाय जो दोनो लिपियों अर्थात् देवनागरी और फारसी में लिखी जाय।
२. हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाया जाय, जो केवल देवनागरी लिपि में लिखी जाय।
३. हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया जाय, जो देवनागरी लिपि में लिखी जाय।
४. भारती को राष्ट्रभाषा बनाया जाय, जो अबतक हिन्दी या हिन्दुस्तानी कही जाती थी, और जो देवनागरी लिपि में लिखी जाय।

पहली बात संभव नहीं और इस के कारण अभी दिये जा चुके हैं।

दूसरी बात इसलिये संभव नहीं कि भाषा लिखी ही नहीं जाती, पर बोली भी जाती है। यदि हम देवनागरी में लिखी जानेवाली हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा मान लेंगे, तो रेडियो इत्यादि में किस भाषा का उपयोग होगा, क्यों कि हिन्दुस्तानी का रूप ही निश्चित नहीं है, अतः किस भाषा को हिन्दुस्तानी कहा जायगा, यह सवाल होगा। देवनागरी में लिखी जाने पर भी इस हिन्दुस्तानी भाषा में इतने-इतने प्रतिशत शब्द संस्कृत, अरबी और फारसी के हों, यह प्रश्न उठ खड़ा होगा।

तीसरी और चौथी दोनों में से कोई भी बात मानी जा सकती है। देश का नाम हिन्द होता है, तो हिन्दी हमारी भाषा हो और देश का नाम भारत होता है, तो भारती। पर भाषा हिन्दी हो या भारती, लिपि तो एक ही रह सकती है—देवनागरी।

फिर हमें इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि देवनागरी वैज्ञानिक दृष्टि से सब से अच्छी और सब से सरल लिपि है। उसे मद्रास सदृश प्रान्तों में भी लोग तीन-चार हफ्तों में सीख लेते हैं। मैं योरप के कुछ ऐसे लोगों को जानता हूँ, जो पिछले युद्ध में शरणार्थी अथवा सैनिक बन कर यहां आये थे और उन्होंने हिन्दी भाषा में बात-चीत करने के सिवा नागरी लिपि को भी सहज में सीख लिया था।

और मैं आप से कहना चाहता हूं कि मुझे आशा ही नहीं, विश्वास है कि विधान परिषद् के अगले अधिवेशन में हम हिन्दी या भारती को राष्ट्रभाषा बनवा कर रहेंगे, जो देवनागरी लिपि में ही लिखी जायगी।

एक बात मैं यह और कह देना चाहता हूं। देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी बनाने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम उर्दू या भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं की हत्या करना चाहते हैं। जहां तक उर्दू का सवाल है, हम उर्दू को हिन्दी का ही एक विकृत रूप मानते हैं। हमारे मुसलमान भाई उस का और फारसी लिपि का उपयोग कर सकते हैं। प्रान्तीय भाषाओं को तो हम अधिक-से-अधिक प्रोत्साहन देना चाहते हैं। बंगाली, मराठी, गुजराती, तेलगू, तामिल मलयालम कन्नड़ इत्यादि सारी भाषाएँ खूब फूले-फलें। प्रान्तीय सरकारों, प्रान्तीय धारा-सभाओं और प्रान्तीय कचहरियों की भाषा उस प्रान्त की भाषा हो। हर प्रान्त अपने-अपने विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम अपनी प्रान्तीय भाषा को रक्खे। नागपुर-विश्वविद्यालय ने अपनी कार्य-भाषा मराठी रखने का अभी निर्णय किया है, कुछ हिन्दी भाषा-भाषी इससे बहुत रुष्ट हुए हैं, परन्तु मेरे मत से यह रोष अनुचित है। हां इतना मैं भी अवश्य कहना चाहूंगा कि नागपुर-विश्वविद्यालय जिस प्रकार स्थापित हुआ है, उसे देखते हुए नागपुर-विश्वविद्यालय की कार्य-भाषा हिन्दी और मराठी दोनों होनी चाहिये। पूना में कोई विश्वविद्यालय हो तो उस में केवल मराठी ही हो सकती है। हम हिन्दी को केन्द्र में केन्द्रीय सरकार की और अंतर्प्रान्तीय भाषा बनाना चाहते हैं, जिस का दूसरा अर्थ राष्ट्रभाषा होता है। हाँ, हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों की तो वही प्रान्तीय भाषा भी होगी। वहां की सरकार की भी वही भाषा होगी और वहां की शिक्षा के माध्यम की भी वही भाषा। अंग्रेजी से भी हमारा कोई द्वेष नहीं; अन्तर्राष्ट्रीय भाषा हमारी अंग्रेजी भाषा होगी; पर अंग्रेजी को अपने देश की शिक्षा में हम अनिवार्य नहीं रखना चाहते। हमारे देश में दो ही भाषाएँ अनिवार्य होंगी, प्रांतों की प्रान्तीय भाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी।

हाल ही में संयुक्त प्रांत के बरेली जिले की मोमीन परिषद् जो श्री खलील मुहम्मद अन्सारी के सभापतित्व में हुई, उसने संयुक्त प्रान्त की सरकार द्वारा हिन्दी को उस प्रान्त की प्रान्त-भाषा बनाने का समर्थन किया है। मुझे विश्वास है कि यदि

हमारे मुसलमान भाई इस विषय को थोड़ी उदार दृष्टि से देखेंगे तो वे उसी निर्णय पर पहुंचेंगे, जिस पर बरेली के मोमिन भाई पहुंचे हैं।

भाषा पर मुझे कुछ अधिक इसलिए कहना पड़ा कि इस समय यह प्रश्न अत्यंत महत्व का प्रश्न हो गया है, जो सर्वथा स्वाभाविक और ठीक है।

भाषा के बाद हमे साहित्य-सृजन पर भी थोड़ा-सा विचार करना है। सन् १९२० के बाद हिन्दी का भंडार बहुत बढ़ा है। यह मानने पर भी हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि हम "साहित्य" शब्द को व्यापक अर्थ में लें, तो अभी कई क्षेत्र ऐसे हैं, जहां साहित्य-सृजन की बड़ी कमी है। इस वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक साहित्य की हमें नितान्त आवश्यकता है। खेती, उद्योग-धंधे, वाणिज्य, व्यापार आदि अनेक विषयों पर अभी हिन्दी में नाम-मात्र का साहित्य है। यदि हम हिन्दी को ऊंची-से-ऊंची शिक्षा और सब प्रकार की शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं; यदि हम चाहते हैं कि केन्द्र और हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों की सरकारों का सारा काम हिन्दी में हो, केन्द्र और हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों की धारा-सभाओं का कुल काम हिन्दी में हो, यदि हम चाहते हैं कि कचहरियों का भी सारा कार्य हिन्दी में हो, तो हर दिशा में हमे साहित्य-सृजन का काम हाथ में लेना होगा।

एक बात और। देश की प्रतिष्ठा उस के विचारक और साहित्यिक बढ़ाते हैं। कवि सम्राट् रवीन्द्र बाबू ने भारत का जो गौरव संसार में बढ़ाया है, वह किसी से छिपा नहीं है। रवीन्द्र बाबू के सिवा इस देश में अन्य भी अनेक ऐसे साहित्यिक और भाषाएँ हैं, जिन की कृतियां किसी भी उन्नत-से-उन्नत देश के श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ साहित्यिकों से टक्कर ले सकती हैं। हमने अब तक अपनी भाषा को अन्य देशों से समृद्ध किया है। मैं तो यह मानता हूं कि अब हम ऐसी स्थिति में हैं, जब अन्यों को कुछ दे भी सकते हैं। इस कार्य में हमें अंग्रेजी भाषा का आश्रय लेना होगा, क्यों कि वही ऐसी भाषा है, जिसे हम जानते हैं और जिसका अन्तर्राष्ट्रीय स्थान है। स्वतंत्रता के पश्चात् यदि हमने अंग्रेजी द्वारा संसार के साहित्य को कुछ दिया, तो हमारे देश का गौरव कहीं अधिक बढ़ेगा। मैंने अधिकांश नोबल प्राइज-विजेताओं का साहित्य पढ़ा है और उन से जब मैं अपने साहित्यकों के साहित्य का मिलान करता हूं, तब मुझे विश्वास हो जाता है कि यदि यह देश स्वतंत्र होता और इस देश का साहित्य संसार के सामने जाता, तो हमारे देश के अनेक साहित्य-स्रष्टा नोबल प्राइज प्राप्त करते। आलोचना की हमारे साहित्य में आज भी भयानक रूप से कमी है; हिन्दी में तो और भी अधिक। इस दृष्टि से बंगला, मराठी और गुजराती साहित्य भी हम से कहीं आगे हैं। विदेश में हमारा साहित्य पहुंचने पर वहां सच्ची आलोचना की

कसौटी पर न कसा जाय, यह संभव नहीं, और तब हम स्वयं भी अपने साहित्य को शायद अधिक परख सकेंगे।

भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद वर्तमान परिस्थिति में साहित्यिकों और इन साहित्य-संस्थाओं की जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है; पर इस जिम्मेदारी को साहित्यिक और साहित्य-संस्थाएँ तब तक पूरा नहीं कर सकतीं, जब तक स्वतंत्र भारत की स्वतंत्र सरकारें इन्हें पूरी-पूरी सहायता और पूरा-पूरा सहयोग न दें।

चूंकि यह मध्यप्रान्तीय विदर्भ-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन है, इसलिये केन्द्रीय सरकार तथा अन्य प्रान्तीय सरकारों और अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा अन्य प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों के संबंध में कुछ न कह मैं मध्य-प्रान्त विदर्भ की सरकार और इस सम्मेलन के संबंध में ही कुछ कहना चाहूंगा।

इस प्रान्त में कांग्रेसी सरकार है और उस सरकार के कर्णधार हिन्दी-प्रेमी हैं। पर मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि प्रान्तीय धारा-सभा के स्पीकर महोदय के कुछ निर्णयों और प्रान्तीय धारा-सभा के भाषणों को छोड़ शासन के सारे कार्यों में अभी भी अंग्रेजी का ही दौर-दौरा है। सेक्रेटरियट में अंग्रेजी भाषा का पूर्ण साम्राज्य है और सरकारी गजट तक अंग्रेजी में प्रकाशित होता है। कहा यह जाता है कि इस प्रान्त में हिन्दी-मराठी दो भाषाएँ हैं; अतः अंग्रेजी को जारी रक्खा गया है। तब क्या मुझे यह मान लेना चाहिये कि मध्यप्रान्त और बरार का यदि वर्तमान रूप ही रहा, तो यहां अंग्रेजी का ही दौर-दौरा रहेगा! मैं इसे स्वतंत्र भारत में कलंक की चीज मानता हूं, यदि मराठी भाषा-भाषी हिन्दी में सारा कार्य होने के पक्ष में नहीं, तो दोनों भाषाओं में काम हो। इसमें मुझे आपत्ति नहीं; पर अंग्रेजी तो समाप्त होनी ही चाहिये। हिन्दी और मराठी दोनों भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जाती हैं; इसलिये दोनों भाषाओं को मान लेने पर भी कोई खास कठिनाई नहीं होगी। प्रान्तीय सरकार से मैं निम्नलिखित बातें चाहता हूं—

१. संयुक्त प्रान्त के सदृश वह धारा-सभा के नियमों में परिवर्तन कर अंग्रेजी को वहां से हटा दें।

२. सेक्रेटेरियट में से अंग्रेजी निकाले और सरकारी गजट अंग्रेजी में निकलना बंद करे।

३. जहां तक अदालतों का मामला है, वहाँ तक प्रान्त के जिस क्षेत्र में हिन्दी बोली जाती है, उस में हिन्दी और जिस क्षेत्र में मराठी बोली जाती है, उस में मराठी तत्काल करके, अंग्रेजी को समाप्त करे।

४. सरकारी नौकरियों के लिये विश्वविद्यालयों की डिग्रियों के सदृश अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं, शान्ति-निकेतन, गुरुकुल कांगड़ी, काशी-विद्यापीठ इत्यादि प्रतिष्ठित संस्थाओं की डिग्रियों को भी स्वीकार करे। पुराने नौकरों को नोटिस दे कि अमुक-अमुक समय के भीतर यदि उन्होंने हिन्दी या मराठी का अच्छा काम करने योग्य ज्ञान हासिल न किया, तो उन्हें अलग होना होगा। और ऐसे नये कोई नौकर न रक्खे, जिन्हें हिन्दी या मराठी का पूरा-पूरा ज्ञान न हो। आई० सी० एस० पास करने वालों के शिक्षा-क्रम में भी किसी भारतीय भाषा का ज्ञान आवश्यक माना गया है। आई० सी० एस० वालों को भारतीय भाषाओं का कितना ज्ञान होता था, यह हम भली-भांति जानते हैं, इसी लिये मैंने हिन्दी या मराठी के पूरे-पूरे ज्ञान की बात कही है।

५. पाठ्य-पुस्तकों को लिखवाये और उन का प्रकाशन करे। इस समय कुछ प्रकाशक यह कार्य करते हैं और उन के सामने केवल उन का स्वार्थ-साधन रहता है। पाठ्य पुस्तकों के स्वीकार कराने के सदृश पुण्यकार्य में रिश्वतखोरी का बाजार गरम है। देश के उद्योग-धंधों को राष्ट्रीय बनाने की जब बात चल रही है, तब ऐसे कार्य को तो सर्वप्रथम और तत्काल सरकार को हाथ में लेना चाहिये।

६. नागपुर में निकट भविष्य में जो ब्राडकास्टिंग स्टेशन खुलनेवाला है, उस के लिये अभी से ऐसी तैयारियां करे, जिससे हम सारे भारत में अपनी भाषा की धाक जमा सकें और उदाहरण स्वरूप बन सकें। साहित्य-सृजन के कार्य में भी इस संस्था से यथेष्ट सहायता मिल सकती है।

७. सड़कों के साईन बोर्ड, मीलो के पत्थर, मोटरों, मोटर साइकिलों, तांगों, दफ्तरों, चपरासी आदि के कमरपट्ट इत्यादि की अंग्रेजी इबारत और अंग्रेजी अंकों के स्थान पर अविलम्ब हिन्दी आ जानी चाहिए। जनता पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस का जितना प्रभाव पड़ेगा, उतना अन्य बातों का नहीं।

८. प्रान्त में हिन्दी-साहित्य के सृजन के लिये पूरी सहायता करे। इस संबंध में निम्नलिखित बातें आवश्यक जान पड़ती हैं—

(क) इस सम्मेलन को प्रान्त में सुचारु रूप से संगठित करने और साहित्य-सृजन कराने के लिए अन्य संस्थाओं के सदृश इसे भी ग्रांट दी जाय और वह छोटी-मोटी नहीं, यथेष्ट। मेरा मत है कि सम्मेलन के स्थायी कोष के लिये एक लाख रुपया तो सरकार एक मुश्त दे और फिर प्रति वर्ष एक अच्छी रकम। इस ग्रान्ट से सम्मेलन अपने स्थायी कार्यालय के लिये एक मकान बनवाकर, वहां से सारे प्रान्त में सम्मेलन की शाखाएं स्थापित करेगा, साहित्य-सृजन करायेगा और योग्य साहित्यिकों को सहायता भी देगा।

(ख) सागर-विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम तत्काल हिन्दी किया जाय।

अनिवार्य जन-शिक्षा के साथ सार्वजनिक सरकारी पुस्तकालयों का होना भी नितांत आवश्यक है। हमें इस संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त करने और उपयोगिता का महत्त्व समझने के लिये ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, कैनेडा आदि देशों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए। आज ग्रेट ब्रिटेन में ९७% जनता को पुस्तकालयों की सुविधा प्राप्त है। अमेरिका में शिक्षा-सचिवालय के साथ पुस्तकालय के लिए भी एक डायरेक्टर होता है। कैनेडा में तो प्राथमिक और स्कूली शिक्षा आदि का प्रबंध पुस्तकालयो के द्वारा ही किया जाता है। मार्ग से ५ और १० मील दूर तक के स्थित ग्रामों में चल-पुस्तकालयों की व्यवस्था है। इस सब का परिणाम शिक्षा-प्रसार की प्रगति में हुआ है। भारतवर्ष में पुस्तकालयों के संबंध में बड़ोदा रियासत का प्रसार और कार्य सराहनीय है और हमारी प्रान्तीय सरकारों के लिए उदाहरणीय। सरकारी उदासीनता ही पुस्तकालयों के प्रसार में आज तक सब से बड़ी बाधक रही है और आज जब हमारी खुद की सरकार है, तो मैं सरकार से चाहता हूं कि वह एक प्रान्तव्यापी योजना अविलम्ब इस संबंध में बनाये। दो केन्द्रीय पुस्तकालयों की स्थापना जबलपुर और नागपुर में करे, जहां से पुस्तकें जिला, तहसील और ग्रामों में पहुंचाई जाया करें और इन्हीं केंद्रीय पुस्तकालयों से इन सारे पुस्तकालयों का संचालन, गठन, पुस्तकों व समाचार-पत्रो का चयन, विवरण व अन्य सभी संबधित कार्य हों। जबलपुर में हिन्दी भाषा-भाषियों के लिये और नागपुर में मराठों के लिये। इन की सहायता से हम सरकार द्वारा निर्मित ग्राम-पंचायतों में बड़ा ठोस रचनात्मक कार्य कर सकेंगे और चल-पुस्तकालयों की व्यवस्था भी।

यहां मैं अपने प्रान्त के मराठी-भाषा-भाषियों से दो शब्द कहूं, तो अनुचित न होगा। आजही नहीं ; पर एक दीर्घ काल से हिन्दी और मराठी का बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा है। मराठी-गीत-सम्राट् नामदेव हिन्दी-साहित्य की अनमोल निधि हैं। छत्रपति महाराज शिवाजी के राजकवि रहे हैं—कविरत्न भूषण। हमारा प्रान्त हिन्दी और मराठी का सुंदर मिश्रण है। क्या मैं मराठी-भाषा-भाषियो से यह आशा नहीं कर सकता कि उन को तो राष्ट्रभाषा को अपनाने और उस का प्रचार करने में अन्य प्रान्तीय भाषा-भाषियों से कहीं अधिक योग देना चाहिये।

मध्यप्रान्त वह प्रान्त है, जहां के उत्तरीय जिले महाकोशल की भाषा ठेठ हिन्दी है। हमारी पराधीनता के समय भी इस प्रान्त में ऊँचे दरजे के साहित्यिकों और साहित्य-सृजन की कमी नहीं रही। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध,

आलोचना, इतिहास, व्याकरण सभी क्षेत्रों में हमने अच्छे-से-अच्छे लेखकों को उत्पन्न किया है। हमें इस का गर्व है।

साहित्य-सृजन के साथ प्रकाशन के भी हमने प्रयास किये। हमारे यहां से पुस्तक-मालाएं, मासिक-पत्रिकाएं, साप्ताहिक और दैनिक पत्र सभी का प्रकाशन हुआ। आरंभिक प्रयत्न इसलिये सफल न हुए कि उस समय सफलता के ऐसे योग इकट्ठे न थे, जिस में वे प्रयत्न सफल हो सकते। अब प्रान्त में कुछ साप्ताहिक और दैनिक पत्र सफलता के चल रहे हैं। कम-से-कम एक साहित्यिक मासिक और कम-से-कम एक पुस्तक-प्रकाशन-संस्था अब सफलतापूर्वक कदाचित चल सकेगी, परन्तु मासिक-पत्रों और पुस्तकों की छपाई-सफाई इत्यादि का मापदंड अब बहुत ऊंचा हो गया है। उचित बात भी हुई है। जो साहित्य, सौंदर्य की उपासना करने वाला हो, उसका बाह्य रूप फहड़ हो, यह सहन नहीं किया जा सकता।

साहित्य-सृजन साहित्य-प्रचार और साहित्यिकों के संगठन, इस सारे कार्य के लिये, यदि यह सम्मेलन अपना नाम चरितार्थ करना चाहता है, तो इसे सारा उत्तरदायित्व लेना होगा। जैसा मैंने पहले कहा है, जब तक हमे स्वतंत्रता प्राप्त न हुई थी, तब तक भिन्न-भिन्न रुचि रखने वालों का भी पहला कर्त्तव्य था—स्वतंत्रता की प्राप्ति में योग देना। स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद अब हमें सब दिशाओं में काम करना है। और उन से सब में प्रधान दिशा है—साहित्य। यह उक्ति चाहे कितनी ही पुरानी क्यों न हो गई हो; पर कुछ अन्य उक्तियों के समान सदा नवीन रहेगी—

"अंधकार है वहां जहां आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश जहां साहित्य नहीं है।"

इस प्रान्त को जीवित बनाने के लिये हमें इस सम्मेलन को जीवित बनाना होगा। जिस प्रकार हृदय के बिना शरीर एक क्षण नहीं चल सकता, उसी प्रकार बिना स्थायी कार्यालय के कोई संगठन नहीं चल सकता। यह मेरा अनुभव है, और मेरा ही नहीं, न जानें कितनों का होगा। जब तक कांग्रेस तीन दिनों के अधिवेशन की चीज रही, तब तक जिस प्रकार उस के कार्यों में जान नहीं आई, उसी प्रकार इस सम्मेलन का भी जब तक स्थायी कार्यालय न होगा, तब तक इस में भी जान आने वाली नहीं। प्रान्त के किसी हिन्दी-भाषा-भाषी केन्द्र स्थान में इस सम्मेलन के स्थायी कार्यालय और इसके पश्चात् इसके प्रान्तव्यापी संगठन की आवश्यकता हैं।

दलबंदी आज-कल हर कार्य में देखी जाती है। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और विश्वविद्यालयों के सदृश संस्थाएं भी दलबंदियों से रहित नहीं हैं। हमारा सम्मेलन भी दलबंदी से कहां तक बच सकेगा, यह नहीं कहा

जा सकता। बचाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये; पर यदि न भी बचे, तो उससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन हमारे आदर्श होने चाहिए। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की दल-बंदियों के रहते हुए भी, वे उसे चलाये जा रहे हैं; और चलाये क्या, बढ़ाये जा रहे हैं।

स्थायी कार्यालय और प्रान्त में व्यापक संगठन के पश्चात् इस सम्मेलन को निम्न लिखित कार्य करने चाहिये—

१. पुस्तक-प्रकाशन।

२. एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन।

आज इतने उच्च कोटि के साहित्यिकों के इस प्रान्त में रहने पर भी उन्हें दूसरे प्रान्तों का मुख देखना पड़ता है। उन की रचनाओं के पुस्तक रूप अथवा मासिक-पत्रों आदि में भी प्रकाशित होने में कठिनाई होती है। उपर्युक्त प्रबंध होने से यह कठिनाई दूर हो जायगी।

३. योग्य साहित्यिकों का पुरस्कार आदि से सम्मान।

४. पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में सरकार की सक्रिय सहायता।

५. अध्ययन और अनुसंधान के लिये उपलब्ध साधनों का समन्वय और विकास।

इस भाषण को पूर्ण करने के पहले मैं अपने कुछ स्वप्नों के उल्लेख करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकता। मेरे एक स्वप्न के फलस्वरूप सन् १९१९ में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पटना अधिवेशन में, जिस के सभापति पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल थे, एक प्रस्ताव पास हुआ था। उस प्रस्ताव का आशय था कि भिन्न-भिन्न विषयों पर ग्रंथ-निर्माण करने के लिये लेखकों को उन की जीविका की चिन्ता से मुक्त कर एक स्थान पर रक्खा जाय। जबलपुर में राष्ट्रीय हिन्दी-मंदिर की स्थापना इसी उद्देश्य से हुई थी। वह अपना कार्य न कर सका और समाप्त हो गया। उस समय की अपेक्षा आज लेखकों की जीविका और साहित्य-सृजन, ये दोनों प्रश्न कहीं अधिक महत्त्व के हो गये हैं। क्या आज फिर किसी ऐसी संस्था का निर्माण हो सकता है?

मेरा दूसरा स्वप्न है भारत में ही नोबुल 'प्राईज' के समान कम-से-कम एक लाख रुपये के एक ऐसे पुरस्कार की सृष्टि, जो किसी भी भारतीय भाषा के सर्वोत्तम ग्रंथ पर हर तीसरे वर्ष दिया जाय। वह ग्रंथ चाहे हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ कोई भी भाषा में लिखा हो।

सिनेमा-युग बीतता जा रहा है। केवल भारतवर्ष में नहीं; परन्तु सारे संसार में नाटकों का पुनरुत्थान हो रहा है। जहां हालीवुड है, उस अमेरिका में भी।

मेरा तीसरा स्वप्न है—हिन्दी नाटकों के लिये आधुनिक से आधुनिक रंगमंच की स्थापना।

उपर्युक्त कार्यों के लिये यथेष्ट धन चाहिये। गत लड़ाई में कितना कमाया है लोगों ने, उचित व अनुचित दोनों ही प्रकारों से। करोड़ों रुपये लोगों ने इनकम-टैक्स के रूप में दिये हैं। दान के एक-एक करोड़ के ट्रस्ट भी हुए हैं। भारत की दान-प्रणाली बड़ी दूषित रही है, अभी भी बड़ी दूषित है। मैं तो समाज का वह संगठन चाहता हूं कि जिस में न किसी के पास दान देने को रहे और न कोई दान के लिये हाथ फैलाये। इस प्रकार के सारे कार्य सरकार करे; परंतु जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति मौजूद है, तब तक तो दान-प्रणाली रहनेवाली ही है और उस का सुधार भी अभीष्ट है।

मि० नोबुल एक ऐसा ही दान कर के सदा के लिये अमर हो गये। क्या भारत में भी उपर्युक्त कार्यों के लिये कोई दाता सामने आयेगा? जिन्होंने उचित मार्गों से कमाया है, वे उस में सार्वजनिक भाग मान कर दे सकते हैं और जिन्होंने अनुचित मार्गों से कमाया है वे अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये। ध्यान रखें यह लक्ष्मी चंचला है। स्थिरा भव, स्थिरा भव, स्थिरा भव का जप करते रहने पर भी यह न आज तक कहीं स्थिर रही है और न भविष्य में रहनेवाली है। बड़े साम्राज्यों का निर्माण हुआ और नाश। बड़े-बड़े करोड़पति बनें और बिगड़े। जिन्होंने इस संपदा का उपयोग कर लिया वे ही धन्य हो गये। शेष का तो वही हाल हुआ जो धन पर बैठे हुए सांपों का होता है।

अब भाषणों का समय न हो कर कार्य का समय है। इसीलिये मैंने इस भाषण को बहुत संक्षिप्त लिखने और कुछ कार्यों की ओर संकेत-मात्र करने का प्रयत्न किया है।

इस भाषण का अन्त मैं उसी छोटे से पद्य के साथ करना चाहता हूं जो मैंने सत्ताईस वर्ष पूर्व इसी सम्मेलन के सागर के अधिवेशन के अपने भाषण के अंत में लिखा था—

यह राष्ट्रभाषा देश के उद्धार में आधार हो।
सब संकटों से दूर चल नौका हमारी पार हो॥
कर्मण्यता के साथ सुखदायी हमें संसार हो।
प्रति धर्म संकट में यहां योगीश का अवतार हो॥
हम मर मिटें निज देश, भाषा, धर्म को भूलें नहीं।
मन में रहे अनुराग इनका हम रहें चाहे कहीं॥

हे दीनबंधो, फूट के दुख की जहां नदियां बहीं।
अब दया करके प्रेमरस की कीजिये वर्षा वहीं।

वंदेमातरम।

जय हिन्द।

अकोला ता० १३-१२-४७

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, छत्तीसवां अधिवेशन, मेरठ

अध्यक्षीय भाषण

८ दिसम्बर १९४८

स्वागताध्यक्ष महोदय, प्रतिनिधिगण, बहनो और भाइयो !

जिस स्थान पर आप परम पूज्य महात्मा गांधी, महामना मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और अनेक दिग्गज विद्वान् तथा महान् हिन्दी प्रेमियों को आसीन कर चुके हैं, उस को आज मुझे देकर आपने अपनी महान् उदारता और परम अनुकम्पा का ही परिचय दिया है। इस प्रकार आपने अपनी गुण-ग्राहकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, यह मैं नहीं कह सकता, क्यों कि यदि आपने यह किया होता, तब तो यहां कोई अन्य व्यक्ति ही विराजमान होता। आपकी इस उदारता और अनुकम्पा के बदले में रूखे-सूखे धन्यवाद के अतिरिक्त मेरे पास देने को क्या रखा है ? ईश्वर से मैं यही प्रार्थना करता हूं कि जिस विश्वास का आपने मुझे पात्र समझा है, उसके योग्य मैं हो सकूं। अतएव, अब मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्राण श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन को प्रणाम कर इस कार्य के संचालन का प्रयत्न करता हूं।

श्रद्धांजलि

महात्मा गांधी के निधन के पश्चात् इस सम्मेलन का यह प्रथम अधिवेशन हो रहा है। संसार में ऐसे महान् पुरुष शताब्दियों में आते हैं। इस देश में गौतमबुद्ध और संसार में ईसा के उपरान्त किसी ऐसे महापुरुष का जन्म नहीं हुआ। इस देश के जीवन का एक भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जिसे महात्माजी ने अपने व्यक्तित्व और कार्य से प्रभावित न किया हो। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का भी गांधीजी से निकट का सम्बन्ध रहा है। उधर इन्होंने अपना सम्बन्ध सम्मेलन से अवश्य तोड़ लिया था, परन्तु सम्मेलन को आज जो महत्त्व प्राप्त है, उस में गान्धीजी का कितना बड़ा हाथ

था, यह किसी भी सम्मेलन-प्रेमी से छिपा नहीं है। हम उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन के इस वाक्य का स्मरण करते हैं—"भाई, मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। पूरी आजादी तो हमें अंग्रेजी की गुलामी छोड़ देने पर ही मिलेगी।"

हमारा ध्यान आज उन हिन्दी-प्रेमियों की ओर भी जाये बिना नहीं रहता, जिन से हमारा इस वर्ष वियोग हुआ है। उन में हैं—

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान और बाबू रामधारीप्रसाद

सम्मेलन का कार्य

देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् हमारे इस सम्मेलन ने भी एक नये युग में प्रवेश किया है। सम्मेलन ने अब तक जो कार्य किया है, उस का सिंहावलोकन करना यहां उपयुक्त होगा। यह सिंहावलोकन तब तक सुचारु रूप से नहीं किया जा सकता, जब तक कि सम्मेलन की स्थापना से पूर्व हिन्दी की दशा पर थोड़ा-सा विचार न कर लिया जाय।

सम्मेलन की स्थापना सन् १९१० में हुई। इसके पहले काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अतिरिक्त कदाचित् कोई ऐसी संस्था हिन्दी के क्षेत्र में काम नहीं करती थी, जो उल्लेखनीय हो। जिन क्षेत्रों में हिन्दी लोगों की मातृभाषा थी, वहां सन् १९१० में प्राथमिक शिक्षा हिन्दी में दी जाती थी। कालेजों की बात तो अलग रही, हाई स्कूलों में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो सकती है, इस तक की कल्पना नहीं की जा सकती थी। पुराने काव्य-साहित्य को छोड़कर हिन्दी में बहुत थोड़े साहित्य का निर्माण हुआ था। उच्च कक्षाओं में पढ़ाने के लिए न उस में ग्रन्थ उपलब्ध थे और न शिक्षक ही। विदेशी राज्य था और विदेशी भाषा में हमारे देश की सारी शिक्षा और परीक्षाएँ होती थीं। हां, यह अवश्य था कि देश के अधिक निवासियों की मातृभाषा हिन्दी थी और जिन की मातृभाषा हिन्दी न थी, वे भी (दक्षिण भारत के निवासियों को छोड़कर) हिन्दी समझ व बोल लेते थे। इस परिस्थिति में सम्मेलन ने अपना कार्य आरम्भ किया। सन् १९१४ में उस ने अपनी विशिष्ट परीक्षाएं और उन के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित किये। इस के लिए पाठ्य-पुस्तकें बनने लगीं। जो व्यक्ति पहले विद्यार्थियों के रूप में आये, वे ही आगे चलकर शिक्षक बने। पहले हिन्दी-क्षेत्र में ये परीक्षाएं जनप्रिय हुईं, और फिर अहिन्दी प्रान्तों में; यहां तक कि दक्षिण भारत तक पहुंच गयीं। आज इस देश का एक भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जहां सम्मेलन के 'विशारद' और 'साहित्यरत्न' न हों।

ग्राम-उत्थान के कार्यों में जिस प्रकार सरकार गांधीजी का अनुसरण करती थी और गांधीजी की ग्राम-सुधार की किसी योजना के बनने पर वह अपनी योजना बना, उससे होड़ करने का प्रयत्न करती थी, उसी प्रकार हिन्दी में भी उच्च शिक्षा देने के लिए पाठ्यक्रम सरकार ने सम्मेलन की परीक्षाओं के पश्चात् बनाये। विश्वविद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा का आरम्भ यथार्थ में सम्मेलन की इन परीक्षाओं द्वारा ही हुआ।

शिक्षा और परीक्षाओं के अतिरिक्त हिन्दी के प्रति अहिन्दी प्रान्तों के विद्वानों और जनता की सहानुभूति प्राप्त करने का भी महान् कार्य सम्मेलन ने ही किया। आज हिन्दी का राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होना, एक स्वाभाविक-सी बात लगती है। इस का श्रेय सम्मेलन के प्रचार-कार्य को नहीं, तो और किसे है? हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जिन भावनाओं और जिन परिस्थितियों की आवश्यकता थी, उन का जागरण और निर्माण सम्मेलन ने ही किया। बिना सम्मेलन के इन प्रयत्नों के हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा और देवनागरी राष्ट्रलिपि हो सकती है, यह सोचा तक नहीं जा सकता था।

गत तीस वर्षों में हिन्दी में साहित्य-निर्माण की जो प्रगति रही, उस में भी सम्मेलन का कम हाथ नहीं रहा। सम्मेलन ने ही हिन्दी के स्तर को ऊँचा उठाया है। सम्मेलन की ओर से जो भिन्न-भिन्न पुरस्कार लेखकों को दिये जाते हैं, उन से साहित्य-सृजन में कम प्रोत्साहन नहीं मिलता। फिर सम्मेलन की ओर से भी अनेक महत्त्वपूर्ण और सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। सम्मेलन अधिक ग्रन्थों का प्रकाशन इसलिए न कर सका कि वह एक तो अन्य प्रकाशकों के साथ इस दिशा में प्रतिद्वन्द्विता करना नहीं चाहता था, वह केवल ऐसे शास्त्रीय ग्रंथ ही प्रकाशित करने का इच्छुक था, जिन्हें दूसरे प्रकाशक प्रकाशित न कर सकते थे। दूसरे उसे मुद्रण आदि के सम्बन्ध में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अब उसने अपने प्रेस का प्रबन्ध कर लिया है; परन्तु अब भी वह अन्य प्रकाशकों से प्रतिद्वन्द्विता न कर ऐसे ही शास्त्रीय ग्रन्थों को प्रकाशित करेगा, जिन्हें अन्य प्रकाशक प्रकाशित करने में असमर्थ रहेंगे।

जिस संग्रहालय की सम्मेलन ने स्थापना की है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

सब से बड़ी बात यह है कि अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और उस की विविध प्रांतीय शाखा-प्रशाखाओं का जैसा देश-व्यापी संगठन है, वैसा हिन्दी में न तो सम्मेलन की स्थापना से पूर्व कोई संगठन था और न आज है। यह भी स्मरण रहे कि सम्मेलन ने सारा कार्य प्रतिकूल परिस्थितियों में किया है—इसे राजाश्रय प्राप्त न था, वरन् विदेशी सरकार ने सदा उस के कार्यों में बाधक होने का

प्रयत्न किया। उस का सारा कार्य विदेशी राज्य के समय हुआ, जब अंग्रेजी का दौर-दौरा था।

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि

देश के स्वतन्त्र होने तक स्वतन्त्रता हमारा प्रथम लक्ष्य था। इस कार्य के सामने अन्य सारे कार्य गौण थे। देश के स्वतन्त्र होते ही स्वतन्त्र देश के विधान बनाने का प्रश्न हमारे सामने आया। विधान-परिषद् के निर्वाचन के पश्चात् विधान किस भाषा में बने तथा किस लिपि में लिखा जाय, देश को राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि कौन-सी हो, ये प्रश्न किसी-न-किसी रूप में विधान-परिषद् के सामने आते रहे हैं। यद्यपि इन का अन्तिम निर्णय अब तक नहीं हुआ है; पर मैं यह मानता हूं कि बड़े-बड़े विरोधों के रहते हुए भी हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा और देवनागरी ही राष्ट्रलिपि घोषित होगी। एक बात और हो सकती है कि नागरी में लिखी जाने वाली 'भारती' हमारे देश की राष्ट्रभाषा निश्चित की जाय। यदि यह होता है, तो मैं इस का भी स्वागत करता हूं, क्यों कि भारत हमारे देश का प्राचीन नाम है। हिन्द और हिन्दुस्तान नाम तो उसे पीछे से मिला। हिन्द नाम के कारण भाषा का नाम भी हिन्दी हो गया। देश का नाम भारत और भारत देश की भाषा का नाम भारती, यह हमारी परम्परा और संस्कृति के अधिक अनुरूप है। हां, तो मैं आप से कहना चाहता हूँ कि राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का अब तक चाहे निर्णय न हुआ हो, पर हिन्दी या भारती ही हमारी राष्ट्रभाषा और नागरी ही राष्ट्रलिपि होगी। यदि और कुछ हुआ, तो वह स्वाभाविक न होकर अस्वाभाविक होगा और कोई अस्वाभाविक बात स्थायी नहीं हो सकती।

अंग्रेजी इस देश की राष्ट्र-भाषा हो नहीं सकती। लगभग दो सौ वर्षों के अंग्रेजी राज्य के उपरान्त इस देश के कितने प्रतिशत लोग अंग्रेजी जानते हैं? हिन्दुस्तानी कोई भाषा है ही नहीं। उस का न कोई व्याकरण है, न साहित्य। जिस भाषा का अस्तित्व ही नहीं, वह राष्ट्रभाषा कैसे बनायी जा सकती? अंग्रेजी की 'कनसाइज़ आक्सफर्ड डिक्शनरी' में हिन्दुस्तानी को मुग़ल विजेताओं की भाषा कहा है। हिन्दुस्तानी कही जाने वाली भाषा में बाजारों में बोले जाने वाले शब्दों के अतिरिक्त वैज्ञानिक और शास्त्रीय शब्दों का न निर्माण हुआ है और न हो सकता है। साधारण पढ़ाई-लिखाई भी या तो अंग्रेजी भाषा में हो सकती है या हिन्दी में या उर्दू में; हिन्दुस्तानी में नहीं। कुछ अङ्कगणित, भूगोल और रेखागणित के शब्दों को ही लीजिए—

अंग्रेज़ी	हिन्दी	उर्दू
	अङ्कगणित	
Multiplicand	गुण्य	मज़रब
Multiplier	गुणक	मज़रबफी
Product	गुणनफल	हासिल-इ-ज़रब
Divisor	भाजक	मक़सूम इलाह
Dividend	भाज्य	मक़सूम
Quotient	भजनफल	खरफि-इ-किस्वत
L. C. M.	लघुतम समापवर्त्य	ज़ुआजाफ़-इ-अकल
Decimal	दशमलव	आशारिया
	भूगोल	
North, South	उत्तर, दक्षिण	शुमाल, जुनूब
East, West	पूर्व, पश्चिम	मशरिक, मगरिब
Isthumus	डमरूमध्य	खाकनाय
Continent	महाद्वीप	बर्रेआजम
Archipelago	द्वीपसमुदाय	मजमूल उल जज़ायर
	रेखागणित	
Radius	त्रिज्या	निस्फ़कुतुर
Equilateral triangle	समत्रिबाहु त्रिभुज	मुसल्लस मुसाविलुल जिल
Diagonal	कर्ण	वतर
Right-angled Isosceles triangle	समकोण समद्विबाहु त्रिभुज	मुसल्लस मुसाविउस्सा कैन काय मुज्ज़ाविया

झगड़ा हिन्दुस्तानी नाम का नहीं है, झगड़ा है हिन्दुस्तानी नाम में जो अर्थ निहित हो गया है उस का। हिन्दुस्तानी का अर्थ वह भाषा है, जिस में इतने प्रतिशत शब्द संस्कृत, इतने फारसी, इतने अरबी के हों, फिर वह नागरी और अरबी लिपियों में लिखी जाने वाली भाषा है। कुछ महानुभावों का मत है कि भाषा का नाम हिन्दुस्तानी रखा जाय, पर वह एक ही लिपि नागरी में लिखी जाय; किन्तु

भाषा केवल लिखने की न होकर बोलने की भी वस्तु है। यदि नागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा घोषित हो, तो भी उस में कितने प्रतिशत शब्द किस भाषा के रहेंगे, यह प्रश्न उठेगा और रेडियो आदि में जहां भाषा लिखी न जाकर केवल बोली जाती है, सदा एक झगड़ा मचा रहेगा, जैसा आज मचा है।

जो लोग हिन्दुस्तानी का विरोध करते हैं, वे किसी साम्प्रदायिक भावना से ऐसा करते हैं, यह मैं नहीं मानता; वरन् मैं तो यह कहता हूं कि हिन्दुस्तानी का समर्थन न करने वाले उस का समर्थन साम्प्रदायिकता की भावना से करते हैं। जो देश में एक संस्कृति चाहते हैं, वे भला दो लिपियों में लिखी जाने वाली भाषा का समर्थन कैसे करेंगे ?

हिन्दी का राष्ट्रभाषा होना इसलिए स्वाभाविक नहीं है कि वह अन्य प्रान्तीय भाषाओं से श्रेष्ठ है। हम अन्य प्रान्तीय भाषाओं को नीची और हिन्दी को उन से ऊँची नहीं मानते। हिन्दी का राष्ट्रभाषा होना इसलिए स्वाभाविक है कि कुमायूं से लेकर बस्तर तक और जैसलमेर से बिहार के पूर्वीय छोर के अन्तिम ग्राम तक हिन्दी ही लोगों की भाषा है। उसे इस देश की तीस करोड़ में से अठारह करोड़ जनता बोलती और बाइस करोड़ समझती है। संयुक्त प्रान्त, बिहार, महाकोशल, राजस्थान, मध्यभारत, विन्ध्य-प्रदेश, पूर्वी पंजाब, हिमाचल-प्रदेश की भाषा हिन्दी है। दक्षिण भारत में भी उस का प्रचार अत्यन्त शीघ्रता से हो रहा है।

राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाएं

राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी हो जाने का कोई यह अर्थ न समझे कि हम भिन्न-भिन्न प्रांतों की प्रांतीय भाषाओं का गला घोटना चाहते हैं। विदेशी राज्य ने विदेशी भाषा को हमारे देश पर लादकर, उसी को हमारी शिक्षा का माध्यम, हमारी धारा-सभाओं और न्यायालयों की भाषा बनाकर, हम पर जो घोर अत्याचार किया था, ऐसी कोई बात करने की कल्पना तक हम नहीं कर सकते। जिन प्रांतों की भाषा हिन्दी नहीं है ; जैसे—बंगाल, आसाम, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिल, आन्ध्र, कर्नाटक, मलयालम आदि, उन प्रांतों में हम शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा को नहीं बनाना चाहते ; न वहां की धारा सभाओं और न्यायालयों में हम हिन्दी को चलाना चाहते हैं। अहिन्दी प्रांतों की शिक्षा का माध्यम, वहां की धारा-सभाओं और न्यायालयों की भाषा प्रांतीय भाषा ही रहें। हां, केन्द्रीय तथा अन्तर्प्रांतीय सारे कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही होने चाहिए और केन्द्रीय तथा अन्तर्प्रान्तीय सारे कार्य सुचारु रूप से चल सकें, इस के लिए समूचे

भारत में राष्ट्रभाषा की शिक्षा भी अनिवार्य होनी चाहिए। हम इस बात के लिए भी प्रस्तुत हैं कि दक्षिण भारत तथा अहिन्दी प्रांतों के अपने भाइयों के सुविधार्थ केन्द्र में भी हिन्दी के साथ-साथ कुछ समय के लिए अंग्रेजी का अस्तित्व रख लिया जाय। देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए राष्ट्रभाषा और प्रांतीय भाषाओं दोनों का समान महत्त्व है, और दोनों की समान उन्नति आवश्यक है।

राष्ट्रभाषा और अंग्रेजी

अंग्रेजी भाषा से भी हमारी कोई शत्रुता नहीं। देश के बाहर की बातों के ज्ञान तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों के लिए हमें अंग्रेजी का सहारा लेना ही होगा। इन कार्यों के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हम और किसी भाषा का आश्रय नहीं ले सकते।

राष्ट्रभाषा और उर्दू

उर्दू और हिन्दी का कैसा सम्बन्ध रहेगा, इस पर भी कुछ कह देना आवश्यक जान पड़ता है। उर्दू भाषा से भी हमारा कोई द्वेष नहीं। हम उर्दू भाषा और उस के साहित्य का सम्मान करते हैं। वह इस देश में जन्मी और यहीं पनपी है। हम तो उसे हिन्दी की ही एक शैली मानते हैं ; परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यह जन्म लेने और पनपने वाली उर्दू भाषा का साहित्य, मुसलमानों को एक पृथक् समुदाय बनाये रखने में सहायता देता रहा है। उर्दू के साहित्य में हिमालय का वर्णन न होकर कोहकाफ़ का वर्णन होता है। वह साहित्य कोयल के स्थान पर बुलबुल को ही महत्त्व देता है। उस के वीर भीम, अर्जुन न होकर रुस्तम आदि हैं। वह दधीचि और शिवि को छोड़ हातिम की उदारता का वर्णन करता है। हमारे मुसलमान भाइयों के मन में पार्थक्य की भावना है। भारतीय संस्कृति से अलग अपनी संस्कृति को रखने के विचार हैं। उस में सदा उर्दू और उस के साहित्य ने सहायता पहुंचायी है। पार्थक्य की इस भावना ने ही द्विराष्ट्र सिद्धान्त को जन्म दिया, जिस के कारण देश का विभाजन हो गया। भारत में रहने वाले मुसलमान भाई यदि अपने को अन्य भारतीयों से अलग मानेंगे, तो इस देश पर भविष्य में अनेक ऐसी आपत्तियां आ सकती हैं, जिन की आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हिन्दू-धर्म ही सारे भारतीयों का धर्म नहीं है। दो धर्मों को मानने वाले भी एक कुटुम्ब में रहते हैं। पंजाब में एक ही कुटुम्ब में हिन्दू और सिख रहते हैं। राजस्थान में एक ही कुटुम्ब में वैष्णव और जैन रहते हैं। क्या ऐसी स्थिति नहीं आ सकती, जब एक ही कुटुम्ब में एक व्यक्ति हिन्दू और दूसरा मुसलमान रहे? हमारे पड़ोसी देश चीन और रूस में जब यह बात है, तब भारत में क्यों नहीं हो सकती? चीन

और रूस में बौद्ध, ईसाई तथा मुसलमानों के धर्म पृथक्-पृथक् होने पर भी उन की संस्कृति पृथक्-पृथक् नहीं है। उन के नामों तक से इस बात का पता नहीं लगता कि कौन किस धर्म को मानता है। हम चाहते हैं कि पार्थक्य की इस भावना को त्याग, मुसलमान भारतीय संस्कृति को अपना कर इस देश के अन्य निवासियों में घुल-मिल जायें। वे भी हिंदी भाषा को अपना लें। महाराष्ट्र, बङ्गाल, आसाम, उड़ीसा, गुजरात, तमिल, आंध्र, कर्नाटक, मलयालम में रहने वाले मुसलमान इन प्रांतों की भाषाओं को ही बोलते और लिखते हैं। कुछ दिन पहले जब साम्प्रदायिकता का ऐसा दौर-दौरा नहीं था, तब इन प्रांतों के मुसलमानों में उर्दू का प्रचार न था, और हमारे हिंदी-भाषी मध्यप्रांत के मुसलमान हिंदी में ही सारे कार्य करते थे। अधिकांश उर्दू जानते तक न थे। प्राचीन समय में अनेक मुसलमानों ने हिंदी भाषा को अपना कर, उस में उत्तम-से-उत्तम रचनाएं की हैं। कबीर, जायसी, रहीम, रसखान, आदि का नाम हिंदी के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

गत कुछ वर्षों से साम्प्रदायिकता के कारण उर्दू भाषा का एक विशेष प्रकार से प्रसार किया जा रहा है, जैसा मैंने अभी कहा। हम उर्दू के विरोधी नहीं हैं ; पर जिस पार्थक्य की भावना से उर्दू का यह प्रसार हो रहा है, उस का कम-से-कम मैं घोर विरोधी हूँ।

राष्ट्रभाषा का भावी स्वरूप

भाषा के नाम और लिपि के प्रश्न के साथ ही हमारी राष्ट्रभाषा कैसी हो, यह प्रश्न हमारे सामने है। हमारी भाषा ऐसी होनी चाहिए, जो सरल-से-सरल हो, जिसे सहज में सब लोग समझ सकें ; परन्तु जहां एक ओर भाषा की सरलता की ओर हमारा ध्यान रहना चाहिए, वहां दूसरी ओर हमें इस बात पर भी ध्यान रखना होगा कि हमारी भाषा में उपयुक्त शब्दों का प्रयोग हो, जो सूक्ष्म अर्थ का भी यथातथ्य बोध करा सके। वैज्ञानिक और शास्त्रीय ग्रन्थों अथवा लेखों की भाषा बहुत सरल नहीं हो सकती। ललित साहित्य में भी कहानी, उपन्यास, नाटक की भाषा जितनी सरल हो सकती है, उतनी कविता की नहीं। यदि वैज्ञानिक और शास्त्रीय भाषा को हम सरल बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो भाषा में यथातथ्य बोध की शक्ति नहीं आ सकेगी। और यदि कविता में भी अत्यधिक सरलता लायी जायगी, तो भाषा-सौष्ठव नष्ट हो जायगा। हमारी भाषा में जो शब्द बाहरी भाषाओं के आ गये हैं, उन का बहिष्कार हमें नहीं करना है, वरन् हमें तो अन्य भाषाओं के और शब्द भी ग्रहण करने के लिये तैयार रहना चाहिए। आज

जो अंग्रेजी भाषा इतनी उन्नत है, उस का प्रधान कारण यही है कि उसने अपने शब्द-कोश को अन्य भाषाओं के शब्दों से समृद्ध किया है। नारमन लोगों की जीत के समय अंग्रेजी भाषा की क्या स्थिति थी और धीरे-धीरे उस की श्रीवृद्धि कैसे हुई, इसे हम देखें। हाल ही में आयरलैण्ड में गेलिक भाषा का किस प्रकार उत्थान हुआ, इस का अवलोकन करें ; परन्तु इसी के साथ अपनी भाषा के उद्गम और गठन को देखते हुए हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि हम नये शब्दों के निर्माण में प्रधानतया संस्कृत से ही सहायता ले सकते हैं। तमिल के सदृश एक दो प्रांतीय भाषाओं को छोड़, शेष हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओं की जननी संस्कृत ही है। संस्कृत से शब्द लेने पर हम अन्य प्रान्तीय भाषाओं के भी अधिक समीप रह सकेंगे।

संस्कृत की शब्द-सरिता भारतवर्ष की सभी साहित्यिक भाषाओं का पोषण करती है। उस की उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, अभिव्यंजनाओं और सूक्तियों से भारत की प्रत्येक भाषा के ग्रन्थ ओतप्रोत हैं। वही भारत की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक है। उस के शब्द प्रत्येक भाषा में इतने प्राचुर्य से प्रयुक्त हुए हैं कि कभी-कभी दो भारतीय भाषाओं में भेद करना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए विश्व-विख्यात् कवि-सम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "मानसी" नामक पुस्तक से "सूर-दासेर प्रार्थना" शीर्षक कविता लीजिए:—

अपार भुवन, उदार गगन, श्यामल काननतल,
वसन्त अति मुग्ध मूरति, स्वच्छ नदीर जल,
विविधवरण सान्ध्यनीरद ग्रहतारामयी निशि,
विचित्र शोभा शस्य क्षेत्र प्रसारित दूर दिशि।
सुनील गगने घनतर नील अति दूर गिरिमाला,
तारि परपारे रविर उदय कनक-किरण ज्वाला
चकित-तड़ित्, सघन वरषा पूर्ण इन्द्रधनु,
शरत् आकाशे असीम विकास ज्योत्स्ना शुभ्रतनु।

इसे कौन कह सकता है कि यह हिन्दी कविता नहीं। तीन चार स्थलों पर बंगला के प्रत्ययों और विभक्ति-चिह्नों को छोड़ कर केवल उत्तर ही नहीं, दक्षिण भारत भी इसे अपनी काव्य-सम्पत्ति कह सकता है।

प० द्वारकाप्रसादजी मिश्र द्वारा लिखित हिन्दी के महाकाव्य "कृष्णायन" की निम्नलिखित पंक्तियां लीजिए। इन्हें किसी भी भारतीय भाषा में अन्तर्भूत किया जा सकता है—

महिधर-श्रृंग शरीर विराटा,
उत्तमांग पृथु, तुंग ललाटा।
वक्ष शैलहिम-शिला विशाला,
उत्थित वाम हस्त तरु शाला।
कर दक्षिण षट-कोण भयंकर,
गदा उदग्र अशनि-प्रलयंकर।

श्री सुमित्रानन्दन पंत की निम्नलिखित पंक्तियों को कुछ ही विभक्तियों के परिवर्तन से प्रत्येक भारतीय समझ सकता है—

श्रवण गगन में गूज रहे स्वर ॐ क्रतो स्मर कृतं क्रतो स्मर!
सृजन-हुताशन को हवि भस्वर बनी पुनः जीवन रज नश्वर!
दृष्टि दिशा में ज्योति-मूर्त स्वर ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर,
क्रतो स्मर कृतं स्मर!

स्वर्णकिरण, पृष्ठ १४६।

गुजराती के आधुनिक कवि श्री नरसिंहराव भोलानाथ की 'हृदय वीणा" शीर्षक कविता लीजिए—

सुन्दर शिव मंगलगुण गाऊं ईश्वरा
विभुवर भव भय हारक नमुं महेश्वरा।
मधुर कुसुम विशे रमे गंध सुंदरा,
कौमुदी मुदप्रदा, उषा मनोहरा,
मृदुलकण्ठ कोकिलरव श्रवणसुखकरा।

ये पंक्तियाँ किसी भी भारतीय भाषा के कवि की हृदय-वीणा की झंकार हो सकती हैं।

सुदूर उड़ीसा प्रदेश की कविता भी इसी सांस्कृतिक और भाषा-ऐक्य की घोषणा करती है। उदाहरणार्थ—सुप्रसिद्ध कवि मधुसूदन राव की "भारत भावना" लीजिए—

एहि कि से पुण्य भूमि भुवन-विदित,
सविस्तीर्ण रङ्गभूमि आर्य-गौरवार?
एहि कि भारत, यार महिमा संगीत-
गंभीर-झंकारे पूर्ण दिग-दिगन्तर?
एहि कि से सुमनोज्ञ आशा-सरोवर,

यार ज्ञानामृत-पाने कृतार्थ धरणी ?
यार तेज विभासित देश-देशान्तर ?

दक्षिण में तमिल भाषी कहते हैं, उन की भाषा में संस्कृत के शब्द नहीं। उन का यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तुत तमिल भाषा के सब से बड़े कोश 'तमिल लैक्सीकन' पर दृष्टपात करने से यह विदित हो जायगा कि तमिल की ५० प्रतिशत शब्दावली संस्कृत की है। महा शब्द से आरम्भ होने वाले शब्दों की ही संख्या आश्चर्यजनक है—

महाकच्छम्, महागदम् (=ज्वर), महागति, महाकन्द (=लशुन), महा-कपित्थ, महाखर्व, महाकवम् (=महाकवि), महाकल्पम्, महाहवम्, महाहासम् (=अट्टहास), महाकायम् (=हाथी), महाग्रीवम् (=ऊंट), महाच्छायम् (=बड़ का वृक्ष), महाज्वालम् (=यज्ञ की अग्नि) महासंधम् महाशंखम्, महा-जम्बु, महाशयम् (=समुद्र) महाजनम्, महाशाखा, महामुखम्, महाश्वासरोगम्, महाश्वेतम्, महाशृंग्न्, महात्यागम्, महात्मा, महादन्त (=हाथी), महाधनम्, (=१ सोना २ कृषि), महाधातु (=सोना), महाद्रुम (=पीपल), महातेजम् (=पारा), महानागम्, महानिद्रा (=मृत्यु), महानिधि, महानिम्बम्, महानीलम् आदि आदि।

केवल भारत ही नहीं, सिंहल, स्याम आदि देशों की भाषाएँ भी संस्कृत से अनुप्राणित हैं। उन की कविता, धार्मिक विचारधारा, प्रशासन की शब्दावली, वैज्ञानिक पदावली आद्योपान्त संस्कृतमय है। हम सिंहली (लंका की भाषा) से भी सामान्य जीवन के कुछ शब्द उदाहरण के लिये लेंगे। जहां पर भेद है, वहां अभिवारों में अर्थ दिया गया है। लोह (=धातु) गंगा (=नदी), वृकया, (=भेडिया), मध्यरात्रिय, विनाड़ी (=मिनिट), मोहोत (=मुहूर्त, सैकंड), वसंत, देवस्थानय (=ईसाई गिरजाघर), संज्ञाकणुव (साइनपोस्ट), पाठशालाव, नागरिकशालाव (टाउनहाल), शरीरस्थति (=स्वास्थ्य), शल्यवैद्य।

लंका में सारे वैज्ञानिक शब्द संस्कृत से निर्मित किये जाते हैं—

तूर्यभाण्डय	पियानो
यन्त्रकारया	एंजीनियर
मुद्रांकणकारया	मुद्रक
रथचक्र	बाइसिकिल
रथचक्रसादना	बाइसिकिल बनाने वाला
गणन-पत्रय	बिल
आय-व्यय-लेखनय	औसत-पत्रक

सीमासहित समागम	लिमिटेड कम्पनी
धूमनाव	स्टीमर
उपद्रवारक्षक पत्रय	इंश्योरेंस पालिसी
दूरशब्दनयन्त्रय	टैलीफोन

लङ्का में ग्रन्थों के नाम भी संस्कृतमय है—

अरबी निशोल्लासव (Arabian Nights) सहस्र रजनी चरित्र, "आरोग्य दर्पण्य" लेखक गुणवर्धन, १९२१ में प्रकाशित "देहलक्षण विधाव", गुणवर्धन लिखित "धनोपायनक्रम" (१९१६), "गद्यविनिश्चय" (१९२७); रणसिंह रचित "गणित-शास्त्रय", १९२६ में मुद्रित 'ज्योतिषकथोपकथनय" १९१४ में प्रकाशित "महामारी रोग विभागय" आदि इसी शताब्दी की रचनाएँ हैं।

इसी प्रकार स्याम देश में भी शब्दावली संस्कृतनिष्ठ हैं। कथा, कदाचार, कदाहार (=हानिकर भोजन), कनिष्ठ भगिनी, कन्यकापति (=जामाता), कपटलेख आदि वहां के सामान्य शब्द हैं। प्रशासन सम्बन्धी शब्द लीजिए—

कर्म जलप्रदान	सिंचाई विभाग
कर्म लोहकृत्य	खान विभाग
कर्म धर्मकार	धार्मिक विभाग
कर्म नगरादर	नगर-शासन विभाग

नीचे मैं अर्थ सहित कुछ शब्दों की सूची देता हूँ, जिस से ज्ञात हो जायगा कि संस्कृतनिष्ठ शब्दावली ही समस्त भारत, स्याम, सिंहल, डच हिंदेशिया आदि को पुनः प्रेम की शृंखला में बाँध सकेगी।

स्यामी शब्द	अर्थ
कर्मकार परिषद	कम्पनी का डायरेक्टर
कर्मवाचा	कर्मवाच्य
कर्मशूर	चतुर काम करनेवाला
कर्मसंपादिका सभा	कार्यकारिणी सभा
कर्मसार्थी	साथ में काम करने वाला
त्रिकोण	त्रिकोण
त्रिकोणमिति	त्रिकोणमिति
बीजगणित	बीजगणित
रेखागणित	रेखागणित
पाटीगणित	अंकगणित

ओष्ठज	ओष्ठ्य वर्ण
ओघ	जल का ओघ
एकचक्षु	काणा
एकमय	समरूपता
एकराज	राजा
एकसार	आवश्यक पत्र
एकवचन	एकवचन
उपराज	वाइसराय
उपचक्षु	चश्मा

अन्तिम शब्द ध्यान देने योग्य हैं। श्याम का "उपचक्षु" बतलाता है कि यदि हम संस्कृत से ही सामान्य शब्द लेंगे, तभी भारत की सांस्कृतिक एकता स्थिर रह सकेगी।

राष्ट्रलिपि

हमारी देवनागरी इस देश की ही नहीं, समस्त संसार की लिपियों में सब से अधिक वैज्ञानिक लिपि है। हमारी लिपि स्वरों और व्यंजनों का जैसा वैज्ञानिक पृथक्करण है, वैसा अन्य लिपियों में नहीं। 'अ' का उच्चारण हर स्थान पर 'अ' ही होगा और 'इ' का 'इ' ही; 'क' यदि कहीं लिखा जायगा तो वह 'क' ही पढ़ा जायगा और कुछ नहीं। अंग्रेजी में जिस प्रकार 'बी यू टी' बट का 'यू' 'अ' पढ़ा जाता है और 'पी यू टी' पुट का 'यू' 'उ' वैसा हमारी लिपि में नहीं होता। हमारी लिपि में लिखे जाने वाले शब्दों के वर्णविन्यास में भी कोई कठिनाई नहीं पड़ती। अंग्रेजी शब्दों में जिस प्रकार मूक (साइलेन्ट) अक्षर रहते हैं, वैसे हमारे यहां नहीं। उर्दू में अक्षरों को मिलाकर लिखने और नुक़्तों के कारण उसके पढ़ने में जो अड़चनें आती हैं, वे हमारी लिपि में नहीं। हर विषय की शिक्षा हमारी लिपि के द्वारा जितनी सुगमता से दी जा सकती है उतनी अन्य किसी लिपि के द्वारा नहीं। फिर हमारी लिपि संस्कृत लिपि होने के कारण अन्य प्रांतीय भाषाओं की लिपि के जितने सन्निकट हैं, उतनी अन्य कोई लिपि नहीं। मराठी में तो इसी लिपि का उपयोग होता है, गुजराती लिपि और हिन्दी लिपि में भी अधिक अन्तर नहीं और बंगला लिपि के भी अधिकांश अक्षर नागरी लिपि से मिलते जुलते हैं। इतना ही नहीं, वर्मा, सिंहल, मलाया, श्याम, हिन्देशिया और हिन्द चीन आदि की वर्णमालाएँ भी प्रायः हमारी वर्णमाला के ही समान है। फिर भी आधुनिक यन्त्रकाल में उस में थोड़े-बहुत सुधारों की आवश्यकता है। विशेषज्ञों की राय से हमें इन सुधारों को अवश्य स्वीकार कर

लेना चाहिए। इस दिशा में हम संकुचित वृत्ति न रखें। हमारी भाषा और साहित्य में निर्माण का कार्य हमें तेजी से अवश्य चलाना है, और जीवित भाषा में भाषा के लिए स्वच्छन्दता की भी आवश्यकता है। स्वच्छदन्ता में बंधन अखरते हैं, तथापि कुछ-न-कुछ नियंत्रण भी आवश्यक होते हैं। इस क्षेत्र में हमें बहुत सूक्ष्म अनुसंधान की ओर तो न जाना चाहिए, किंतु भाषा के रूप के संबंध में विद्वानों को एकत्रित होकर, कुछ-न-कुछ निश्चय कर लेना आवश्यक है। दृष्टान्त के लिए किस स्थान पर 'यी' और किस स्थान पर 'ई' कहां 'ये' और कहां 'ए' का उपयोग हो, इस का निश्चय होना है। इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रयोग अभी अनिश्चित हैं। श्री रामचन्द्र वर्मा ने इस विषय पर 'अच्छी हिन्दी' और श्री किशोरीदास वाजपेयी ने 'लेखन कला' पुस्तक लिखी है, पर इसे मैं आरम्भ मात्र मानता हूं। इस विषय में विद्वानों की एक समिति का आयोजन होना चाहिए।

छपाई, टाइप राइटर, तार आदि के लिए लिपि में सुधारों की और अधिक आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में गत वर्ष सम्मेलन के सभापति पद से दिये गये अपने भाषण में महापण्डित राहुलजी ने जो कुछ कहा था, उसे हमें कार्य-रूप में परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

निर्माण के कार्य में साहित्य का स्थान

देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि के प्रश्न के अतिरिक्त हमारे सामने देश के निर्माण-कार्य में साहित्य के निर्माण का प्रश्न उपस्थित होता है। यहां साहित्य शब्द को मैं अत्यन्त व्यापक अर्थ में लेता हूँ। अंग्रेजी के 'लिट्रेचर' शब्द से साहित्य शब्द का पूरा अर्थ नहीं निकलता। जिस प्रकार अंग्रेजी का 'रिलीजन' शब्द धर्म का पूरा अर्थ नहीं करता, उसी प्रकार अंग्रेजी का लिट्रेचर शब्द हमारे साहित्य शब्द का नहीं। जैसे हमारे 'धर्म' शब्द में जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातों का समावेश हो जाता है, वैसे ही साहित्य शब्द के अन्तर्गत इतिहास, ज्योतिष, विज्ञान काव्य सब कुछ आ जाते हैं। मनुष्य और पशु का सब से प्रधान अन्तर दोनों की भाषा द्वारा प्रकट होता है। पशु जिस भाषा में बोलता है, मानव नहीं। और बर्बर मानव की जैसी भाषा होती है, सभ्य मानव की नहीं। सभ्य मानव ही साहित्य का सृजन कर सकता है और इस सृजन का साधन भाषा रहती है। विदेशियों ने विदेशी राज्य के साथ विदेशी भाषा भी हम पर लादी थी। हम सभ्य थे, हमारी भाषा थी, अतः वे अपने काम में पूर्णतया सफल तो नहीं हुए; पर विदेशी राज्य तथा विदेशी भाषा के बोझ ने हमें संसार की सभ्यता की दौड़ में पीछे अवश्य रख दिया। साहित्य-सृजन में भी पीछे रहने का यही प्रधान कारण है। समृद्ध देश के लिए समृद्ध साहित्य

अनिवार्य है। हमारा देश प्राचीनतम देशों में से है। उस का पुराना इतिहास है, संस्कृति है, सभ्यता है, सभी कुछ है ; और यह सब हमें अपने प्राचीन साहित्य में मिलता है, जिस का सृजन हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी में भी हुआ है। परन्तु देश के सारे कार्य चलाने के लिए न हमारे पास पूरा साहित्य है और न उस साहित्य-सृजन के लिए उपयुक्त शब्दावली। हमें एक ओर यह साहित्य-सृजन करना है और दूसरी ओर नयी शब्दावली गढ़नी है।

गत तीस वर्षों में हिंदी में साहित्य का यथेष्ट सर्जन हुआ है। इतने कम समय में कदाचित् किसी भारतीय भाषा में इतना सृजन नहीं हुआ, जितना कि हिंदी में। अभी तक कुछ लोग समझते हैं कि हिंदी में साहित्य नहीं के बराबर है। अहिंदी प्रांतों के रहने वाले ही यह समझते हों और इस का प्रचार करते हों, यह बात नहीं; हिंदी-भाषा-भाषी भी अनेक बार इसे स्वीकार कर लेते हैं। ये लोग द्वेष-भाव से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं, यह मेरा अभिप्राय नहीं है, अधिकतर भ्रमवश ही ऐसा हो रहा है। तीस-पैंतीस वर्ष पहले हमारे साहित्य के लिए जो कहा जाता था, आज भी प्रायः वही कहा जाता है। इस बीच हिंदी साहित्य कहां से कहां पहुँच गया है, इस का हमारे अधिकाश भाइयों को ज्ञान नहीं है। अहिंदी भाषियों को तो बिलकुल ही नहीं। इस भ्रम का निवारण अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में मैं एक सुझाव रखना चाहता हूं। हमारे देश की राजधानी दिल्ली और हमारे समस्त प्रांतों की राजधानियों तथा अन्य मुख्य नगरों में सम्मेलन द्वारा प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाना चाहिए। इन प्रदर्शनियों में हिंदी की चुनी हुई मौलिक तथा अनूदित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि का सङ्कलन हो। प्रकाशकों और ग्राहकों आदि के आंकड़े भी प्रदर्शित किये जायं। बड़े-बड़े पुस्तकालयों के सूचीपत्रों, खोज की रिपोर्टों; जैसे—लाला सीताराम की 'सरवे कमेटी की रिपोर्ट' डाक्टर माताप्रसाद गुप्त की 'पुस्तक-जगत्' आदि का प्रदर्शन हो। इन प्रदर्शनियों में इन्हीं विषयों पर भाषण, प्रचार आदि विविध कार्यक्रमों की भी व्यवस्था की जाय।

नव शब्द-निर्माण का कार्य कई स्थानों पर चल रहा है। जहां तक मुझे मालूम है, इस दिशा में नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, कलकत्ता और मद्रास के विश्वविद्यालय, बंगीय साहित्य-परिषद्, मराठी साहित्य परिषद् और मध्यप्रांतीय सरकार द्वारा विशेष प्रयत्न हो रहे हैं। यदि इस दिशा में काम करने वाले समस्त विद्वानों और संस्थाओं की सूची बनायी जाय, तो कदाचित् वह बहुत बढ़ जायगी। यह एक विचारणीय विषय है कि पुनरावृत्तियों को रोकने के लिए इस दिशा में केन्द्रीयकरण उचित होगा अथवा अभी यह सब कार्य पृथक्-पृथक् ही चलने दिया जाय और जब यह यथेष्ट हो चुके, तब इसे संयोजित कर इसका सार-भाग

ग्रहण कर लिया जाय। दोनों बातें ही हो सकती हैं। पृथक्-पृथक् कार्य यदि अभी चलने भी दिया जाय और यदि पुनरावृत्तियां भी हो जाएं, तो भी मुझे विशेष हानि नहीं दिखती, क्यों कि इस में कुछ अधिक आर्थिक व्यय के अतिरिक्त और क्या हानि होगी ? भिन्न-भिन्न विद्वान्, शब्दों के भिन्न-भिन्न रूप हमारे सामने रखेंगे और अन्त में सब कृतियों की काट-छांट होकर सभी विषयों पर सुन्दर, प्रामाणिक शब्दावली हमारे सामने आ जायगी। इस शब्दावली का अन्तिम स्वरूप निर्णय करने के लिए केन्द्रीय सरकार और अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी। ये परिभाषिक शब्द सब प्रांतीय भाषाओं के विद्वानों के सहयोग से समस्त प्रांतीय भाषाओं के लिए समान हो सकते हैं ; परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि यदि हम इन पारिभाषिक शब्दों को समस्त भारतीय भाषाओं के लिए उपयुक्त बनाना चाहेंगे, तो इन में से अधिकांश हमें संस्कृत से ही लेने होंगे। यदि इन का स्रोत संस्कृत रहा, तो भारत के अतिरिक्त बर्मा, सिंहल, स्याम आदि बृहत्तर भारत के देशों में भी इन शब्दों का प्रयोग हो सकेगा और इस प्रकार एशिया के देश एक दूसरे के अधिक समीप आ सकेंगे। अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वानों का मत है कि वैज्ञानिक शब्दावली अंग्रेजी से लेनी चाहिए। यदि २००-४०० शब्द होते, तो इसमें भी हमें कोई आपत्ति न होती, किन्तु वैज्ञानिक शब्दों की संख्या लाखों है, और वैज्ञानिक शब्दों का परस्पर इतना गहरा सम्बन्ध है कि यदि हम एक शब्द अंग्रेजी से लेते हैं, तो उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले सैकड़ों शब्द हमें वहीं से लेने पड़ते हैं।

उदाहरण के लिए एक शब्द फास्फरस ही लीजिए—

Phos-Phosphagen Phospham, Phosphamide, Phosphatase, Phosphate, Phosphated, Phosphatemia, Phosphate rock, Phosphatese, Phosphatic, Phosphatide, Phosphatization; Phosphatize, Phosphato, Phosphazo; Phosphene, Phosphenyl, Phosphide, Phosphinate, Phosphine, Phosphine oxide, Phosphinic, Phosphite, Phosphor, Phosphoaminolipide, Phosphocarnic acid, Phosphocreatine, Phospoferrite, Phosphomolybdic, Phosholipide, Phosphomolybdate, Phosphoglycerate, Phoshonic, Phosphonium, Phosphophyllite, Phosph. oprotein, Phosphor, Phosphorate, Phosphorate oil; Phosphor bronze, Phosphoreal, Phosphoresce, Phosphorescence, Phosphorescent, Phosphoreted, Phosphoreted hydrogen, Phosphohidrosis, Phosphoric, Phosphoric acid, Phosphorical ,Phospho-

riferous, Phosphorism, Phosphorite, Phosphorize, Phosphorogen, Phosphorogenic, Phosphorograph, Phospho rographic, Phospho rography, Phosphoroscope, Phosphorous, Phosphorous, acid, Phosphorous nhydride or oxide, Phosphoruria, Phosphorus, Phosphorus chloride, Phosphorus disease, Phosphorus oxide, Phosphorus pentachloride, Phosphorus sulphide, Phosphorus sesquisulphide, Phosphorus trichloride, Phosphoryl, Phosphorylation, Phosphoryl chloride, Phosphosilicate, Phosphotartaric Phosphotungstic, Phosphuranylite, Phosphuria, Phosphyl, Phossy, Phossyjiaw.

यह काम लम्बा, जटिल और कष्टसाध्य है। कहां-कहां क्या-क्या हो रहा है, इस का ब्यौरेवार वृत्त मुझे ज्ञात नहीं। हां, दो स्थानों पर क्या हो रहा है, यह मैं जानता हूं। महापण्डित राहुलजी ने अभी हाल ही में सम्मेलन से सोलह सहस्र शासन-शब्दों का एक कोश प्रकाशित कराया है। सन् १९४९ के अन्त तक सभी विषयों के लगभग एक लाख शब्द राहुलजी तैयार करनेवाले हैं। हमारी मध्यप्रांतीय सरकार ने सन् १९४६ में ही डा० रघुवीरजी की अध्यक्षता में यह कार्य आरम्भ कर दिया था। ५० के लगभग विद्वान् इसमें संलग्न है, और केवल शब्दावली ही नहीं, किन्तु ग्रन्थ-निर्माण भी हिन्दी और मराठी भाषाओं में हो रहा है। हमें आशा है कि अगले ५-६ मास में विश्वविद्यालय के सभी पाठ्य-ग्रन्थ प्रकाशित होकर विद्यार्थियों के सामने आ जायेंगे। रसायन, भौतिक, वनस्पति तथा प्राणिशास्त्रों और गणित के लगभग ३० ग्रन्थ अब तक बन चुके हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों की शब्दावली भी तैयार है। हमारे प्रांत के सभी वाणिज्य-महाविद्यालयों में हिन्दी और मराठी द्वारा शिक्षण हो रहा है। रेल, मोटर, तार, शासन, पाश्चात्य आयुर्वेद आदि के डेढ़ लाख शब्दों का निर्माण हो चुका है। जो काम मध्य प्रांतीय शासन के अधीन रहा है, उस में विशेषता यह है कि आरम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च गवेषण तक के सभी शब्द प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

साहित्य के दो विभाग

साहित्य के निर्माण की ओर यदि हम दृष्टिपात करें और साहित्य शब्द को व्यापक-से-व्यापक अर्थ में भी लें, तो साहित्य-निर्माण को दो भागों में बांटा जा सकता है—एक शास्त्रीय साहित्य, जिस के अन्तर्गत वैज्ञानिक-साहित्य भी आ जाता है और दूसरा ललित साहित्य। प्रथम प्रकार के साहित्य में विज्ञान, दर्शन, इतिहास, ज्यो-

तिष आदि शास्त्रों का समावेश होता है। हमारे यहां इस प्रकार के साहित्य की घोर कमी है, यहां तक कि हमारा कोई प्रामाणिक इतिहास तक आज उपलब्ध नहीं है। विदेशी विद्वानों ने हमारे प्राचीन इतिहास की कुछ खोज अवश्य की है। मौर्यवंश से लेकर गुप्तवंश तक हमारे प्राचीन इतिहास के अनेक अंश सामने आये हैं; परन्तु अब तक इस काल का भी कोई शृंखलाबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। विक्रमीय संवत् जिस विक्रमादित्य के नाम से चलता है, उस का भी हमें पता नहीं है। फिर विदेशियों ने एक ओर यदि हमारे इतिहास का पता लगाने का प्रयत्न कर हम पर उपकार किया है, तो दूसरी ओर हमारे ही इतिहास में स्थान-स्थान पर हमें छोटा दिखाने का यत्न कर हमारा अपकार भी कम नहीं किया। दृष्टान्त के लिये, अब तक यह माना जाता था, और अभी तक अधिकांश विद्वान् यही समझते हैं, कि सिकन्दर हमारे देश से जीतकर लौटा था ; परन्तु हाल ही में कुछ वर्ष पूर्व मेरे मध्य-प्रांत के अमरावती कालेज के प्रोफेसर डा० हरिश्चन्द्र सेठ ने यूनानी इतिहास के लेखों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि सिकन्दर की यहां जीत नहीं, हार हुई थी। हमारे देश के अधिकांश इतिहास का एक तो अभी तक पूरा पता ही नहीं लगा और जितने इतिहास का पता भी लगा है, उस में भी बहुत-सा विकृत रूप से उपस्थित किया गया है।

साहित्य के ललित विभाग में इन वर्षों में यथेष्ट सृजन हुआ है। ललित साहित्य का कार्य केवल आनन्द देना है या शिक्षा भी—यह एक विवाद-ग्रस्त विषय रहा है। अंग्रेजी में 'आर्ट फार आर्ट्स सेक'—'कला कला के लिए ही है' यह एक बड़ा पुराना सिद्धान्त है। इस सम्बन्ध में फ्रांस के प्रसिद्ध साहित्यकार रोमां रोलाँ ने जो कुछ अपने उपन्यास 'जान क्रिस्तोफर' में कहा है, वह कुछ लम्बा होने पर भी मैं यहां उद्धृत करना चाहता हूं। वे कहते हैं—

"कला के लिए कला ! क्या ही अच्छा धर्म है ; परन्तु यह धर्म तो बलवानों का है। कला ! जीवन को वैसे ही जकड़कर पकड़ना, जैसे गरुड़ अपने आखेट को पकड़ता है, उसे लेकर ऊपर उठना, गगन मण्डल की अखण्ड शांति में उसे लेकर उड़ जाना। इसके लिए तुम्हें सुदृढ़ पंजों, महान् पंखों और बलवान हृदय की आवश्यकता है। कला का अर्थ है—नियंत्रित, संयमित, मर्यादित जीवन। कला जीवन की सम्राज्ञी है। तुम साधारण अभिनेता हो, परन्तु इतने कुशल अभिनेता भी नहीं कि अपने अभिनय में अपने को भी भूल सको। जिस प्रकार ये अभिनेता अपनी शारीरिक त्रुटियों तथा दोषों के द्वारा पैसा पैदा करते हैं, उसी प्रकार तुम भी अपनी मानसिक तथा आत्मिक त्रुटियों से लाभ उठाते हो। तुम अपनी तथा जनता की कुरूपता का उपयोग कर साहित्य का निर्माण करते हो। तुम्हारे उपदेश के मूल में ही मृत्यु है।

कला तो जीवन का स्रोत है ; परन्तु तुम्हारे, सब से अधिक ईमानदार समझे जाने वाले लेखक तक इतने कायर हैं कि उन की आंखों की पट्टी खुल जाने पर भी वे न देख सकने का बहाना करते हैं। वे धृष्टतापूर्वक कहते हैं—'हां, कला के लिए कला का सिद्धान्त भयानक है, विषैला है, परन्तु उसमें बुद्धि है, प्रतिमा है।' वाह ! कितना विचित्र तर्क है, मानों किसी गुण्डे को दण्ड देते हुए न्यायाधीश कहे कि 'यह पापी अवश्य है ; परन्तु इसमें बड़ी बुद्धि है, बड़ी प्रतिभा है।'

रोमां रोलां महोदय के कथनानुसार ललित साहित्य के निर्माताओं को कितना ऊंचा उठना आवश्यक है, यह कहना निरर्थक है ; साथ ही ऐसा साहित्य प्रत्यक्ष में उपदेश न देते हुए भी मानव-मन को किस ओर किस प्रकार ले जायगा, यह भी कहना अनावश्यक प्रतीत होता है।

नाटक और रंगमंच

ललित साहित्य में नाटक का सर्वश्रेष्ठ स्थान है, यह सारे संसार के साहित्यज्ञ मानते हैं। इसके कई कारण हैं—पहला कारण तो यही है कि जहां अन्य ललित साहित्य केवल श्रवणेन्द्रिय द्वारा आनन्द देता है, वहां नाटक श्रवणेन्द्रिय और दृश्येन्द्रिय दोनों के द्वारा आनन्द देता है। दूसरे, नाटक में अनेक ललित कलाओं का एक स्थान पर समावेश होता है। हिन्दी में भारतेन्दु के पश्चात् बहुत समय तक नाटकों की बड़ी कमी रही ; परन्तु इधर कुछ लेखकों ने नाटक लिखे हैं। नाटक-रचना तब तक पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती, जब तक रंगमंच की उचित व्यवस्था न हो। अच्छे रंगमंच हमारे निर्माण कार्य में अत्यधिक सहायता दे सकते हैं। इस सम्बन्ध में रूस का उदाहरण हमारे सामने है। इस दृष्टि से यह युग 'सिनेमा युग' कहा जाता है, परन्तु अमेरिका में जहां 'हालीवुड' के महान् सिनेमा-स्टूडिओ हैं, वहां भी नाटक का पुनरुत्थान हो रहा है। चित्र प्रत्यक्ष का स्थान सदा के लिए नहीं ले सकते। नाटक की अपनी विशेषता है, जो सिनेमा को प्राप्त नहीं हो सकती। मेरे मतानुसार हिन्दी में रंगमच एक राष्ट्रीय आवश्यकता है।

सिनेमा

सिनेमा का स्तर भी हमारे देश में उन्नत होने के स्थान पर अवनत होता जा रहा है। इसी देश में किसी समय चण्डीदास, देवदास, अमृत-मंथन, अमर-ज्योति, पुकार इत्यादि के सदृश चित्रपट निकले, परन्तु इधर ऐसे चित्र पटों का निर्माण प्रायः बन्द-सा हो गया है। चित्रपटों में अश्लीलता भी बढ़ती जाती है। मैं इस राय से बिलकुल सहमत नहीं कि यहां की जनता ही अच्छे चित्र नहीं देखना चाहती। जिन अच्छे

चित्रपटों का मैंने उल्लेख किया है, वे अत्यन्त लोक-प्रिय चित्र भी थे। नाटक के सदृश सिनेमा का भी राष्ट्र-निर्माण में बहुत बड़ा हाथ हो सकता है। सरकारी सेंसर को इस दिशा में बहुत अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। अनेक देशों में शिक्षा-सम्बन्धी चलचित्रों के निर्माण की कई संस्थाएं हैं। हमें भी इस देश में ऐसी संस्थाएं चाहिए।

रेडिओ

रेडिओ को भी आज बहुत बड़ा स्थान प्राप्त हो गया है। रेडिओ द्वारा अनंत ज्ञान का प्रसार किया जा सकता है। रेडिओ की आवश्यकता नगरों की अपेक्षा गांवों में अधिक है, क्यों कि वहां के निवासियों में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत कम है और ऐसे लोगों की ज्ञान-वृद्धि जितनी शीघ्र रेडिओ से हो सकती है, अन्य किसी वस्तु से नहीं। भारत में केन्द्र में ही नहीं, अधिकांश प्रान्तों में भी प्रान्तीय ब्राडकास्टिंग स्टेशन खुल गये हैं; परन्तु इन स्टेशनों से जो कुछ प्रसारित किया जाता है, उस की सामग्री और भाषा दोनों ही दोषों से ओतप्रोत है। भाषा की दृष्टि से तो रेडिओ का बहुत समय तक सम्मेलन ने बहिष्कार तक किया था। जिस समय सम्मेलन ने रेडिओ का बहिष्कार कर रखा था, उस समय में और आज में बड़ा अन्तर हो गया है। अब देश स्वतन्त्र है। पाकिस्तान की स्थापना हो गयी है; पर इतने पर भी आज भी रेडिओ का सारा वातावरण अराष्ट्रीय है। रेडिओ के तीन प्रधान विभाग हैं—

(१) गृह विभाग (होम-सर्विस)

(२) समाचार-विभाग (सेन्ट्रल न्यूज़ ऑरगानाइजेशन)

(३) विदेशी विभाग (एक्सटर्नल सर्विसेज)

प्रथम विभाग भारतवासियों के लिये है, दूसरे का सम्बन्ध समाचारों से है और तीसरे विभाग द्वारा विदेशों में भारत से सम्बन्ध रखने वाली बातों का प्रचार किया जाता है। जो भारतीय भारत के बाहर उपनिवेशों में निवास करते हैं, उन से सम्पर्क स्थापित रखने का कार्य भी यह तीसरा विभाग ही करता है।

तीनों विभागों का संचालन ऐसे लोगों के हाथ में है, जिन में अधिकांश को न भारतीय संस्कृति का ज्ञान है और न हमारी भाषा का। रेडिओ के इस अवस्था में रहने के अनेक कारण हैं, जिन में निम्नलिखित मुख्य हैं—

(१) हमारी राष्ट्रीय सरकार होने पर सरकार का ध्यान अब तक रेडिओ की ओर नहीं गया। मंत्रियों के भाषणों को छोड़ कर अन्य कौन-सा प्रचार रेडिओ द्वारा किया जाता है, इस ओर सरकार का कोई लक्ष्य नहीं।

(२) बुखारी साहब और उन के कुछ साथियों के चले जाने पर भी, अभी तक रेडिओ पर बुखारी-समूह का ही अधिकार है।

(३) नये कर्मचारियों की नियुक्तियों में भी भारतीय संस्कृति के जानकारों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है, क्यों कि इन नियुक्तियों को करने वाले अधिकारियों में भारतीय संस्कृति को जाननेवाले व्यक्ति ही नहीं हैं।

(४) "रेडिओ-हिन्दी-परामर्श-समिति" के एक भी सुझाव को कार्यरूप में परिणत नहीं किया जाता।

इसके निम्नलिखित फल हुए हैं—

(१) रेडिओ द्वारा किसी भी प्रकार का भारतीय सांस्कृतिक-प्रचार नहीं होता।

(२) रेडिओ द्वारा जो रूपक तथा नाटक प्रसारित किये जाते हैं, उन में आज भी अधिकांश ऐसे होते हैं, जो सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक धरातल की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं कहे जा सकते।

(३) रद्दी और टुच्चे फिल्मी गाने गाये जाते हैं, जो लोक-रुचि को दूषित करते हैं।

(४) इस प्रकार के कार्यक्रम विदेशों में भी भारत को नीचा दिखाते हैं।

भाषा की दृष्टि से भी रेडिओ अत्यधिक दूषित है। कुछ समय पूर्व भाषा में थोड़ा-बहुत सुधार हुआ था, पर अब फिर इस में परिवर्तन हुआ है। इस का मुख्य कारण कदाचित् उर्दू पत्रों का प्रचार है। यह प्रचार किस प्रकार किया जा रहा है, इस सम्बन्ध में मैं यहां एक दृष्टान्त देना चाहता हूं। 'तन्वीर' नामक उर्दू का एक दैनिक पत्र लखनऊ से निकलता है। उर्दू-जगत में इस पत्र की यथेष्ठ प्रतिष्ठा है। ता० १४ अक्टूबर सन् १९४८ के अपने अङ्क में 'आखिर यह कौन-सी जबान है' शीर्षक अग्रलेख में इस पत्र ने जो कुछ लिखा है, वह ध्यान देने योग्य है। वह लिखता है—

"रेडिओ की ज़बान में बाज अलफ़ाज़ तो रायजुल वक्त अलफ़ाज़ के मुकाबले में इतने भोंडे और लचर होते हैं कि बेखबरी में बाज औकात यह मालूम होता है कि कोई गाली दे रहा है, जो खबरों में शामिल हो गयी हैं।"

इस प्रकार के अलफ़ाजों की इसी लेख में एक लम्बी सूची दी गयी है। इस सूची के कुछ शब्दों को देखिए—

'आयु, सहायता, वर्ष, चर्चा, अधिकार, विरोध, शनिवार, उचित उपाय, अधिकारी, न्याय, शिक्षा, निश्चय, स्वीकार, इतिहास, शासन, सम्बन्ध , समय, घटना-पद की शपथ लेना, समाप्त।'

ये शब्द भोंडे और लचर तथा गालियों से प्रतीत होते हैं!

पत्र सिफारिश करता है—"अगर हिन्दुस्तानी के लफ्ज का इस्तेमाल रखना ही चाहते हैं, तो हिन्दुस्तानी ही जबान भी इस्तेमाल करनी पड़ेगी, जो तक्सीम से पहले होती रही है। अगर वो इस पर तुले हुए हैं कि हिन्दुस्तानी का लफ्ज भी इस्तेमाल करते रहें और इस्तेमाल इसी जबान को करते रहें, तो उर्दू की खबरें किसी दूसरे वक्त में सुनानी शुरू कर दें ताकि मुल्क की अक्सरीयत जिस जबान को समझ सकती है और शरीफ लोगों की मजलिश में समझी और बोली जाती है, उस को भी आगे बढ़ने का मौका मिले।"

यह है भारत की अक्सरीयत और शरीफ़ लोगों की मजलिश में बोली जाने वाली जबान! धन्य है!

रेडियो सदृश देश और विदेश में प्रचार के सब से बड़े साधन की ओर हमें और हमारी सरकार को ध्यान देना ही होगा। छोटे-मोटे सुधार से यहां काम न चलेगा; इस विभाग में तो पूर्ण क्रान्ति आवश्यक है।

पत्र-पत्रिकाएं

हिन्दी में पत्र-पत्रिकादि का प्रकाशन तो बढ़ता जा रहा है ; पर अभी हमारे पत्रों में सुधार के लिए बहुत अधिक स्थान है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे मराठी, गुजराती, बंगला भाषा-भाषी अपनी-अपनी मातृभाषा के पत्रों को पढ़कर अंग्रेजी पत्रों को पढ़ने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते, परन्तु अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दी-भाषा-भाषियों की यह स्थिति नहीं है। जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान है, ऐसे हिन्दी-भाषा-भाषियों का भी इस में थोड़ा-बहुत दोष हो सकता है ; परन्तु इस में मैं सब से अधिक दोष मानता हूं हिन्दी में मराठी, गुजराती और बंगला के सदृश पत्रों का अभाव। इस का उत्तर-दायित्व पत्रकारों पर नहीं है। उन बेचारों के पास अंग्रेजी या अन्य प्रांतीय भाषाओं के सदृश साधन नहीं है। फिर विज्ञापन आदि के रूप में जो सहायता सरकार और अन्य विज्ञापनदाताओं की ओर से अंग्रेजी तथा बम्बई, कलकत्ते आदि व्यापारिक नगरों से निकलने वाले प्रान्तीय भाषाओं के पत्रों को मिलती है, वह हिन्दी-पत्रों को नहीं। इस सम्बन्ध में हम व्यापारियों तथा उन की कंपनियों से तो केवल अनुरोध कर सकते हैं कि वे हिन्दी-पत्रों को भी उसी दृष्टि से देखें, जिस दृष्टि से वे अन्य भाषाओं के पत्रों को देखते हैं, परन्तु हम अपनी केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों को इस विषय में बाध्य कर सकते हैं।

एक कारण और है, जिस से हमारे हिन्दी-पत्र उन्नति नहीं कर पाते। उन्हें सभी समाचार अंग्रेजी में मिलते हैं, क्यों कि न तो अभी किसी ऐसी समाचार-संस्था का नि-

निर्माण हुआ है जो हिन्दी में ही समाचार भेजे और न अभी हिन्दी टेलीप्रिंटर ही निकला है। हिन्दी-पत्रों को सारे समाचार अंग्रेजी में प्राप्त कर उन का पहले हिन्दी-अनुवाद करना पड़ता है। हिन्दी-पत्रों के लिए हिन्दी में तारों के मिलने की और हिन्दी के टेली प्रिंटर द्वारा समाचारों के मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए।

वाणिज्य-जगत् में अंग्रेजी का प्रभुत्व

यहां यह कह देना अनुचित न होगा कि हमारे वाणिज्य-जगत् में आज भी अंग्रेजी का ही दौर-दौरा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यह क्षम्य है, परन्तु देश के व्यापार में नहीं। हमारे पत्र-पत्रिकादि की व्यापार-क्षेत्र में अवहेलना का कारण इस क्षेत्र में अंग्रेजी यह प्रभुत्व है।

ग्राम-साहित्य

साहित्य-सृजन की ओर दृष्टिपात करते समय हम एक और बात को भी विस्मृत नहीं कर सकते। स्वतन्त्रता के पश्चात् हमें केवल बालकों को ही नहीं, अपने देश के प्रौढ़ों को भी शिक्षित करना है। इस देश की ८० प्रति शत जनता ग्रामों में निवास करती है। अभी तक जिस साहित्य का सृजन तथा प्रकाशन हुआ है, उस में से अधिकांश साहित्य शहराती साहित्य हैं। हमें अब सब से अधिक ध्यान गांवों की ओर देना है और अपने साहित्य, नाटक, रंगमंच, सिनेमा, रेडियो और पत्र-पत्रिकाओं को ग्रामों के अनुकूल भी बनाना है। रूस ने इस दिशा में अपनी भाषाओं की ही नहीं, पर उपभाषाओं की भी उन्नति की है। क्या हम यह न करेंगे ?

विदेशी भाषाओं को प्रतिदान

हमने विदेशी भाषाओं से हिन्दी में बहुत कुछ लिया है; पर अब वह समय आ गया हैं, जब हम अपनी भाषा से भी विदेशों को कुछ दें। संसार में किसी देश की प्रतिष्ठा उस के विचारक तथा साहित्यिक ही बढ़ाते हैं। गुरुदेव कवि-सम्राट् रवि बाबू ने अपने कृतियों को अंग्रेजी द्वारा संसार को देकर हमारे देश की भी जैसी प्रतिष्ठा बढ़ायी है, वह किसी से छिपा नहीं है। रवीन्द्र बाबू के अतिरिक्त भी इस देश में ऐसे अनेक साहित्यिक हैं, जिन की कृतियां संसार के किसी भी देश की उत्तम-से-उत्तम साहित्यिक रचनाओं से टक्कर ले सकती हैं। इस दिशा में हमें अंग्रेजी भाषा का ही सहारा लेना होगा। उस भाषा को हम जानते हैं और उस का अन्तर्राष्ट्रीय स्थान भी है। यदि हम अंग्रेजी द्वारा संसार के साहित्य को कुछ देंगे तो हमारे साहित्य और देश दोनों का गौरव बढ़ेगा। मैंने 'नोबल पुरस्कार'-विजेता

कई साहित्यकों की कृतियां पढ़ी हैं और मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूं कि इस देश का साहित्य, यदि संसार के सामने जाता, तो हमारे अनेक साहित्य-सृष्टा 'नोबल-पुरस्कार' प्राप्त करते।

महात्मा गांधी के नेतृत्व के पश्चात् और विशेष कर देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त, भारत को संसार में एक विशेष स्थान प्राप्त हो गया है। अभी हाल ही में हमारे प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू यूरोप गये थे। उन्होंने वहां से लौट कर, भारत पश्चिमी जगत् में किस दृष्टि से देखा जाने लगा है, इस सम्बन्ध में हमें कई बातों का दिग्दर्शन कराया है। गत दो महायुद्धों की हिंसा से जर्जरित यूरोप पर गांधीजी के व्यक्तित्व, उन के चरित्र, उन के सिद्धान्तों और उन के उपदेशों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। अहिंसा द्वारा भारत को, जो स्वातन्त्र्य-प्राप्ति हुई है, उसने इस प्रभाव को और भी गहरा कर दिया है। विश्व की भावी शांति के लिए आज संसार हमारे देश की ओर देखने लगा है। ऐसे अवसर पर संसार हमारे साहित्य का कितना आदर करेगा, इस की कल्पना की जा सकती है। इस आदर के अतिरिक्त हमारा साहित्य, संसार के विचार-क्षेत्र में एक नयी धारा बहा कर विश्व का बहुत बड़ा कल्याण भी कर सकता है। किसी भी कृति के पहले विचार की उत्पत्ति होती है और विचार के निर्माण में साहित्य का बड़ा भारी हाथ होता है।

हिन्दी-साहित्य में आलोचना की जितनी कमी है, उतनी हमारी प्रांतीय भाषाओं में भी नहीं। विदेशों में हमारा साहित्य पहुँचने पर वह वहां आलोचना की कसौटी पर न कसा जाय, यह असंभव है और तब हम स्वयं भी अपने साहित्य को कदाचित् अधिक परख सकेंगे। गुरुदेव रवीन्द्र बाबू को भी तो हम विदेशों में उन के साहित्य का आदर होने पर ही पहचान सके।

यहां मैं दो शब्द अपने साहित्यिकों से भी कहना चाहता हूं। अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण के लिए लक्ष्य और रचना-विधान दोनों में ही व्यापकता एवं उदारता को आवश्यकता है। अन्य भाषाओं के साहित्यिक यदि थोड़े संकीर्ण भी हों, तो जो भाषा इतने बड़े देश में राष्ट्र-भाषा है, अथवा होने जा रही है, उस के साहित्यकों में संकीर्णता न होनी चाहिए। वे अपने साहित्य को सारे संसार के लिए उपयोगी बनाने का ही यत्न करें। हमारी परम्परा उदारता की परम्परा रही है।

साहित्य और साहित्य-संस्थाओं का उत्तरदायित्व

भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् भावी निर्माण के कार्य को देखते हुए साहित्यिक और साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओं का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। इन संस्थाओं में अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन अग्रगण्य है। परन्तु, साहित्यिक

और साहित्यिक संस्थाएँ तब तक अपना यह उत्तरदायित्व पूरा नहीं कर सकतीं, जब तक उन्हें स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों का पूरा-पूरा सहयोग न मिले।

सरकार का कर्तव्य

हिन्दी राष्ट्रभाषा और नागरी राष्ट्रलिपि घोषित कराने के साथ ही हमें निम्नलिखित बातें सरकार से करनी हैं—

(१) सरकार हिन्दी और अहिन्दी समस्त प्रान्तों के भाषा-विज्ञों की एक समिति बनाये, जो पारिभाषिक शब्दों के ऐसे अन्तिम रूपों का निर्णय करे, जिन्हें हिन्दी और अहिन्दी सब प्रान्तों की भाषाओं में समान रूप से व्यवहृत किया जा सके।

(२) हिन्दी भाषी प्रान्तों की समस्त शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो। अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी अनिवार्य की जाय। समस्त विश्वविद्यालयों को और शिक्षा-संस्थाओं को इस सम्बन्ध में सरकार स्पष्ट आदेश दे।

(३) सरकार द्वारा एक केन्द्रीय ट्रेनिंग कालेज खोला जाय, जहां, सरकारी नौकरियों के लिए जिन व्यक्तियों का चुनाव हो जाय, उन को, नियुक्ति के पहले यदि वे हिन्दी न जानते हों, तो हिन्दी की शिक्षा दी जाय और उनके लिए हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण होना अनिवार्य हो।

(४) हिन्दी-भाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में 'डाक्टरेट' के लिए जो निबंध लिये जाते है, अंग्रेजी भाषा के थीसिस को छोड, शेष सभी हिंदी मे लिये जायं।

(५) जिस प्रकार संयुक्त प्रांत की धारा-सभा में सारे बिल, प्रस्ताव, प्रश्न आदि हिंदी मे प्रस्तुत किये जाते हैं, उसी प्रकार केन्द्रीय धारा सभा और हिंदी भाषा-भाषी प्रांतों की धारा-सभा में भी कार्यवाही की जाय। केन्द्रीय धारा-सभा में कुछ समय तक हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी मे भी यह कार्य किया जा सकता है।

(६) प्राचीन साहित्य की खोज, वैज्ञानिक और शास्त्रीय साहित्य के निर्माण तथा प्रत्येक विषय के लिए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें लिखाने के लिए सरकार सम्मेलन को पर्याप्त आर्थिक सहायता दे।

(७) हिन्दी में तार भेजने और हिन्दी टेली प्रिंटर लाइनों की व्यवस्था की जाय।

(८) जिस प्रकार लार्ड कर्जन ने यहां की पुरानी ऐतिहासिक इमारतों की सुरक्षा के लिए एक कानून बनवाया था, उसी प्रकार एक नया कानून प्राचीन साहित्य-कारों के जन्मस्थानों की रक्षा के लिए बनाया जाय। गोस्वामी तुलसीदासजी के जन्मस्थान की रक्षा के लिए यदि कुछ न किया गया, तो वह स्थान बहुत शीघ्र बह जाने

वाला है। इस सम्बन्ध में तत्काल कुछ-न-कुछ होना अत्यावश्यक है। और इस कार्य में सरकार से सहायता मिलना चाहिए।

सम्मेलन का भावी कार्यक्रम

राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-लिपि के प्रश्न का निर्णय होने के पश्चात् भी सम्मेलन को उपयुक्त राष्ट्र-भाषा और उपयुक्त राष्ट्रलिपि बनाने तथा सरकार द्वारा इन सारे कार्यों की व्यवस्था कराने का बहुत बड़ा काम अभी करना है। इसके अतिरिक्त उस ने हिन्दी के अनुकूल सारे देश में वायु-मण्डल तैयार करने का अब तक जो प्रयत्न किया है, उसे भी अभी पूरा करना है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में भी हिंदी-प्रेम जाग्रत करना अभी शेष है। पत्र-पत्रिकादि के क्षेत्र में, जो ज्ञान-प्रसार के सबसे बड़े साधनों में से एक है, अंग्रेजी पत्रकारों के हृदयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा स्थापित करनी है। विज्ञान और शास्त्रीय पत्र हिन्दी में नहीं के बराबर हैं। जहां तक मुझे मालूम है, प्रयाग के 'विज्ञान' नामक पत्र के सिवा इस क्षेत्र में और कोई भी पत्र हिन्दी में नहीं निकलता। इस दिशा में भी सम्मेलन ही कुछ कर सकता है। दूसरी भारतीय भाषाओं में किस-किस दिशा में क्या-क्या किया जा रहा है और उसका कितना उपयोग हिन्दी में किया जा सकता है, इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। विदेशों में अफ्रीका, फ़ीजी, मारिशस, ट्रेनीडाड आदि उपनिवेशों में, जहां भारतीय लाखों की संख्या में निवास करते हैं, हिन्दी और हिन्दी के द्वारा भारतीय संस्कृति को पहुँचाना है। कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्रभाषा का प्रश्न हल होने पर भी सम्मेलन के सामने एक बहुत बड़ा कार्यक्रम है। समूचे देश को और जो देश-वासी भारत के बाहर रहते हैं उन सब को, एक सूत्र में बाँधने का कार्य मुख्यतः हिंदी-द्वारा ही हो सकता है। यहां एक बात और कह दूं। मेरा विश्वास योजना बना कर कार्य करने में रहा है। सम्मेलन का सारा कार्य एक निश्चित योजना बनाकर होना चाहिए।

मेरे दो स्वप्न

इस भाषण को पूर्ण करने से पहले मैं अपने दो स्वप्नों के उल्लेख का लोभ-संवरण नहीं कर सकता—मेरे प्रथम स्वप्न के फलस्वरूप सन् १९१९ के अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पटना अधिवेशन में, जिस के सभापति पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल थे, एक प्रस्ताव पास हुआ था, जिस का आशय था कि भिन्न-भिन्न विषयों पर ग्रन्थ-निर्माण करने के लिए लेखकों को एक स्थान पर रखा जाय और उन्हें जीवन-निर्वाह की चिन्ता से मुक्त कर दिया जाय। इसी उद्देश्य से जबलपुर में 'राष्ट्रीय

हिन्दी-मन्दिर' की स्थापना हुई थी, परन्तु वह प्रयास सफल न हो सका। आज लेखकों की जीविका और साहित्य-सृजन दोनों ही प्रश्न उस समय की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। इस युग में ऐसी संस्था का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। यदि ऐसी संस्था का निर्माण, जो लेखकों को एक स्थान पर रख सके, नहीं हो सकता, तो फिर एक ऐसी संस्था का निर्माण होना चाहिए, जो लेखकों को उन की जीविका की चिन्ता से मुक्त कर उन्ही के स्थान पर रहने दे और उन से एक निश्चित समय के भीतर एक निश्चित परिमाण में साहित्य-सृजन का कार्य कराये। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि साहित्यकार अपनी जीविका चलाने के लिए कोई दूसरा कार्य करते रहें और केवल अवकाश का समय ही साहित्य-सृजन में लगाते रहें, तो हमें जिस साहित्य की आवश्यकता है, उस की रचना में बहुत समय लगेगा। लेखकों को हम उन की जीविका की चिन्ता से मुक्त कर ही इस कार्य को सुन्दर रूप में करा सकते हैं।

मेरा दूसरा स्वप्न है भारत में भी 'नोबेल-पुरस्कार' के समान कम-से-कम एक लाख रुपये के एक ऐसे पुरस्कार की व्यवस्था ,जो किसी भी भारतीय भाषा के सर्वोत्तम ग्रंथ पर हर तीसरे वर्ष दिया जाये। वह ग्रन्थ चाहे राष्ट्रभाषा हिन्दी में हो अथवा बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़ आदि किसी भी प्रांतीय भाषा में।

इन योजनाओं तथा सम्मेलन के अन्य कार्यों के लिए यथेष्ट धन चाहिए। गत युद्ध में कितना कमाया है लोगों ने, उचित व अनुचित दोनों ही प्रकारों से। करोड़ों रुपये लोगों ने इनकम टैक्स के रूप में दिये हैं। दान के एक-एक करोड़ के ट्रस्ट भी बने हैं। भारत की दान-प्रणाली बडी दूषित रही है, अब भी दूषित है। मैं तो समाज का वह संगठन चाहता हूं कि जिस में न किसी के पास दान देने को रहे और न कोई दान के लिए हाथ फैलाये ; परन्तु जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति है, तब तक दान-प्रणाली रहेगी और इसलिए उस का सुधार भी अभीष्ट है। क्या भारत में भी इन कार्यों के लिए कोई दाता सामने आयेगा ? जिन्होंने उचित मार्गों से कमाया है, वे उस मे सार्वजनिक भाग मान कर दान दे सकते हैं और जिन्होंने अनुचित मार्गों से प्राप्त किया है, वे अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए। ध्यान रखे, यह लक्ष्मी चंचला है। 'स्थिराभव, स्थिराभव, स्थिराभव' का जप करते रहने पर भी यह आज तक कही स्थिर नहीं रही है और न भविष्य में ही रहने वाली है। बड़े-बड़े साम्राज्यों का निर्माण हुआ और नाश। बड़े-बड़े करोड़पति बने और बिगड़े। जिन्होंने इस सम्पदा का उपयोग कर लिया, वे ही धन्य हो गये ; शेष का वही हाल हुआ, जो धन पर बैठे सांपों का होता है।

इस भाषण का अन्त करता हूं मैं राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त की न पंक्तियों से—

जय देव-मन्दिर-देहली,
सम-भाव से जिस पर चढ़ी
नृप-हेम-मुद्रा और रङ्क वराटिका।

मुनि-सत्य-सौरभ की कली
कवि-कल्पना जिसमें बढ़ी,
फूले फले साहित्य की वह वाटिका।

अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मंडल के अष्टम् अधिवेशन हाथरस का अध्यक्षीय भाषण

४ अप्रैल, १९५२

बसो मोरे नैनन में नंदलाल !
सांवरी सूरत, मोहिनी मूरत, नैना बने बिसाल ।।
—मीराबाई

ऐसे कन्हैया की पावन ब्रजभूमि के अमर और अगाध साहित्य की प्रतिनिधि संस्था के सभापति-पद के लिए आपने राजनीति की दलदल में गले तक फंसे मुझ जैसे एक तुच्छ व्यक्ति को चुना, इससे स्वयं मुझे भी आश्चर्य ही हुआ है। परन्तु, हिंदी और ब्रजभाषा के एक अनुशासित सेवक के नाते सेवा के भार को यथाशक्ति निभाना भी मेरा कर्त्तव्य था और इस कर्त्तव्य से प्रेरित होकर ही आज मैं आप के समक्ष इस गुरुतर भार को ग्रहण कर रहा हूं। अपनी सीमित शक्ति और समय से थोड़ी-बहुत जो भी सेवा मुझ से ब्रज-साहित्य की बन सकेगी उसे कर के मैं निश्चय ही अपने-आप को धन्य मानूंगा। अतः इस का अवसर देने के लिए मैं आप को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

हिंदी के साथ मेरा जो संबंध है, उस का समस्त श्रेय इसी ब्रजभूमि की पावन संस्कृति, भक्ति-मुक्ति-दायिनी दार्शनिकता और ललित काव्य-धारा को है। यदि मेरा परिवार और मैं पुष्टिमार्गी वैष्णव न होते, तो मेरा ऐसा सौभाग्य कहां हो सकता था! परम स्नेहमयी मां की गोद में बैठ कर उन से ब्रजवाणी के जो ललित पद बाल्यकाल में ही मैंने सुने, वे सदा को हृदय में समा कर रह गये। इतना ही नहीं, कालांतर मे उन्होंने साहित्य-सृजन का अनुराग-अंकुर उत्पन्न किया और इस के फल-स्वरूप जिस गोविन्ददास की सृष्टि हुई, वह बीज-रूप से इस ब्रज-अंकुर साहित्य और इस ब्रज की रज में ही तो निहित था।

संसार परिवर्तनशील है। जो कल था, वह आज नहीं है। जो आज है, वह कल नहीं रहेगा। प्रत्येक वस्तु का सदैव नवीन रूप विकसित होता रहता है, संसार भर की भाषाओं पर भी यह सिद्धांत लागू होता है; परन्तु धन्य है वह प्रदेश और उसके पंच तत्त्व, जो ऐसी भाषा का विकास करें, जिस पर जगत् मुग्ध हो जाय।

जहां के कुली-कबाड़ी तक के शब्दों से रस बरसे और जहां की पनिहारिन बालिका के सरल शब्द "माय री माय ! सांकरी गली में मोरे पांयन कांकरी गड़े है" सुन कर अर्थ जाने बिना ही विदेशी छकित हो जांय, इस लालित्य का रहस्य क्या है ? निश्चय ही ब्रजवासियों की सरस हृदयता और ब्रज के साहित्य-सेवियों की अनुपम साधना। कृष्ण-भक्ति में लवलीन संतो, महात्माओं, भक्तों, जीवन्मुक्त तपस्वियों और प्रेमीजनों ने ब्रज की गली-गली और गांव-गांव में चुपचाप बैठकर काव्य-सुधा की जो निर्झरिणी प्रस्फुटित की, वह इतने वेग से उमड़ी कि केवल ब्रज ही नही, एक बार समस्त भारत उसके रस से सराबोर हो गया ! पूर्व में ब्रजवाणी का यह प्रवाह बगाल तक पहुँचा और चण्डीदास, गोविंददास आदि कवियों ने जो रचनाएं की, वे आज भी बंगीय साहित्य की अमर और अमूल्य निधि हैं। पश्चिम में यह प्रवाह पंजाब तक पहुंचा और सिख गुरुओं ने अपने उपदेशों का वाहन ब्रजभाषा को बनाने में गौरव अनुभव किया। गुरु नानक ने—

जागहु रे जिन जागना, अब जागन की बारि ।
फेरि का जागहु 'नानका', जब सोवहु पाँय पसारि ।।

की चेतावनी ब्रजभाषा में देकर जो परंपरा स्थापित की, उसे गुरु गोविन्दसिंहजी तक ने—

जो सब चिड़ियन बाज बनाऊँ ! तौ मैं गुरु गोविंद कहाऊँ ।।

का निश्चय करते हुए निभाया। उत्तर में ब्रजभाषा नेपाल तक पहुँची, तो दक्षिण में इस के कवि का सम्मान पूना के दरबार तक में हुआ।

सच्ची राष्ट्रभाषा

जिस समय भारतीय संस्कृति और सभ्यता के ऊपर घोर संकट आया हुआ था, उसके जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित था और उस की रक्षा करनेवाली तलवार पराजित हो चुकी थी, उस समय ब्रज के कवियों की लेखनी ने इस राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता की रक्षा की। ब्रज के काव्य ने समस्त राष्ट्र को एक ओर अखंड बनाये रखा, उस में जीवन की ज्योति जगाये रखी और शौर्य की पराजय से निराश हृदयों में भक्ति का बल भर दिया। उस समय ब्रजभाषा सच्चे अर्थों में भारत की राष्ट्र-भाषा सिद्ध हुई। यह उस का परम व्यापक रूप था। इस रूप में उस के अपनाये जाने का कारण उस की मधुरता, उस की विलक्षण अभिव्यंजना, उसके काव्य की सरसता एवं गंभीरता, उस की अद्वितीय दार्शनिकता, उस की प्रेम-विह्वलता और सब से बढ़कर उस के केन्द्र कन्हैया की लीलाएँ ही थीं। तभी तो—

प्रेम देव की छवि निरखि, भये मियाँ रसखानि ।

और ताज बोल उठीं—

सुनो दिलजानी ! मेरे दिल की कहानी,
तव इस्म की बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं ।
देव-पूजा ठानी, औ निमाज हू भुलानी,
तजे कलमा-कुरानी, सारे गुनन गहूँगी मैं ।।
साँवला सलौना सिरताज सिर कुल्लेदार,
तेरे नेह-दाघ में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं ।
नंद के कुमार ! कुर्बान तेरी सूरत पै,
हौं तो मुगलानी, हिंदवानी ह्वै रहूँगी मैं ।।

और आलम इसी के लिए लालायित बना हुआ कैसा हृदय-द्रावक पश्चात्ताप करता रहा—

जा थल कीने बिहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठ चुन्यौ करैं ।
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यौ करैं ।।
'आलम' जौन से कुंजन में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं ।
नैनन में जे सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं ।।

इन्हीं जैसे भक्तों पर मानों दया करके पद्माकर ने लिखा है—

ऐ ब्रजचंद ! चलौ कित वा ब्रज, लूकैं बसंत की लूकन लागीं ।
त्यों 'पदमाकर' पेखो पलासन, पावक सी हिएँ फूकन लागीं ।।
वे ब्रजवारी बिचारी बधू, बन बावरी सी हिएँ हूकन लागीं ।
कारी कुरूप कसायन सी, ये कुहू-कुहू कोयलियाँ कूकन लागीं ।।

और ब्रजचंद दूर हैं ही कहां—

प्रानन के प्यारे, तनु-ताप के हरन हारे, नंद के दुलारे ब्रज वारे उमहत हैं ।
कहै 'पदमाकर' उरूझे उर अतर त्यों, अंतर चहै हू ते न अंतर चहत हैं ।।
नैनन बसे हैं, अंग-अंग हुलसे हैं, रोम-रोमन रसे हैं, निकसे हैं को कहत है ।
ऊधो! वे गोविंद मथुरा में कोऊ और रहें, मेरे तो गोविंद मोहि मोहि में रहत हैं ।।

ब्रज के कवियों की उल्लासपूर्ण, पावन और सुकुमार सूक्तियों के उदाहरण स्वरूप ये कुछ छंद मैंने यहां दे दिये, परन्तु निश्चय मानिये कि मैं ब्रज-भूमि में अब भी वही आनंद बरसता हुआ देखता हूं। कोई कवि भले ही कहे कि—

सजनि ! कहाँ अब वह वंशीवट, गये कहाँ नट-नागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट, कहाँ-कहाँ वह वृन्दावन धाम ।।

परन्तु व्याकुलता में ही तो प्रेम की पराकाष्ठा है। जिस ब्रज की रज ने एक बार प्रेमरूप कृष्ण के चरण छू लिये, वह सर्वदा के लिए पवित्र और प्रेम की स्रोतस्विनी बन गई। इसे देखने के लिए आंखों वाला हृदय चाहिये—हाँ हृदय ! और फिर सचमुच ही—

जानि परै सखि ! आवन चाहत, कुंजन तें कढ़ि कुंजबिहारी।

यह तो अकथ कहानी है। दो शब्दों में समझ लीजिये कि—

'भगवत रसिक' रसिक की बातें, रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।

यह है ब्रज-साहित्य का महत्त्व। आज समय बदल गया है। ब्रजभाषा अपना राष्ट्रभाषा का स्थान खड़ी बोली को प्रदान कर चुकी है। स्वतन्त्र भारत की बहुमुखी समस्याओं के लिए हिंदी की खड़ी बोली के बिना काम भी न चलेगा, परन्तु यदि व्यक्ति केवल इसी कारण ब्रज-साहित्य की उपेक्षा करने की बात कहे,तो इस बात को मैं बुद्धिहीन तर्क कहूंगा। हिंदी वाङमय का आज भारत और समूचे संसार में जो इतना ऊंचा स्थान है, उस का अधिकांश श्रेय ब्रज-साहित्य को ही है। यह कोई अतिशयोक्ति न होगी, यदि मैं कहूं कि ब्रज-साहित्य राष्ट्रभाषा हिंदी का प्राण है। यदि ब्रज-साहित्य को हिंदी-साहित्य से निकाल दें, तो इस में क्या और कितना शेष रह जायगा ? यह अपार और अथाह साहित्य-धन हिंदी-साहित्य का सदैव सुदृढ़तम स्तंभ रहेगा। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति के विकास के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है, उस प्रकार ब्रजभाषा के गहन अध्ययन बिना, हिंदी का पूर्ण ज्ञान होना असंभव है ; अतः ब्रजभाषा अब भी भूत की वस्तु नहीं, वरन् भारत के सक्रिय वर्तमान और आशापूर्ण भविष्य की अनिवार्य वस्तु है। इस कारण इस के साहित्य के अनुशीलन, अध्ययन, रचना और प्रकाशन आदि के लिए जितना भी कार्य किया जाय, थोड़ा होगा।

स्वान्तः सुखाय रचना

ब्रज-साहित्य की नई रचनाओं का भी निरंतर होता रहना आवश्यक है। आज जब साहित्य-सृजन में व्यापारिक मनोवृत्ति समा गई है, तब ब्रजभाषा की रचनाओं का मूल्य सोना-चाँदी के रूप में, संभव, है अधिक न लगे। परंतु संसार में सोना-चाँदी ही सब कुछ नहीं है। जिन्हें सोना-चाँदी पर्याप्त प्राप्त है, उन के

हृदय को भी पूर्ण सुखानुभूति नही होती, और साहित्य-सृजन की सुखानुभूति का मुकाबला सोना-चाँदी की सुखानुभूति कभी कर ही नही सकती। मैं आप से अनुरोध करूगा कि आप ब्रज-साहित्य की रचना व्यापारिक दृष्टि से नही, वरन् स्वान्त सुखाय करें। आप देखेगे कि इस मे आप को जो सुख मिलेगा, वह सोना-चाँदी से खेलने वाले व्यापारी-जगत् को दुर्लभ होगा। कुभनदासजी के इन शब्दों मे कितना महान् तथ्य है—

मतन सिकरी सों का काम ?
आवत जात पन्हैयाँ टूटी, बिसरि गयौ हरि नाम ।।

परन्तु इस से मेरा यह अभिप्राय नही कि ब्रज के साहित्यकार वैरागी बन कर समस्त जगत् से अलग होकर बैठ रहे। नही, मैं तो यह चाहता हू कि वे हिंदी-साहित्य की रचना मे केवल क्रियाशील ही न रहे, वरन् सर्वाग्रणी होने का प्रयत्न करे। साधना व्यर्थ नही जाती। उन्हे उस का पुरस्कार अवश्य मिलेगा। पुरस्कार के विषय मे ब्रज-साहित्यकारों को निराश होने का कोई कारण नही है। यो तो समस्त जगत् के हिंदी-साहित्यकार पुरस्कार के विषय मे निराशा ही अनुभव करते है। यह निराशा कुछ सीमा तक ठीक भी है। अग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओ के साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा जितना उपार्जन कर लेते हैं, उस का शताश भी हिंदी के साहित्यकार कर सकते, तो वे परम सतोष के साथ साहित्य-साधना मे रत रहते। यह दशा भी सदा नही बनी रहेगी। देश मे विद्या का प्रचार होने पर साहित्यकारों की साधना का भी अधिक पुरस्कार अवश्य मिलेगा , परतु अधिक पुरस्कार की कामना के साथ ही साहित्यकारों को अपनी रचनाओ का स्तर ऊचा करने का भी प्रयत्न करना चाहिए--

डेल सौं बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबौ खेल करि जानौ है !

इस चेतावनी से शिक्षा लेनी चाहिए।

अध्ययन कीजिये

साहित्य-सृजन के साथ अध्ययन को भी प्रमुख स्थान देना चाहिये। मीरा, तुलसी, सूर कबीरा के अध्ययन के बिना ही यदि कोई हिंदी का कवि बनना चाहे, तो वह आकाश मे इधर-उधर भटकने वाले बादल के चीथडे जैसा ही होगा; जो न जगती-तल को तृप्त कर सकेगा और न निज ही-तल को ही ! स्यात् अधिक काल

तक वह जीवित भी न रह सकेगा ! सफल साहित्य का सृजन करने के लिए केवल कल्पना ही पर्याप्त नहीं है। कल्पना के साथ जो ज्ञान और अनुभूति की परिपक्वता प्राप्त कर लेगा, वह निश्चय ही भारती-वाङमय का अमर रत्न बन जायगा और पुरस्कार तो उसे अवश्य मिलेगा ही। अतीत इस का प्रमाण है। ब्रजभाषा को इस का अभिमान है कि उस के महाकवि भूषण को जितना पुरस्कार मिला, उतना अब तक संसार की किसी भाषा के कवि को स्यात् ही मिला होगा। इन साहित्य-साधना के समक्ष अन्य सभी पद तुच्छ रहते हैं। विन्सेन्ट स्मिथ जैसे इतिहासवेत्ता ने 'अकबर दी ग्रेट मुगल' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि अकबर के समय में अकबर से भी बड़ा एक आदमी था, और वह था तुलसीदास !

सरकार सहायता दे

मैं ऊपर कह चुका हूं कि ब्रज-साहित्य राष्ट्रभाषा हिंदी का प्राण है। इस प्राण की रक्षा एवं अभिवृद्धि करना प्रत्येक हिन्दीभाषी का परम कर्त्तव्य है। ब्रज-साहित्य मंडल ने जो कार्य अपने हाथ में लिये हैं, वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। हम सब का कर्त्तव्य है कि उन के सफल होने में पूरी सहायता प्रदान करें। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य भारत, मध्य प्रदेश और विन्ध्य प्रदेश का ब्रज-भाषा से घनिष्ठ संबंध है। इन प्रदेशों के नवनिर्मित मंत्री-मंडलों का कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे ब्रज-साहित्य-मंडल को अपने यहां ब्रज-साहित्य के अनुशीलन की सुविधाएँ और आर्थिक सहायता प्रदान करें। केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-सचिवालय का भी कर्त्तव्य है कि वह ब्रज-साहित्य-मंडल को आर्थिक सहायता दे। उस ने हिंदी-प्रचार और हिंदी-साहित्य-निर्माण की जो योजना बनाई है, उस में मंडल से उसे अमूल्य सहायता मिल सकती है।

मथुरा में रेडियो स्टेशन हो

ब्रज-साहित्य को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए मथुरा में एक रेडियो स्टेशन होना भी आवश्यक है। मथुरा, वृंदावन, आगरा, भरतपुर के क्षेत्र में साहित्य का अक्षय भंडार छिपा पड़ा है। रेडियो-संगठन यदि इस का उपयोग करे, तो इसे विदेशी भाषाओं के विकृत अनुवाद प्रस्तुत करके समय काटने की चिंता नहीं करनी पड़ेगी। मथुरा में रेडियो स्टेशन हो जाने से ब्रज-साहित्य को केवल प्रोत्साहन ही नहीं मिलेगा, वरन् उसे आधुनिकतम रूप में निखरने का अवसर भी मिलेगा। यह रेडियो की बड़ी भारी साहित्य-सेवा होगी। भारत सरकार के सूचना और ब्राडकास्टिंग सचिवालय को इस ओर ध्यान देना चाहिए और यदि अधिक नहीं

तो मथुरा में अमृतसर के समान एक दिल्ली स्टेशन का पूरक रेडियो केन्द्र ही स्थापित कर देना चाहिये। जब तक ऐसा होना संभव न हो, तब तक दिल्ली रेडियो के प्रोग्रामों ही में ब्रज-साहित्य और संस्कृति को पर्याप्त स्थान देने का यत्न होना चाहिये।

रास-मण्डलियों का सुधार

ब्रज-साहित्य और संस्कृति के प्रचार का एक सर्वोत्तम साधन रास-मंडलियों द्वारा भगवान् कृष्ण की लीलाओं का अभिनय था। होली तथा अन्य अवसरों पर ये रास-मंडलियां उत्तर प्रदेश और राजस्थान के दूर-दूर स्थानों पर जाकर अपने अभिनय किया करती थीं, जिस के परिणाम-स्वरूप असंख्य नर-नारी और विशेषत: बालक-बालिकाएं कृष्ण-भक्ति के साथ ब्रज-साहित्य और संस्कृति में रम जाया करते थे। खेद है कि ब्रज के इस रंगमंच को इधर बहुत भीषण धक्का लगा है। जनता की रुचि का स्तर गिरने और उघड़ी वासना की पुट वाले निम्नकोटि के सिनेमा गीतों का चलन बढ़ जाने के कारण रास-मंडलियों के संगीत और भक्तिपूर्ण अभिनय का स्तर भी गिर गया। शास्त्रीय संगीत और भक्तिपूर्ण अभिनय करने वाली रास-मंडलियों का अंत हो गया। जो शेष रह गईं, वे थोड़ी देर तार्थेई का नृत्य दिखाकर नौटंकी करने लगीं! इन नौटंकियों में भी अस्वाभाविकता और भोंड़ेपन की सीमा तोड़ दी गई है। द्वापर-युग के दृश्य में मुगल-काल के भांड़ों की वेश-भूषा और हास-परिहास का प्रदर्शन होता है, जिन से कभी की समाप्त हो चुकीं पारसी थियेटर कंपनियों की बेतुकी नकलों की याद हो जाती है। इससे ब्रज-साहित्य और संस्कृति की बदनामी होती है। देश में अब भी पर्याप्त भक्ति-भाव और कला-प्रियता के होते हुए भी रास-अभिनय की यह दुर्दशा हो, यह बड़े ही दुःख का विषय है। थोड़े-से प्रयत्न द्वारा इस का सुधार किया जा सकता है। यदि कुछ शिक्षित नर-नारी इस कार्य को अपने हाथ में लेकर उच्च स्तर पर एक रास-मंडली का संगठन करें, तो कोई कारण नहीं कि जनता उसका स्वागत न करे। मेरा विश्वास तो यह है कि ऐसी मंडली का स्वागत देश में ही नहीं, विदेशों तक में होगा। वर्तमान रास-मंडलियों के अभिनय का आयोजन करने वालों से मैं अनुरोध करूँगा कि वे अपने और समाज दोनों के कल्याण के लिए इन मंडलियों से शुद्ध कृष्ण-लीलाएँ दिखाने का ही आग्रह करें। दश मिनट राधा और कृष्ण की लीला दिखाने वाले पात्रों से ही कुरुचिपूर्ण अभिनय और गंदे फिल्मी गीत सुनना पाप है!

कवियों के स्मारक

ब्रज-भाषा के महाकवियों के स्मारक बनाने का प्रयत्न भी सराहनीय होगा।

इस दिशा में सूर-स्मारक बनाने के लिए अब तक जो कुछ किया गया है, वह प्रशंसनीय है; परंतु सूर का स्मारक तो ऐसा होना चाहिये, जिस पर समस्त भारत अभिमान कर सके। विश्वास कीजिये वह दिन शीघ्र ही आने वाला है, जब विदेशों से आने वाले विद्वान् हमसे पूछा करेंगे कि सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, देव, बिहारी, केशव, मतिराम, रसखान, भूषण, पद्माकर आदि के स्मारक कहां हैं? उस समय हमारा उत्तर भारतीय राष्ट्र की महत्ता के अनुरूप ही होना चाहिये। विदेशियों के लिए ही नहीं, स्वयं हमारे भीतर भी तो आत्माभिमान उद्दीप्त रखने के लिए हमारे इन अमर साहित्यकारों के स्मारक होने आवश्यक हैं। खेद है कि महाकवि सूरदास की लीलाभूमि परासौली गाँव का नाम, जो बिना किसी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आधार के पिछले शासन काल में सरकारी कागजों में महमदपुर लिखा जाने लगा था, ब्रज-साहित्य-मंडल और उस गाँव की गाँव-सभा के प्रयत्नों और अनुरोधों के उपरांत भी अभी तक सरकार ने अपने कागजों में सही करने की तत्परता नहीं दिखलाई, जब कि लोक-परंपरा में आज भी यह गांव परासौली के नाम से ही सर्वत्र प्रसिद्ध है और इसी नाम से आज भी समझा और पुकारा जाता है। जब कि प्राचीन ब्रज-भाषा-साहित्य और इतिहास के अनेक ग्रंथों में भी इस गांव का नाम परासौली सर्वमान्य है, तब इसे बिना किसी आधार के महमदपुर कहे जाने का कोई भी कारण समझ में नहीं आता। यही कारण है कि जनता में इसके लिए असंतोष बढ़ रहा है। सरकार किसी कारण विशेष से इस गाव का नाम अपने कागजों मे परासौली नहीं कर सकती, तो व्यक्तिगत रूप से मैं भारत के निर्माण-मंत्री माननीय श्री गाडगिल महोदय के इस विचार से सहमत हूं कि इस गाँव का नाम अविलम्ब 'सूरपुरी' रख दिया जाय; क्यों कि इस गांव की स्थापना से लेकर आज तक उसमें निवास करने वाले किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा सूरदास कहीं अधिक महान् थे। मेरा विश्वास है कि यदि आज स्वयम् महमद हुसेन जीवित होते, तो वह स्वयं भी महर्ष इस गांव का नाम बदलकर परासौली या सूरपुरी ही रख देते। मैं उत्तर प्रदेश की सरकार से अनुरोध करूंगा कि वह इस विषय पर पुनः विचार करें। उत्तर प्रदेश की विधान-सभा में भी इस प्रश्न को उठाया जाना चाहिये। इसी प्रकार ब्रजभाषा के अन्य कवियों के स्मारक बनाने का प्रयत्न भी होता रहना चाहिये।

ब्रज-साहित्य-दर्शन-केन्द्र

ब्रज का इतिहास-लेखन और ग्राम-साहित्य का संकलन करने का काम भी विशेष महत्त्व का है। वास्तव में ब्रज-साहित्य और संस्कृति के संपूर्ण रूप की झाँकी

के दर्शन होने का एकमात्र उपाय यही है। इस कार्य द्वारा ब्रजभाषा का ही नहीं, वरन् हिंदी का भी भंडार भरेगा। इस कार्य में ब्रजभाषा-भाषी जिला बोर्डों से पूरी सहायता मिलनी चाहिये। यदि ग्रामों में बैठे हुए हमारे अध्यापकगण इस कार्य में सहयोग दें, तो वह सरलतापूर्वक किया जा सकेगा। इसके फलस्वरूप जो साहित्य उपलब्ध और निर्मित हो, उसके लिए मथुरा में एक ब्रज-साहित्य-प्रदर्शन केन्द्र बनाया जाना आवश्यक होगा। मंडल द्वारा जो भवन-निर्माण हो, उसी में यह केन्द्र भी रहे। अब तक मथुरा में यात्री जितनी उत्सुकता से द्वारकाधीश के दर्शन करने आते हैं, उतनी ही उत्सुकता के साथ वे ब्रज-भारती के दर्शन करने आयें और विश्रामघाट पर डुबकी लगा कर जैसा विश्राम उन्हें मिलता है, वैसा ही विश्राम उन्हें ब्रज-साहित्य की अमित आनंददायिनी धारा में डुबकी लगा कर भी मिले। और इस प्रकार देश के लिए मथुरापुरी का आकर्षण दुगुना हो जाय, यही मेरी कामना है!

ब्रज-संस्कृति का सन्देश

आज संसार में आपाधापी मची हुई है। विश्व की महान् शक्तियां प्रभुत्व के लिए पागल हो रही हैं। अहंकार, लोभ, मान, मत्सर, दंभ और पाखंड का बोलबाला हो रहा है। अपने देश में ही सत्ता के लिए लोलुपता की आंधी आई हुई है! जिन्होंने कभी त्याग, तपस्या और निःस्वार्थ भावना का अनोखा आदर्श उपस्थित किया था, वही आज विधान-सभाओं और संसद् की सदस्यता अथवा मंत्री पदों के लिए अपने समस्त आदर्शों को ताक पर रखकर बावले हो रहे हैं! स्वार्थ, पक्षपात और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। अपनी शक्ति, अपनी साधना और अपने गुणों के बल पर आगे बढ़ने के बदले वे दूसरों को पीछे ढकेल कर आगे बढ़ जाने की भावना प्रबल हो रही है। दुर्बलों की हड्डियों पर खड़े हो कर ऊंचे हो जाने में भी किसी को रंच-मात्र संकोच नहीं हो रहा है। ऐसे दानवी युग में पीड़ित मानवता और पागल दानवता के लिए ब्रज-साहित्य और संस्कृति का एक अपना विशेष संदेश है। यह वह संदेश है, जिसने अतीत में लोक-कल्याण किया और हम को हरि-नाम का संबल प्रदान कर दुखित हृदयों को परम तोष प्रदान किया। यह संदेश है त्यागमय प्रेम का, ऊंचा उठाने वाली दीनता का, मानव को मानव रखने वाली विनम्रता का और त्रय तापों का शमन करने वाली मुक्ति-प्रदायिनी आत्मिकता का। ब्रज की संस्कृति ने हमें सिखाया है कि सांसारिक सुख-साधनों का अर्जन करो, परंतु इन में लिप्त न हो। जब तुम्हारी आत्मा को ये पकड़ने लगें, तो इन पर तुलसी-पत्र रख कर मधुकरी मांगने को तुरंत प्रस्तुत हो जाओ। वृंदावन के विशाल मंदिरों

का इतिहास पुकार-पुकार कर हमें यही बता रहा है। मायावियों के लिए माया माया है, सच्चे ब्रजवासी के लिए तो वह छाया है! तभी तो रसखानि चिल्ला कर कहता है—

कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोई लाख-हजार।
मो संपति जदुपति सदा, माखन-चाखनहार॥

ब्रज-साहित्य ने इसी 'माखन-चाखनहार' को लाख-हजार से ऊँचा स्थान दे की शिक्षा दी है। अमृत और बिष तो सर्वत्र सदा से रहे हैं। चतुर वे हैं, जो अमृत को लेते और विष से बचते हैं। ब्रज-साहित्य ने सदैव अमृत का प्याला पिलाया है। जिसने पीया, वही आनंद-विभोर हो गया। यह वह रस है, जिसकी कोई तुलना नहीं। भौतिक सुख के पीछे मतवाले संसार को यदि वास्तव में सुखी होना है, तो उसे इसी रस की खोज में लौट कर आना होगा। मेरा विश्वास है कि एक न एक दिन वह अवश्य लौट कर आयगा और तब ब्रज-साहित्य और संस्कृति का सच्चा महत्व उसकी समझ में आयगा।

कितनी प्यारी है यह ब्रजभूमि, जिसने ऐसा अमृत संसार को दिया! इस भूमि में आते ही मैं तो आनंदमग्न हो जाता हूँ।

सघन कुंज, छाया सुखद, सरसिज-सुमन-समीर।
मन ह्वै जात अजौ वहै, वा जमुना के तीर॥

इसमें रंचमात्र अतिशयोक्ति नहीं है। धन्य है यह पावन भूमि, और धन्य है यहाँ की प्रेम-भावना! तभी तो अन्य सांसारिक व्यक्तियों की क्या, परम भक्त रसखानि तक की कामना रही कि—

मानुस हौं तो वही 'रसखानि', बसौ नित गोकुल गाँम के ग्वारन।
जो पसु हौं, तो कहा बस मेरौ, चरौ नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि कौ, जो भयौ ब्रज-छत्र पुरंदर कारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं, इन कालिंदी-कूल-कदंब की डारन॥

धन्यवाद!

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन

सप्तम अधिवेशन, जयपुर

अध्यक्षीय भाषण

१८ अक्टूबर १९५६

अेक हृदय हो भारत जननी

स्वागत समिति के सभापतिजी, प्रतिनिधिगण, बहनो और भाइयो !

सब से पहले तो मैं इस आयोजन के संचालकों को इस बात के लिये हृदय से धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने मुझ से यह सेवा ली है।

आज मुझे सन् १९४८ का वह समय स्मरण आ रहा है, जब स्वतन्त्र भारत का संविधान बन रहा था और देश की राजभाषा कौन हो—इस पर वाद-विवाद चल रहा था। उस समय अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का मैं ही सभापति था और जिस प्रकार आज जयपुर में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का यह सम्मेलन हो रहा है, उसी प्रकार वर्धा में प्रथम सम्मेलन हुआ था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति होने के कारण मैंने ही वर्धा के उस सम्मेलन का भी सभापतित्व किया था। कैसी-कैसी शंकाएँ थीं उस समय भारत की राजभाषा के सम्बन्ध में, केवल हिन्दी भाषा-भाषियों के मनों में ही नहीं, परन्तु ऐसे हर एक व्यक्ति के मन में जिस को भारत-देश और भारतीय संस्कृति से प्रेम था। यह विषय इतना विवादग्रस्त हो गया था कि संविधान की जब प्रायः समस्त धाराएँ स्वीकृत हो गयीं, तब भाषा विषयक धाराएँ संविधान सभा में आयीं। संविधान सभा के कांग्रेस-दल में दो बार जिस विषय पर मतदान हुआ और अंत में धन्यवाद है भगवान को कि जो भाषा जिस देश की राज्यभाषा होनी चाहिये थी, जो भाषा इस देश को एक सूत्र में बांधे रखने की क्षमता रखती थी, जो भाषा भारत को सच्चा भारत बना सकती थी, वही देवनागरी लिपि में लिखी जाने-वाली हिन्दी भारत की राज्यभाषा हो गयी। हिन्दी के विकास का पथ अभी भी कण्टकाकीर्ण हैं। परंतु, संसार की कोई भी शक्ति अब हिन्दी को उसके राजभाषा-पद से पदच्युत नहीं कर सकती।

संविधान में यह भी निश्चय किया गया था कि हिन्दी आगामी पन्द्रह वर्षों के भीतर अंग्रेजी का स्थान ले लेगी। इस सम्बन्ध में जैसा प्रयत्न होना आवश्यक था, वह नहीं हो रहा है। इस का सभी भारतीय संस्कृति से अनुराग रखनेवालों को और मुझे अत्यधिक खेद और क्षोभ है; परन्तु, दस-बीस वर्ष का समय किसी व्यक्ति के जीवनमें एक लम्बा समय हो सकता है, पर किसी देश या राष्ट्र के जीवन में नहीं। हिन्दी की उन्नति और विकास में देर लग सकती है, किन्तु कुछ देर हो या जल्दी, हिन्दी अपने उचित स्थान पर आयेगी और अवश्य आयेगी।

संविधान के मंतव्य के अनुसार पांच वर्षों के पश्चात् जिस हिन्दी-आयोग को नियुक्त होना था, वह भी हो गया। उस का प्रतिवेदन भी राष्ट्रपति के सामने आ गया है और केवल हिन्दी भाषा-भाषी ही नहीं; परन्तु, भारत से प्रेम रखने वाला प्रत्येक भारतीय इस प्रतिवेदन के दर्शन के लिए अत्यधिक उत्सुक है। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक हमारे राष्ट्रपति देशरत्न डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी शीघ्र ही उस प्रतिवेदन को प्रकाश में लाकर उस प्रतिवेदन के अनुसार हिन्दी के सम्बन्ध में आगे कार्यवाही करेंगे।

मैंने अभी निवेदन किया कि हिन्दी की प्रगति का पथ कण्टक विहीन नहीं है। इस के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

(१) भारत सरकार का हिन्दी के प्रति रुख।

(२) जिन राज्यों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन राज्यों के कतिपय निवासियों के मनों में इस बात की शंका कि हिन्दी की प्रगति का अर्थ उन राज्यों की राज्यभाषाओं की उन्नति में बाधा पड़ना है।

(३) पुराने हिन्दुस्तानी-समर्थकों का एक नया नारा कि हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में हिन्दी का जो रूप प्रचलित है, वह रूप राज्यभाषा-हिन्दी का नहीं हो सकता, अर्थात् हिन्दी के दो रूप होंगे, एक नहीं—यह आन्दोलन।

(४) हिन्दी-भाषा-भाषियों की भी हिन्दी के प्रति उदासीनता।

(५) अंग्रेजी के प्रति हमारा मोह।

भारत सरकार का हिन्दी के प्रति जो रुख है, वह इस बात का प्रधान कारण है कि हिन्दी के राजभाषा पद पर आसीन होने के पश्चात् पांच वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो जाने पर भी अब तक हिन्दी के साहित्य-निर्माण में जो कार्य होना चाहिए वह नहीं हुआ। इतना ही नहीं, साहित्य-निर्माण के विषय में कुछ मूल तत्त्वों और नीतियों का भी अब तक निर्णय नहीं हो सका। दृष्टांत के लिये हमारी पारिभाषिक

शब्दावली किस प्रकार की होगी, यह विषय भी अब तक विचाराधीन पड़ा है। भारत सरकार के शिक्षा-विभाग का यह मत जान पड़ता है कि हमारी पारिभाषिक शब्दावली अंग्रेजी से जैसीकी तैसी ले ली जाये। वे अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली को अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली मानते हैं, पर कुछ वर्ष पूर्व ही मैं संसार के प्रायः सभी देशों में घूम आया हूँ और अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली के सदृश संसार में कोई चीज नहीं। फिर मैंने इस विषय में प्रत्येक उन्नत देश के दूतावासों से पत्र-व्यवहार भी किया और इंग्लिस्तान, इंग्लिस्तान के दक्षिण, आफ्रिका, आस्ट्रेलिया, केनेडा और न्यूजीलैण्ड चार उपनिवेशों तथा अमेरिका के सिवा संसार के अन्य किसी देश में अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली नहीं चलती। उपयुक्त देशों को छोड़ शेष देशों की पारिभाषिक शब्दावली उन की अपनी भाषाओं की है और स्याम देश की शब्दावली तो हमारी संस्कृत भाषा से ली गई है।

भारत सरकार के इसी रुख का एक नया भयावह परिणाम हाल ही में निकला है और वह नई दिल्ली में हुए राज्य सरकारों के शिक्षामन्त्रियों के सम्मेलन में भाषा विषयक निर्णय। इस सम्मेलन में हमारे प्रधान-मन्त्री पंडित जवाहरलालजी नेहरू और हमारे शिक्षामन्त्री मौलाना अबुलकलाम आजाद के जो भाषण हुए तथा इस सम्मेलन के जो निर्णय हुए, उमसे इस देश के हिन्दी-भाषा-भाषी ही नहीं, पर अन्य भारतीय भाषाओं के जन भी अत्यधिक विक्षुब्ध हो गये हैं। पं० नेहरू और मौलाना आजाद ने इस सम्मेलनमें जो कुछ कहा है तथा इस सम्मेलन में जो निर्णय हुए हैं, वह अब किसी से छिपे नहीं हैं। एक-दो वाक्यों में इन निर्णयों को इस प्रकार कहा जा सकता है—माध्यमिक शिक्षा से भी नीची कक्षा ों में अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य किया जाये और विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम तो अंग्रेजी ही बना दिया जाये। इन निर्णयों का यह अर्थ होता है कि स्वराज्य के पूर्व राष्ट्रीय चेतना के आरम्भ होने के पश्चात् हमने अपनी माध्यमिक शिक्षा में हिन्दी और भारतीय भाषाओं को जो स्थान दिया तथा स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् अनेक विश्व-विद्यालयों ने जो हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया है, उसे अब तक के सारे कामों पर पानी फेर, नये सिरे से पुनः अंग्रेजी के आधिपत्य को लादना।

हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्थिति का कुछ स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया है, इस के लिये हम उन के अनुगृहीत हैं, परन्तु क्षमा किया जाये, यदि मैं यह कह दूं कि पण्डितजी भी स्थिति को पूर्णरूप से संतोषजनक नहीं कर पाये। फिर उन के शिक्षा-मन्त्रालय के मत और शिक्षा-मन्त्रियों के निर्णयों को भी उन्होंने बदलने की कोई घोषणा नहीं की है। कहा यह जाता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिये हमें जिस प्रकार के वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी तथा

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पश्चात् भी इसी प्रकार की—जो एक के बाद दूसरी योजनाएं आती जायेंगी। उन के लिये हमें जिन वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ती जायेगी, उन का निर्माण बिना अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के नहीं किया जा सकता। परन्तु मेरा मत इस मत के ठीक विपरीत है। मेरा यह मत है कि इस प्रकार के वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं का निर्माण हिन्दी और भारतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा दी जानेवाली शिक्षा से ही किया जा सकता है। ऐसे अधिकाधिक कार्यकर्ताओं के निर्माण के लिये शिक्षा की गति को तीव्रतर करना आवश्यक है। किसी विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा का अर्थ शिक्षा की गति को मन्द करना होगा। ऐसे वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं के निर्माण के लिए अंग्रेजी भाषा का आश्रय आवश्यक नहीं, आवश्यकता है हिन्दी और भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण की। रूस और चीन दो ऐसे विशाल देश हैं, जिन में योजना बनाकर कार्य करने में सब से अधिक सफलता मिली है। इन दोनों देशों में वैज्ञानिक कार्यकर्ता किसी विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा देकर नहीं तैयार किये गये हैं; वरन् उन की मातृभाषा द्वारा शिक्षा दी गयी है और इस शिक्षा के लिये आवश्यक साहित्य का निर्माण कराया गया है। फिर चीनी भाषा की तो लिपि ऐसी है, जिस में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण कठिन है। इतने पर भी उन्होंने इस कार्य को सफलतापूर्वक किया है। हमारी देवनागरी लिपि तो ऐसी वैज्ञानिक लिपि है कि उस लिपि में वैज्ञानिक साहित्य सरलता से तैयार किया जा सकता है। हां, जब तक यह साहित्य तैयार नहीं हो जाता, तब तक हम अंग्रेजी ग्रन्थों की सहायता ले सकते हैं। अंग्रेजी ग्रन्थों की सहायता विशेष कर अध्यापक-गण लें। वे इस प्रकार के अंग्रेजी ग्रन्थों से सहायता लेकर हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में अपने विद्यार्थियों को विषय समझायें। इस प्रणाली द्वारा शिक्षा देने से हम अधिक वैज्ञानिक कार्यकर्ता तैयार कर सकेंगे, इस में मुझे थोड़ा भी संदेह नहीं है। फिर क्या हमारी सरकार कभी इस बात को भी सोचती है कि जिन विश्व-विद्यालयों ने हिन्दी या भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बना लिया है, उन्हें अब फिर से अंग्रेजी भाषा को माध्यम बनाने में कितनी अड़चन होगी। ऐसे विश्व-विद्यालय में जो विद्यार्थी तैयार हो रहे हैं उन का भविष्य तो अत्यन्त अन्धकारमय हो जायेगा। शिक्षा-मन्त्रियों के ये निर्णय स्वराज्य के पूर्व और स्वराज्य के पश्चात् सरकार ने शिक्षा विषयक जितने भी आयोग नियुक्त किये —सेकण्डरी एज्युकेशन कमीशन, युनिवर्सिटी-कमीशन, उन सब के तथा हमारे संविधान के भी सर्वथा विरुद्ध जाते हैं। क्या हमारी सरकार यह चाहती है कि हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि भाषाओं के स्थान पर इस देश के निवासी अंग्रेजी भाषा-भाषी बन जायें। उस का यदि यह उद्देश्य भी हो तो इसमें उसे

सफलता नहीं मिल सकती। अंग्रेजों ने अपने पौने दो-सौ वर्ष के राज्य में इस देश पर अंग्रेजी भाषा को लादने का प्रयत्न किया था। पर उन्हें भी इस में सफलता नहीं मिली। हां, इस का यह नतीजा अवश्य निकला कि जो देश संसार में शिक्षा की दृष्टि से सिरमौर था, वहां सौ में से नब्बे निरक्षर रह गये। फिर सरकार की इस नीति से सरकार और जनता के बीच खाई बढ़ती जा रही है। हम इस देश में प्रजातन्त्र चलाना चाहते हैं। प्रजातन्त्र सफलतापूर्वक तब तक नहीं चल सकता, जब तक सरकार और जनता का पूर्ण सहयोग न हो। क्या हमारी ये पंचवर्षीय योजनाएँ भी बिना जनता के सच्चे सहयोग के सफल हो सकती हैं?

मनुष्य में और अन्य प्राणियों में मनुष्य की ज्ञान शक्ति के कारण जो अन्तर है, उस अन्तर का मुख्य रूप यह भाषा ही है। चूंकि केन्द्रीय सरकार के अधिकतर कार्य अंग्रेजी में होते हैं, इसलिये इस देश की जनता का अनुराग सरकारी कामों के प्रति दिनों-दिन कम होता जा रहा है। प्रजातन्त्र को सफलतापूर्वक चलाने के लिये जनता में जिस उत्साह की आवश्यकता है, वह उत्साह भी घट रहा है। ये अच्छे लक्षण नहीं हैं और ठीक समय पर हमें चेतने की आवश्यकता है।

हाल ही में दिल्ली में जो राज्य-सरकारों के शिक्षा मन्त्रियों के सम्मेलन के निर्णय हुए हैं, वे केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकारों और विश्व-विद्यालयों पर कोई बन्धनकारक नहीं हैं। ये निर्णय न तो केन्द्रीय सरकार को मानने हैं और न राज्य-सरकार को और न विश्व-विद्यालयों को। इस सम्मेलन का भाषा विषयक निर्णय तो रद्दी की टोकरी में फेंक देने योग्य है। हमें इन बातों के लिये एक देशव्यापी आन्दोलन खड़ा करना है, जिससे सरकार की भाषा-विषयक नीति में आमूल परिवर्तन हो और यह परिवर्तन होने पर सरकार प्रधानतया दो बातें करे :—

(१) शिक्षा का माध्यम हिन्दी अथवा भारतीय भाषाएँ हों।

और

(२) हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक एवं अन्य साहित्यनिर्माण के लिये केन्द्रीय सरकार कम-से-कम पांच करोड़ रुपये खर्च करे।

जो सरकार अन्य आर्थिक योजनाओं पर करोड़ों नहीं अरबों रुपये खर्च कर रही है, उसके लिये साहित्य-निर्माण के इस कार्य में पांच करोड़ रुपये खर्च करना कोई बड़ी बात नहीं। फिर यह रुपया तो एक प्रकार से पूंजी के रूप में लगाया जायेगा, जो इसी साहित्य की बिक्री से वापिस आ जायेगा।

जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन प्रान्तों की जनता के मन में जो यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि हिन्दी के उत्थान का अर्थ उन की प्रान्तीय भाषा का

पतन है। हमें इस भ्रम को दूर करने का प्रयत्न करना होगा। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि जिस प्रकार अंग्रेजी इस देश पर लादी गयी थी, उस तरह हम हिन्दी को किसी पर लादने के ईच्छुक नहीं हैं। अंग्रेजों ने अंग्रेजी को इस देश की शिक्षा का माध्यम बना दिया था। इस देश की धारासभाओं की भाषा भी अंग्रेजी कर दी थी। इस देश की अदालतों की भाषा भी अंग्रेजी बना दी थी। जिन राज्यों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहां की शिक्षा का माध्यम उस प्रान्त की भाषा ही होना चाहिये। इसी प्रकार वहां की धारा-सभा और वहां के न्यायालयों की भाषा भी उस प्रान्त की भाषा को ही रहना चाहिये। हिन्दी तो केन्द्र और अन्तर्प्रान्तीय कार्य की भाषा रहेगी। हां, द्वितीय भाषा के रूप में उसका समूचे देश में शिक्षण अनिवार्य होगा अन्यथा केन्द्र का कार्य नहीं चल सकता। जिन राज्यों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन राज्यों के निवासियों के लिये भी यह इसलिये अहितकर होगा कि केन्द्र की भाषा के बिना उन्हें केन्द्रीय सरकार में नौकरियां आदि न मिल सकेंगी।

पुराने हिन्दुस्तानी के समर्थकों ने जो यह नया नारा आरम्भ किया है कि हिन्दी के दो रूप होंगे, एक नहीं; इसके विरुद्ध भी हमें एक आन्दोलन करना होगा। परन्तु हमारा यह आन्दोलन तब तक सफल न होगा, जब तक हम हिन्दी भाषा के रूप को सरल-से-सरल रखने का प्रयत्न न करेंगे। जब मैं भाषा को सरल रखने की बात कहता हूं, तब यह भी कह देना चाहता हूं कि पद्य की भाषा और वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय भाषा बहुत सरल नहीं रह सकती। कविता में प्रसाद गुण तो होना ही चाहिये, परन्तु यदि पद्य की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो पद्य में भाषा का जो लालित्य आवश्यक होता है, वह चला जायेगा। वैज्ञानिक और शास्त्रीय भाषा तो सरल हो ही नहीं सकती। दृष्टांत के लिये यदि आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण अंग्रेजी के एम. ए. के सामने भी यदि ऐलोपैथी, इंजीनियरिंग अथवा इसी प्रकार का अन्य कोई शास्त्रीय ग्रन्थ रख दें, तो उस का एक अक्षर भी उस की समझ में न आयेगा। भाषा विषय के अनुसार चलती है, यह हमें नहीं भूलना है और इसलिये सब कुछ बोलचाल की भाषा में लिखा जाये, यह आन्दोलन सर्वथा अस्वाभाविक, निकम्मा और गुमराह करनेवाला है। हां, साधारण गद्य की भाषा सरल-से-सरल हो, उस में मेरा कोई मतभेद नहीं और हमें इस का प्राणपण से प्रयत्न करना चाहिये।

हिन्दी भाषियों की हिन्दी के प्रति जो उदासीनता है, उस के सच्चे दर्शन हमें भारतीय संसद में होते हैं। संसद के गत आम चुनाव के पश्चात् संसद में एक संसदीय हिन्दी-परिषद् नामक संस्था का निर्माण हुआ है। इस संस्था द्वारा इस

बात का निरन्तर प्रयत्न किया गया कि संसद के हिन्दी-भाषा-भाषी सदस्य हिन्दी में ही अपने भाषण दें तथा अपने प्रस्ताव, प्रश्न आदि हिन्दी में ही भेजें; परन्तु, संसदीय हिन्दी-परिषद् को इस दिशा में बहुत कम सफलता प्राप्त हुई है। ये हिन्दी-भाषा-भाषी सदस्य चाहे कितनी ही फूहड़ अंग्रेजी क्यों न बोलते हों, अंग्रेजी के एक-एक वाक्य में चाहे तीन-तीन व्याकरण की भूलें करते हो; पर न जाने क्यों इनके मस्तिष्क मे यह बात घुसी हुई है कि जब तक अंग्रेजी नहीं बोलेंगे, तब तक संसद पर इन की विद्वता की छाप न पड़ेगी। संसद के बाहर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है। हमें एक आन्दोलन करना होगा और आवश्यकता हुई, तो ससद के ऐसे सदस्यों के घरों पर धरना तक देना होगा कि उन का हिन्दी के प्रति जो रुख है, उस में परिवर्त्तन हो।

अंग्रेजी राज्य के चले जाने पर भी अंग्रेजी के प्रति हमारा मोह दूर नहीं हुआ है। इस देश के विद्वानों के मुख से आये दिन हम कहीं-न-कहीं और किसी-न-किसी प्रकार यह सुना करते हैं कि अंग्रेजी को अपने वर्तमान पद से पदच्युत कर हम इस देश को रसातल में ले जायेंगे। विदेशी भाषा के प्रति मैंने इस देश का जैसा अनुराग देखा, वैसा दुनिया के किसी देश में नहीं। मैं इस सम्बन्ध में आप को चीन का अपना एक अनुभव बताता हूं। जब मैं चीन गया, उस समय मैं वहां भारतीय-चीनी मैत्री सघ का मेहमान हुआ था। इस संघ के उपसभापति श्री चैन मुझे लेने पीकिंग स्टेशन पर आये थे। पहले दिन उन की और मेरी बात चीत एक दुभाषिये के द्वारा हुई। वे चीनी भाषा में जो कहते, उस का अंग्रेजी में यह दुभाषिया अनुवाद करता और मैं अंग्रेजी भाषा में कहता, उस का यह दुभाषिया चीनी भाषा में उलथा करता। दूसरे दिन जब श्री चैन मुझ से मिलने आये, तब उन्होंने धड़ाके से अंग्रेजी बोलना आरम्भ किया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ क्यों कि एक रात भर में जो कोई व्यक्ति इतनी अंग्रेजी भाषा सीख नहीं सकता। जब मैंने अपना आश्चर्य व्यक्त किया, तब उस आश्चर्य को दूर करते हुए श्री चैन ने मुझ से कहा कि वे तो बीस वर्ष तक योरप और अमेरिका में रह चुके हैं और इंग्लैण्ड के केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय के स्नातक हैं; परन्तु चीनी सरकार का यह आदेश है कि किसी विदेशी से विदेशी भाषा में बातचीत न की जाये, इसीलिये वहां विदेशियों से दुभाषिये को बीच में रख बातचीत की जाती है। पर चूंकि मैं केवल चार दिन पीकिंग में रहनेवाला हूं इसलिये इस रस्म-अदाई के बाद उन्होंने मेरे सुभीते के लिये मुझसे अंग्रेजी में बातचीत करना आरम्भ कर दिया। कहाँ चीनियों का अपनी भाषा के प्रति यह प्रेम और कहां हमारे देश के लोगों का अंग्रेजी के प्रति विराट् अन्धा मोह !

हिन्दी भाषा के उत्थान में जो रोड़े हैं, वे सभी भारतीय भाषाओं के उत्थान के पथ में भी हैं। भारतीय भाषाओं की अवहेलना कर हिन्दी की एकाकी उन्नति एक असंभव कल्पना है। हिन्दी के साथ ही हमने इस देश की अन्य भाषाओं को भी अपने संविधान में सम्मानप्रद स्थान दिया है। हिन्दी को हमने राजभाषा पद पर बिठाया है, पर यदि कोई यह कहे कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा है, तो यह बहुत बड़ी भूल होगी। भारत की जो अन्य भाषाएँ हमारे संविधान में रखी गयी हैं, वे सब इस राष्ट्र की राष्ट्रीय भाषाएँ हैं, किसी परराष्ट्र से आई हुई नहीं। हिन्दी को राजभाषा के पद पर इसलिये नहीं बिठाया गया है कि उस का साहित्य इस देश की अन्य भाषाओं से अधिक समृद्ध है; कदाचित बंगला, तमिल आदि भाषाओं का साहित्य हिन्दी से भी ऊंचा हो ; परन्तु हिन्दी को राजभाषा पद इसलिये दिया गया कि इस देश के आधे निवासियों की वह मातृभाषा है और यदि हम अपने देश के दक्षिण के कुछ भागों को छोड़ दें तो समूचे भारत में हिन्दी समझी जाती है। देश की राजभाषा एक ही हो सकती थी, इस कारण वह राजभाषा-पद पर आसीन की गयी। परन्तु, उसकी उन्नति अन्य भारतीय भाषाओं की उन्नति के बिना असंभव कल्पना है। हिन्दी की और अन्य भारतीय भाषाओं की कोई स्पर्धा नहीं। ये सब भाषाएँ एक ही पथ की पथिक हैं। हमारी स्पर्धा तो अंग्रेजी भाषा से है और उसे अपदस्थ किये बिना हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की उन्नति असम्भव है। जब मैं यह कहता हूं, तब यह न समझ लिया जाये कि मैं अंग्रेजी भाषा का कोई शत्रु हूँ। ज्ञान जहां से भी प्राप्त हो, हमें उसे लेना है। साथ ही अब यातायात के शीघ्रगामी साधनों के कारण यह विश्व बहुत छोटा हो गया है और एक स्थान से दूसरे स्थान का संपर्क बहुत बढ़ गया है। अपने अन्तर्राष्ट्रीय कामों के लिये हमें अभी अंग्रेजी भाषा की आवश्यकता है। अंग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा का हम ज्ञान प्राप्त न करें, मेरा कथन यह कदापि नहीं है। परन्तु इस देश का हर व्यक्ति अंग्रेजी पढ़े, अंग्रेजी हमारी माध्यमिक शिक्षा में अनिवार्य बनाई जाये और हमारी उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा रहे, इसकी थोड़ी भी आवश्यकता नहीं।

वह बड़ा शुभ दिन था जिस दिन काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना की और वे और भी अधिक शुभ दिन थे, जिन दिनों राष्ट्रपिता बापू की प्रेरणा से मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा और वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने स्थापना की। इस दोनों संस्थाओं ने भारत के जिन भागों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन भागों में हिन्दी के प्रचार का बड़ा भारी काम किया है। फिर यह समितियाँ सम्मेलन द्वारा संस्थापित होने पर भी एक प्रकार से अपने कार्य-क्षेत्रों में पूर्ण स्वतंत्र हैं। दक्षिण भारत हिन्दी

प्रचार सभा की अपेक्षा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सम्मेलन से अधिक निकट का सम्बन्ध रहा। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तो हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की एक उपसमिति ही है। परन्तु, सम्मेलन की उप-समिति होने पर भी यह अपने कार्य में स्वतन्त्र है। इसका उल्लेख सम्मेलन की नियमावली में भी स्पष्ट रूप से किया गया है। जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है उन प्रान्तों में कार्य करने के लिये उन प्रान्तों की आवश्यकता तथा सुविधा को देखकर सम्मेलन से राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति को इस सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है। इस संस्था में कार्य करनेवाले ९० प्रतिशत इसके प्रचारक, केन्द्र व्यवस्थापक, कार्यकर्ता आदि ऐसे व्यक्ति हैं जिन की मातृभाषा हिन्दी नहीं है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की परीक्षाओं में प्रतिवर्ष जो व्यक्ति बैठते और उत्तीर्ण होते हैं, वे ऐसे लोग हैं जिन की मातृभाषा हिन्दी नहीं है और इन की संख्या प्रतिवर्ष हजारों नहीं लाखों तक जाती है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा जिन क्षेत्रों में काम कर रही हैं, वहां के लोगों ने इन संस्थाओं को अपनाया है, और ये संस्थाएं भी इन्हीं लोगों के साथ अभिन्न हृदय हो अपने कार्य में दत्तचित्त हैं। हिन्दी के दो रूप हैं---इस झूठे नारे को उठाकर कुछ दिनों से इस देश की एक राज्य सरकार ने राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की परीक्षाओं अमान्य ठहराया था। हर्ष की बात है कि केन्द्रीय सरकार ने हाल ही में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की परीक्षाओं को मान्यता दी है।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा में किसी प्रकार की स्पर्धा नहीं। जिस क्षेत्र में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति कार्य करती है उस क्षेत्र में दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा नहीं और जिस क्षेत्र में दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा कार्य करती है, उस क्षत्र में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति नहीं। मेरा मत है कि भविष्य में भी यही बात बनी रहनी चाहिये।

जिस राजस्थान प्रान्त में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का यह अधिवेशन हो रहा है, उस राजस्थान प्रान्त की भाषा राजस्थानी को मैं कोई हिन्दी-भाषा से पृथक् भाषा नही मानता। जिस प्रकार ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी आदि भाषाएं भी हिन्दी के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं, उसी प्रकार राजस्थानी भाषा भी; परन्तु विभाजन के बाद सिंधी भाइयों के इस प्रदेश में आने से सिंध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति के नाम से राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति ने यहां कार्य आरम्भ किया। और इन ८-९ वर्षों में ही राजस्थान में इस संस्था ने शिक्षा के प्रसार का यथेष्ट काम कर डाला है। शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है। यहां पढ़े-लिखे की संख्या केवल ८ प्रतिशत है,

इसलिये यह संस्था परीक्षा और प्रचार का कार्य भी कर रही है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की परीक्षाओं का शुल्क बहुत कम है। प्रतिवर्ष राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के केन्द्रों और प्रमाणित प्रचारकों की संख्या भी यहां बढ़ती जा रही है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के तत्वाधान में राजस्थान में शिक्षा-प्रसार की एक योजना बनी है, मैंने इस योजना को देखा है। और मैं राजस्थान की जनता तथा राजस्थान की सरकार से अनुरोध करता हूं कि वे इस संस्था के कार्य में पूरा-पूरा अनुराग लेकर इसे सफल बनायें।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति को एक बहुत बड़ा कार्य और करना है। उसने जिस प्रकार हिन्दी भाषा का भारत के उन क्षेत्रों में प्रचार करने का प्रयत्न किया जहां की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उसी प्रकार उसे अब अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी हिन्दी को ले जाने का यत्न करना चाहिये। भारत के बाहर भी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की कुछ शाखाएँ स्थापित हुई हैं। इनकी संख्या उसे अधिक से अधिक करना है। हिन्दी के राजभाषा-पद पर आसीन होने के पश्चात् मेरी यह कल्पना रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में और इस क्षेत्र के राष्ट्रसंघ (यू० एन० ओ०) में उस का वैसा ही स्थान होना चाहिये, जैसा अंग्रेजी, फ्रान्सीसी, रूसी और स्पेनिश भाषाओं का है। इस सम्बन्ध में मैंने लोकसभा में तथा लोकसभा के बाहर भी अनेक अवसरों पर अपने भाषणों में कहा है। इसी वर्ष के मई मास में बर्मा में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का एक अधिवेशन हुआ था और उस का उद्‌घाटन करने मैं रंगून गया था। इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष एक बर्मी भाषा-भाषी ऊ पारग नामक महानुभाव थे और इस सम्मेलन ने यह प्रस्ताव भी स्वीकृत किया है कि राष्ट्रसंघ और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हिन्दी को वही स्थान दिया जाय, जो अंग्रेजी, फरासीसी, रूसी और स्पेनिश को प्राप्त है। हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से ही मैं यह बात नहीं कहता; परन्तु, हिन्दी-भाषा के प्रचार के साथ ही हिन्दी भाषा का जो संदेश है, उस दृष्टि से भी मैं इस बात को कह रहा हूँ। हिन्दी जिन संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से निकली है, उन भाषाओं के साहित्य में प्राणिमात्र के प्रति स्नेह और अनुकम्पा, प्राणिमात्र के सुख में अपना सुख और प्राणिमात्र की सार्थकता में अपनी सार्थकता, ये आधारभूत तत्त्व रहे हैं; इसीलिये उस साहित्य का मूल मन्त्र है—"वसुधैव कुटुम्बकम्"। संस्कृत और प्राकृत के साहित्य से हिन्दी को भी यह मूल मन्त्र मिला है और इसीलिये हिन्दी के सन्त-साहित्य जैसा साहित्य संसार की अन्य भाषाओं में दुर्लभ है—"वसुधैव कुटुम्बकम" सिद्धान्त एक दार्शनिक खोज पर अवलंबित है। यह खोज हमारे ऋषि-महर्षियों ने की थी। इस खोज से उन्होंने जाना था कि यह समस्त सृष्टि यथार्थ में एक ही तत्त्व है। आधुनिक

काल के वैज्ञानिकों की खोज भी, इसके आगे नहीं जा सकी और यदि यह दृष्टि एक ही तत्त्व है तो मैं जो हूं वही आप और जो आप हैं, वही मैं, और जो आप और मैं हूँ, वही सारी सृष्टि है; अतः, मेरा व्यवहार आप से और आप का व्यवहार मुझ से और हमारा व्यवहार सृष्टि से वैसा ही होना चाहिये, जैसा हम अपने से करते हैं। इस खोज में जो यथार्थ सत्य है, उस को जानने के पश्चात् अहिंसा तो आप-से-आप आ जाती है। आधुनिक काल में महात्मा गान्धी ने अपने जीवन-दर्शन में ये ही दो तत्त्व सत्य और अहिंसा को आधारभूत माना था। युद्ध के भय से थरथराते हुए संसार को इन्हीं तत्त्वों के ज्ञान और उनके अनुसार कर्म की आवश्यकता है। हमारा साहित्य यही संदेश देता है।

अतः केवल हिन्दी प्रचार की दृष्टि से नहीं, परन्तु संसार के कल्याण की दृष्टि से भी हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय स्थान, आवश्यक है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को यह महान् कार्य करना है।

'एक हृदय हो भारत जननी'

जय हिन्द

जय हिन्दी

निखिल भारत बंग-साहित्य-सम्मेलन चौंतीसवें अधिवेशन जबलपुर के अंतर्गत हिन्दी विभागीय सम्मेलन

उद्घाटन भाषण

२९ दिसम्बर, १९५८

देवियो और सज्जनो,

निखिल भारत बंग साहित्य सम्मेलन के इस ३४ वें अभिवेशन के समय इसी सम्मेलन के अन्तर्गत हिन्दी-साहित्य के सम्बन्ध में आप जो एक हिन्दी विभागीय सम्मेलन कर रहे हैं, यह मैं केवल बंग और हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं, किन्तु समूचे भारतवर्ष के लिए एक सौभाग्य की बात मानता, हूं, क्यों कि बिना एक निखिल भारतीय भाषा के समस्त भारत का एक सूत्र में बंधे रहना सम्भव नहीं है। इसी दृष्टि से स्वतंत्र भारत का संविधान बनाते समय हमने हिन्दी को भारत की राज्य-भाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित किया था।

निखिल भारत बंग-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों में हिन्दी-साहित्य के सम्बन्ध में इस प्रकार का विभागीय सम्मेलन कदाचित् सदा से ही होता आया है। मैंने इस संस्था के दिल्ली के एक अधिवेशन में इसी प्रकार का एक विभागीय सम्मेलन देखा था। दिल्ली के उस सम्मेलन का सारा प्रबन्ध स्वर्गीय डाक्टर श्यामा-प्रसाद मुकर्जी ने किया था और उस अधिवेशन के हिन्दी विभागीय सम्मेलन में मुझे भी कुछ कहने के लिए डा० मुकर्जी ने आमंत्रित किया था। आज आपने मुझे इस हिन्दी विभागीय सम्मेलन का उद्घाटन करने के निमित्त बुलाया है। यह मैं अपना सौभाग्य मानता हूं और इसके लिए मैं आप को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

निखिल भारतीय बंग-साहित्य-सम्मेलन बंगभाषा और बंगभाषा के साहित्य-कारों की आज कदाचित् सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं सब से अधिक प्रतिनिध्यात्मक संस्था हो गया है। इस की स्थापना सन् १९२२ में हुई थी और यह इस का ३४वां अधिवेशन है। इस समय जबकि यह कहा और माना जाता है कि बंगभाषा-भाषी हिंदी-भाषा के विरोधी हैं, तब इस संस्था के ३४ वें अधिवेशन के अंतर्गत

इस प्रकार का सम्मेलन इस बात का द्योतक है कि बंगभाषा-भाषियों को हिन्दी का विरोधी कदापि नहीं माना जा सकता।

बंग-भाषा और हिंदी भाषा का सम्बन्ध बहुत पुराना है और यह संबंध अत्यन्त मैत्री का संबंध रहा है।

प्राचीन आर्यों की भाषा का वास्तविक रूप क्या रहा होगा, यह कहना या जानना, बहुत ही कठिन है। आर्यों की प्राचीनतम प्राप्य आर्य पुस्तक ऋग्वेद की रचना एक ही समय अथवा एक ही स्थान पर नहीं हुई। इसलिए इसकी भाषा के आधार पर भी कोई मत निर्धारित करना सम्भव नहीं; पर यह आवश्य कहा जाता है कि उस काल में भाषा का कोई रूप स्थिर न था और वह राष्ट्रीय न होकर प्रादेशिक थी, अर्थात् उसमें एक समुदाय की भाषा जैसी एक रूपता न होकर भिन्न-भिन्न वर्गों और क्षेत्रों की भाषा जैसी बिखरापन था। उस समय भी भारतीयता को एक रूप देने के लिए यह आवश्यक माना गया कि हमें एक भाषा की आवश्कता है। धीरे-धीरे इस एक भाषा ने जो रूप ग्रहण किया वह संस्कृत भाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

परंतु सृष्टि में सभी कुछ परिवर्तनशील है; अतः यद्यपि बहुत काल तक संस्कृत भाषा का समूचे भारत पर अखंड भाषा के रूप में स्थान रहा तथापि धीरे-धीरे उस का रूप दुरूह होने लगा और इसी कारण उस का चलन भी कम होने लगा, संस्कृत से प्राकृत भाषा का जन्म हुआ। पहली प्राकृत को "पाली" कहा जाता है जिसने कालान्तर में साहित्यिक प्राकृत का रूप धारण किया और इसके चार रूप हुए "महाराष्ट्री", "शौरसेनी", "मागधी" और "अर्ध मागधी"। इन्हीं भाषाओं ने उत्तर भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं को जन्म दिया है ; अतः ये समस्त भाषाएं एक दूसरे की सहोदरा बहनें हैं।

बंगभाषा और हिंदी का तो जितना निकट का संबंध रहा है, उतना किन्हीं भी आधुनिक भारतीय भाषाओं का नहीं। एक समय-था जब बंग-भाषा और हिंदी भाषा का इतना मिला-जुला रूप था कि कौन लेखक किस भाषा का है, यही कहना कठिन था। अनेक ऐसे महाकवि हुए हैं, जिन्हें बंग-भाषा अपना कवि और हिंदी-भाषा अपना कवि मानती है। इन में प्रमुख हैं श्री विद्यापति ठाकुर आदि। आधुनिक हिंदी तो आधुनिक बंगभाषा की ऋणी भी जितनी अधिक है, उतनी किसी भी अन्य आधुनिक भारतीय भाषा की नहीं। जब आधुनिक हिंदी-साहित्य के विकास के आरम्भ का काल था और हिंदी में मौलिक लेखक यथेष्ट संख्या में नहीं थे, उस समय हिंदी ने बंग-भाषा से क्या-क्या प्राप्त नहीं किया था। बंग-भाषा के महाकवि माइकेल मधुसूदनदत्त, कवि-सम्राट् गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महान्

नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय, उपन्यास-सम्राट् बंकिमचन्द्र और शरत्चंद्र की रचनाओं से हिंदी का साहित्य परिप्लावित है। इस प्रकार हिंदी और बंगभाषा में बहुत निकट का सम्बन्ध है।

भारत के आधुनिक राष्ट्रीय विकास काल में बंग प्रदेश सबसे आगे रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बंगाल ने श्रेष्ठतम देशभक्तों को जन्म दिया। इन में प्रायः सभी महापुरुषों ने यह अनुभव किया कि भारतीय उत्थान के लिए भारत की एक-सूत्रता अनिवार्य है। आधुनिक काल में यद्यपि इस भारतीय एकता का रूप अंग्रेजी राज्य की देन है, तथापि इन भारतीय मनीषियों ने भावी भारत के लिए इस एकरूपता की पुष्टि को नितांत आवश्यक माना और इस एकता के लिये एक ऐसी भाषा को आवश्यक समझा, जो देश के अधिक निवासियों की मातृभाषा हो, और जिसे देश के अधिकांश व्यक्ति समझते हों, ऐसी एक भाषा के साथ ऐसी एक लिपि भी आवश्यक मानी गयी, जिस का अधिक से अधिक प्रचार तो हो ही, साथ ही जो वैज्ञानिक दृष्टि से भी अधिक से अधिक निर्दोष हो और जिसका प्रयोग समस्त भारतीय भाषाओं में हो सके।

आधुनिक भारत की जनजागृति के प्रथम महापुरुष जो बंगाल के थे, उन राजा राममोहन राय ने सर्वप्रथम यह कहा कि हिन्दी ही इस प्रकार की भारतीय भाषा हो सकती है और इसके पश्चात् तो बंगाल में ही हिन्दी भाषा और नागरी लिपि इस स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिये सर्वप्रथम जनजागृति के अनेक नेताओं ने आवाज उठायी।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती एक बार लगभग तीन मास कलकत्ता रहे। उस समय उनका सम्पर्क बंग भाषा के अनेक महात्जनों से हुआ। इनमें से कुछ के नाम उनकी उस जीवनी में दिये गये हैं जो श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने बंगला में 'दयानन्द चरित्' नाम से लिखी है। ये महानुभाव थे श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर, श्री द्विजेन्द्रनाथ, पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति, पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न, श्री राजनारायण बसु, श्री केशवचन्द्र सेन, पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय स्वामी जी का एक बृहत् जीवन चरित्र लिखना चाहते थे। इस कार्य के लिये अपने खर्च पर उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया था और जहां जहां स्वामी जी गए थे वहां वहां मुखोपाध्यायजी भी गये थे। स्वामी-जी के जीवन की उन्होंने अत्यन्त प्रामाणिक सामग्री एकत्र की थी और इसके लिए उन्होंने अपने जीवन के लगभग अठारह वर्ष लगाये थे। परन्तु जब वे इस सामग्री को इकट्ठी कर काशी में स्वामी जी की जीवनी लिखने बैठे तब अचानक चल बसे। इस सारी संगृहीत सामग्री मेरठ निवासी विद्वद्वर स्वर्गीय घासीरामजी, एम० ए०

ले आये और इस सामग्री के आधार पर उन्होंने हिन्दी में स्वामीजी की लगभग एक सहस्र पृष्ठों की बृहद् जीवनी लिखी। इस जीवनी के एकादश अध्याय में पृष्ठ २२७ पर जो कुछ लिखा है, उससे जान पड़ता है कि स्वामी जी को हिन्दी भाषा में भाषण देने के लिये बंगाल के प्रसिद्ध नररत्न श्री केशवचंद्र सेन ने ही परामर्श दिया था। स्वामीजी की जीवनी में लिखा हुआ है—

"केशव बाबू (श्री केशवचन्द्र सेन) ने स्वामी जी (स्वामी दयानन्द सरस्वती) को संस्कृत के बदले भाषा (हिन्दी) में व्याख्यान देने का परामर्श दिया था। इस परामर्श को स्वामीजी ने स्वीकार किया।"

बंगला के उपन्यास-सम्राट् बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने हिन्दी के विषय में जो कुछ लिखा है उसे भी यहां उद्धृत करना अनुचित न होगा।

"अंग्रेजी के विषय में लोगों की जो कुछ भी भावना हो, पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा कार्य नहीं चल सकता। हिन्दी की पुस्तकें लिखकर और हिन्दी बोलकर भारत के अधिकांश भाग को निश्चय ही लाभ हो सकता है। यदि हम देश में बंगला और अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या का पता चलायें, तो हमें साफ प्रकट हो जायगा कि वह कितनी न्यून है। जो सज्जन हिन्दी भाषा द्वारा भारत में एकता पैदा करना चाहते हैं, वे निश्चय ही भारतबन्धु हैं। हम सबको संगठित होकर इस ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिये। भले ही इस को पाने में अधिक समय लगे, परन्तु हमें सफलता अवश्य मिलेगी।"

न्यामूर्ति श्री शारदाचरण मित्र तो देवनागरी लिपि के इतने प्रेमी थे कि उन्होंने "देवनागर" नामक मासिक पत्र निकाला, जिसमें समस्त भारतीय भाषाओं का साहित्य देवनागरी लिपि में छपता था. उन्होंने हिन्दी भाषा के संबंध में कहा था—"हिन्दी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। कलकत्ते की "एक लिपि विस्तार-परिषद्" समस्त भारतवर्ष में एक नागरी लिपि का प्रचार करने में तन-मन से लगी हुई है। यद्यपि मैं बंगाली हूं, तथापि मेरे दफ्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिये वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं हिन्दी स्वच्छन्दता के साथ बोलने लगूंगा और प्लेटफार्म के ऊपर खड़ा होकर हिंदी में वक्तृता दूंगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा, जिस दिन मैं सारे भारत वासियों के साथ साथ हिंदी में वार्तालाप करूंगा।

पुरातनकाल को भी जाने दीजिए। सन् १९२८ की २९ दिसम्बर को महात्मा गांधी के सभापतित्व में कलकत्ता में राष्ट्रभाषा सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस इस सम्मेलन की स्वागत समिति के सभापति थे। इस पद से भाषण करते हुए नेताजी ने कहा था—"सब से पहले मैं एक गलत-फहमी दूर कर देना चाहता हूं, कितने ही सज्जनों का खयाल है कि बंगाली लोग या तो हिंदी

के विरोधी होते हैं, या उसके प्रति उपेक्षा करते हैं। यह बात भ्रमपूर्ण है, और इस का खंडन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। मैं व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहता, पर इतना तो अवश्य कहूँगा कि हिंदी-साहित्य के लिये जितना कार्य बंगालियों ने किया है, उतना हिंदी-भाषी प्रांत छोड़ कर और किसी प्रांत के निवासियों ने शायद ही किया हो।... मैं इस बात को मानता हूँ कि बंगाली लोग अपनी मातृभाषा से अत्यन्त प्रेम करते हैं और यह कोई अपराध नहीं है। शायद हम में से कुछ ऐसे आदमी भी हैं, जिन्हें इस बात का डर है कि हिन्दीवाले हमारी मातृभाषा बंगला को छुड़ाकर उसके स्थान पर हिंदी रखवाना चाहते हैं, यह भ्रम भी निराधार है। हिंदी प्रचार का उद्देश्य यही है कि जो काम आज अंग्रेजी से लिया जाता है, वह आगे चलकर हिंदी से लिया जाय।.... महात्माजी से और आप लोगों से मैं प्रार्थना करूंगा कि हिंदी-प्रचार का जैसा प्रबंध आपने मद्रास में किया है, वैसा बंगाल और आसाम में भी करें। स्थायी कार्यालय खोलकर आप लोग बंगाली छात्रों तथा कार्यकर्त्ताओं को हिंदी पढ़ाने का इंतजाम कीजिए। इस कलकत्ते में कितने ही बंगाली छात्र हिंदी पढ़ने को तैयार हो जायेंगे, पढ़ानेवाले चाहिये!...अंत में बंगाल के निवासियों से और खास तौर पर यहां के नवयुवकों से मेरा अनुरोध है कि आप हिंदी पढ़ें।...प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिन्दी-प्रचार से मिलेगी, उतनी किसी दूसरी चीज से नहीं मिल सकती। अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं की भरपूर उन्नति कीजिये, इसमें कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन कर सकते हैं पर सारे प्रांतों की सार्वजनिक भाषा का पद हिंदी को ही मिला है।.... यदि हम लोगों ने तन-मन-धन से प्रयत्न किया, तो वह दिन दूर नहीं है, जब भारत स्वाधीन होगा और उसकी राष्ट्रभाषा होगी हिंदी।"

इन महत् जनों ने ही हिन्दी के विषय में कुछ कहा हो यही नहीं; बंगाल में हिन्दी का जो काम हुआ, वह भी इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। हिन्दी का सब से पहला प्रेस कलकत्ता में ही बना। हिन्दी का सब से पहला समाचार-पत्र "बिहार बन्धु" कलकत्ते से ही निकला। कलकत्ते से निकलने वाले 'हितवार्त्ता' नामक पत्र के स्वामी एक बंगाली सज्जन ही थे। 'हिन्दी बंगबासी' श्री अमृतलाल जी चक्रवर्ती के सम्पादकत्व में कलकत्ते से ही निकला था। सब से पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय ने ही हिन्दी को एम० ए० में स्थान दिया। बंगाल के बाहर भी कितने बंगालियों ने हिन्दी का काम किया है। बिहार में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचारार्थ श्री भूदेव मुकर्जी और पंजाब में श्री नवीनचन्द्र राय ने जो काम किया है, वह क्या कभी भुलाया जा सकता है?

ऐसे बंगाल में हाल ही में हिन्दी के विरोध में एक आवाज उठी है। हिन्दी के सम्बन्ध में बंगाल की जो परम्परा रही है, यह आवाज उसके सर्वथा विपरीत जाती है। परन्तु बंगीय जनता इस हिन्दी विरोधी आन्दोलन के कहां तक साथ है यह एक अत्यन्त सन्दिग्ध प्रश्न है।

हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र के बाहर जो कलकत्ता शहर हिन्दी के प्रसार में सब से आगे रहा है, उसी कलकत्ता नगर में कुछ दिन पूर्व कतिपय हिन्दी-विरोधियों का एक सम्मेलन "आल इण्डिया लेंग्वेज कान्फरेन्स" के नाम से हुआ था और इस सम्मेलन ने जो अपनी एक रिपोर्ट अंग्रेज़ी में निकाली है, उस का नाम है 'माडर्न इंडिया रिजेक्ट्स हिन्दी' इस विषय में सर्वप्रथम तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि जिन चौदह भाषाओं को हमारे संविधान में स्थान दिया गया है, उन चौदह भाषाओं में से बहुत कम भाषाओं के लोग कलकत्ते के इस सम्मेलन में उपस्थित थे, दूसरे यदि उपस्थित सज्जनों में से कुछ महानुभावों को छोड़ दिया जाय, तो शेष अधिकांश ऐसे व्यक्ति थे, जिन का अपनी भाषा अथवा अपने राज्य में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। कलकत्ते के इस सम्मेलन की अपेक्षा जब भारतीय संविधान-सभा में भाषा का प्रश्न चल रहा था, उस समय दिल्ली में जो 'राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद्' हुई थी, उस में कहीं अधिक भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे और इन प्रतिनिधियों में प्रायः सभी अपनी अपनी भाषा के सर्वमान्य व्यक्ति थे। इस राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद् में केन्द्र की भाषा के विषय में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, वह सारा का सारा उद्धृत करने योग्य है:—

I. This Convention of scholars of the chief languages of the Indian Union assembled in New Delhi resolves that Hindi with Devanagari as its character be adopted in the Constitution of India as the Rashtra Bhasha of the Union of India.

II. This Convention further resolves :

(1) That the dignity of the nation demands that in the international sphere the use of Hindi in place of English shall begin immediately that for Central and inter-provincial purposes Hindi shall displace English by gradual degrees but progressively and that the maximum period for this displacement shall be ten years.

(2) That the States of the Union shall be free to use regional languages for all purposes within the State.

(3) That in the educational system of all provinces the teaching of two Indian languages (i. e., the regional language and the national language or in the case of Hindi speaking provinces the national language and another provincial language) shall be made compulsory.

III. This Convention also resolves that Sanskrit shall be used by the Union for all decorative purposes, such as mottoes, titles and the like.

कलकत्ते की इस 'आल इंडिया लेंग्वेज कान्फरेन्स' और दिल्ली की राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद् दोनों को सामने रखने पर अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार शैक्सपियर ने अपने नाटक "हैमलेट' में एक स्थान पर जो निम्नलिखित वाक्य लिखा है वह याद आये बिना नहीं रह सकता—

"Look at this picture and that."

कहा जाता है, भारत के वे क्षेत्र, जिन की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, विशेषकर दक्षिण भारत के राज्य, हिन्दी के विरोधी हैं। यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण है। कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य की हैसियत से मुझे देश में कांग्रेस की नव-गठित मंडल कांग्रेस कमेटियों की देखरेख का काम सौंपा गया है। इस काम के लिए मैंने हाल ही में समूचे भारतवर्ष का दौरा किया है। दक्षिण भारत में चार राज्य हैं—आन्ध्र, मद्रास, केरल और मैसूर। इन चारों राज्यों में आन्ध्र की भाषा तैलुगु है, मद्रास की तमिल, केरल की मलयालम और मैसूर की कन्नड़। तमिल भाषा-भाषी क्षेत्र को छोड़ कर दक्षिण भारत में हिन्दी का कहीं भी कोई विरोध नहीं है; वरन् आन्ध्र केरल और मैसूर में हिन्दी का बड़ा भारी समर्थन है। तमिल भाषी क्षेत्र में हिन्दी का अवश्य थोड़ा-बहुत विरोध है, परन्तु इस क्षेत्र में भी जैसे-जैसे हिन्दी का विरोध बढ़ा है, वैसे-वैसे हिन्दी सीखने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। मद्रास में हाल ही में ११ मई, १९५८ को मद्रास राज्य की "दि लैंग्वेज कन्वेन्शन" नाम से एक परिषद् हुई थी, उस परिषद् के स्वागताध्यक्ष श्री के० भाष्यम् और उस परिषद् के अध्यक्ष भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के० सन्तानम् ने अपने भाषण में हिन्दी का जोरदार समर्थन किया है। श्री भाष्यम् अपने भाषण में कहते हैं :—

"The danger is pointed out that imposition of Hindi will lead to disruption of the counrty. Is this correct? On the other hand, if Hindi is progressively introduced in the Union

administration and communication between the States is also in Hindi it is possible to express in Hindi mass feeling of the inhabitants of one region to the inhabitants in another region in a much more effective way than English."

और श्री सन्तानम् ने अपने भाषण में कहा है—

"Hindi has functioned for the past many decades as the lingua franca of India at the mass level. Even the British Government recognised this fact by making it the lingua franca of the Indian military forces. Under Mahatma Gandhi's leadership, intense propoganda for Hindi has been carried on for the past 40 years and thounsands of boys and girls in non-Hindi States have been educated in Hindi to a level similar to the S. S. L. C. Sinc 1947." Hindi has been made a compulsory language in secondary schools in many States in India where it is not the mother tongue. I have no doubt whatsoever that when the regional language has become the effective medium of instruction in the entire High School courses, if English and Hindi are taught as additional compulsory languages, the proficiency in Hindi will be much greater than English. The Hindi taught in the school will be continually nourished by the Hindi spoken in the bazaar and the Hindi heard in the Cinema, the radio and other places. On the other hand, no English will be heard anywhere except in select gatherings of professors and scholars. Any attempt to continue English as the official language of the Union after it has ceased to be the medium of instruction in the Universities and as official language of the States will be impracticable."

उत्तर भारत में जिन राज्यों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उन राज्यों में बंगाल को छोड़कर और कहीं भी हिन्दी का कोई विरोध नहीं है और जहां तक बंगाल का सम्बन्ध है जिस बंगाल के मनीषियों ने सर्वप्रथम हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की आवाज उठायी थी, वहां हिन्दी का यह विरोध सचमुच एक आश्चर्य की बात है।

एक बात और ध्यान में रखने की आवश्यकता है। स्वतन्त्र भारत के संविधान में केन्द्र की भाषा के स्थान पर हिन्दी को केवल हिन्दी-भाषा-भाषियों ने प्रतिष्ठित नहीं कराया है, संविधान-सभा में हिन्दी सर्वमत से भारत की राजभाषा घोषित की गयी थी और इस के पक्ष में संविधान के जिन सदस्यों ने अपने मत दिये थे, उन में ऐसे सदस्यों का बहुमत था, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। संविधान-सभा में हिन्दी को यह पद बहुत सोचने-विचारने के बाद दिया गया था। प्रजातन्त्र में जो सैद्धान्तिक और महत्त्वपूर्ण बातें एक बार निर्णीत हो जाती हैं, वे बार-बार बदली नहीं जातीं। यदि यह किया जाय, तो फिर कौन बात निर्णीत हो गयी है और कौन नहीं, इस का कोई ठिकाना ही न रह जायगा। प्रजातंत्र में भिन्न-भिन्न दल रहते हैं। कभी किसी दल की सरकार रहती है और कभी किसी दल की। एक दल की सरकार के समय जो कानून बन जाते हैं, वे भी दूसरे दल की सरकार आने पर नहीं बदले जाते। तब फिर संविधान-सभा में भाषा के सदृश्य विषय का जो निर्णय सर्वमत से हुआ है और वह भी वर्षों के सोच-विचार के पश्चात्, उसे फिर से बदलने का प्रयत्न करना कहां तक युक्तिसंगत है, इस पर कोई भी विद्वान् विचार कर सकते हैं।

एक भ्रम और फैला हुआ है कि हिन्दी को भारतीय राजभाषा का स्थान मिलने से अन्य प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति में बाधा पड़ेगी। यह बात सर्वथा निर्मूल है। हिन्दी का जो क्षेत्र है, वह प्रान्तीय भाषाओं का नहीं और प्रान्तीय भाषाओं का जो क्षेत्र है वह हिन्दी का नहीं। समस्त भारतीय भाषाओं का गला घोंट कर विजेताओं ने अंग्रेजी को हमारे देश पर लादा था। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी का बना दिया गया था। विधान-सभाओं की भाषा अंग्रेजी हो गयी थी। सचिवालयों का सारा काम अंग्रेजी में चलता था। न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी थी। हम नहीं चाहते कि जिन राज्यों या क्षेत्रों की मातृभाषा नहीं है, वहां शिक्षा का माध्यम, विधान-सभा की भाषा सचिवालयों और न्यायालयों की भाषा हिन्दी हो। ऐसे राज्यों में शिक्षा का माध्यम न्यायालयों की भाषा, विधान-सभा और सचिवालयों की भाषा उस क्षेत्र की भाषा ही रहनी चाहिए। अतः हिन्दी-विरोधियों ने जो हिन्दी को लादने और हिन्दी साम्राज्यवाद की बात कही है, वह सर्वथा भ्रम से भरी हुई है। इस देश में अंग्रेजी का जो स्थान था, उसे यहां की चौदहों भाषाओं को मिलकर लेना है। केवल हिन्दी इस देश की राष्ट्रभाषा नहीं है। जिन भाषाओं को हमने अपने संविधान में स्वीकृत किया है, वे सब हमारी राष्ट्रभाषाएँ हैं, कहीं बाहर से आयी हुई नहीं। हिंदी, केन्द्र की और अंतर्प्रान्तीय कार्य की भाषा रहेगी, क्यों कि वह इस देश के अधिक निवासियों की मातृभाषा है और इस देश के अधिकांश निवासी उसे समझते हैं। शेष

भाषाएं अपने-अपने क्षेत्र की भाषाएं रहेंगी ; अतः हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के संघर्ष का प्रश्न ही नहीं है। हमारी समस्त भाषाओं को मिलकर भारत की उन्नति करना है।

हिन्दी के उत्कर्ष का अर्थ प्रान्तीय भाषाओं की अवनति है, इसी भ्रम ने इस देश में अंग्रेजी के प्रति एक विलक्षण प्रकार के प्रेम की उत्पत्ति की है। मैं संसार के लगभग सभी देशों में घूम आया हूं। मुझे किसी भी देश में किसी विदेशी भाषा के प्रति ऐसा अनुराग दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जैसा इस देश में अंग्रेजी के प्रति है। अंग्रेजी को भारत की केन्द्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रखने के सारे प्रयत्न और आन्दोलन को मैं अराष्ट्रीय मानता हूँ। फिर इस प्रयत्न में सफलता भी कदापि नही मिल सकती। लगभग दो शताब्दियों तक अंग्रेजी राज्य के इस देश में रहने और जीवन के हर क्षेत्र में अंग्रेजी को लादे रखने का प्रयत्न करने पर भी जब इस क्षेत्र के एक प्रतिशत व्यक्ति भी अंग्रेजी न पढ़ सके, तक अंग्रेजी राज्य के जाने के बाद अब अंग्रेजी भाषा की सुरक्षा के प्रयत्न में कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। फिर हमने इस देश में प्रजातन्त्र की स्थापना की है; अतः जब तक हमारा सारा काम भारत की जनभाषाओं में नहीं होता, तब तक प्रजातंत्र सफलतापूर्वक चल नहीं सकता; परन्तु, जो अंग्रेजी भाषा इतने दीर्घकाल तक हमारे शासन की भाषा रही है, वह एकाएक हटायी नहीं जा सकती, इसे मैं स्वीकार करता हूँ। इसीलिये जब हमारा संविधान बन रहा था, उस समय अंग्रेजी को हटाने के लिये हमने पन्द्रह वर्षों का समय रखा था। यह समय भी सब भाषाओं के प्रतिनिधियों के समझौते के रूप में माना गया था, क्यों कि हिन्दी-भाषा-भाषी तो इस कार्य के लिए पांच वर्ष का समय ही यथेष्ट मानते थे, तथापि मैं समय के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भी कटुता उत्पन्न करने के सर्वथा विरुद्ध हूँ। दस बीस वर्ष का समय किसी व्यक्ति के जीवन में महत्त्व रखता है परन्तु किसी राष्ट्र या देश के जीवन में नहीं।

आइये, हम लोग इस पुरातन भारत के नवोत्थान में भाषा के इस विवाद को समाप्त कर देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिये एक हृदय हो अपनी समस्त भाषाओं के उत्थान के लिए कटिबद्ध हों। इस महान् और पुनीत कार्य के लिए, एक निश्चित योजना बना, इस कार्य को सुसम्पन्न करें। इस महत्कार्य के लिये मेरा एक सुझाव है कि हमारी समस्त भाषाओं के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हो, जिस में निम्नलिखित मुद्दों पर विचार कर निर्णय किये जायं—

(१) हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं का परस्पर सम्बन्ध।

(२) हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं का कार्यक्षेत्र।

(३) पारिभाषिक शब्दावली। यह शब्दावली ऐसी होनी चाहिये जो

समस्त भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त की जा सके। अंग्रेजी की शब्दावली को अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली मानना सब से बड़ा भ्रम है। अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली इंग्लैण्ड और इंग्लैण्ड के चार उपनिवेश कैनेडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफीका, न्यूजीलैण्ड तथा अमेरिका को छोड़ कर संसार में और किसी देश में नहीं चलती। स्याम देश की पारिभाषिक शब्दावली तो संस्कृति से ली गई है। फिर यह प्रश्न सौ दो सौ, हजार दो हजार शब्दों का न होकर लाखों शब्दों का है; अतएव यदि हमने अंग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली स्वीकृत की तो हमारी भाषाएं भारतीय न रहकर और कुछ हो जाएंगी। हमने अपने संविधान में स्पष्ट कह दिया है कि हिन्दी भाषा के द्वार अन्य भाषाओं के शब्दों के लिये खुले रहने पर भी हमारी शब्दावली प्रधानतया संस्कृत से ली जायगी। जो बात हमने हिन्दी भाषा के लिए कही है वही भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में भी मानी जानी चाहिए।

(४) सरकारी नौकरियों के लिए भाषा का माध्यम, यदि कुछ समय तक अंग्रेजी को सरकारी नौकरियों के लिए रहना ही है, तो भी अन्य भारतीय भाषाओं को वैकल्पिक माध्यम के रूप में मानना चाहिये। विद्वज्जनों के इस उपर्युक्त सम्मेलन में इस विषय का भी निर्णय किया जाय कि यदि चौदहों भाषाओं का वैकल्पिक माध्यम का रूप देने में कोई अड़चन आती है, तो क्या हिन्दी को यह स्थान दिया जा सकता है? जिन की मातृभाषा हिन्दी है, उन के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाय कि उन्हें एक और भारतीय भाषा में परीक्षा देनी होगी जिससे हिन्दी भाषा-भाषियों को भी तीन भाषाएँ जानना उसी प्रकार आवश्यक हो जाये, जिस प्रकार अहिन्दी भाषाभाषियों को।

निखिल भारत बंग-साहित्य-सम्मेलन के संचालकों से मेरा अनुरोध है कि समस्त भारतीय भाषाओं के विद्वानों का यह सम्मेलन निखिल भारत बंग-साहित्य-सम्मेलन के तत्त्वाधान में ही आयोजित हो, क्यों कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर आसीन कराने का संकेत तथा आन्दोलन सर्वप्रथम बंग-भाषा के महत् जनों ने ही प्रारम्भ किया था।

इन शब्दों के साथ मैं निखिल भारत बंग-साहित्य-सम्मेलन के इस हिन्दी विभागीय सम्मेलन का उद्घाटन करता हूँ। मुझे आशा ही नहीं, विश्वास है कि हिन्दी का विरोधियों ने बंगाल में जो भ्रमपूर्ण वातावरण के निर्माण का प्रयत्न किया है, उस का निवारण बंग-साहित्य के मनीषीगण ही करने की कृपा करेंगे।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् नवम् वार्षिकोत्सव पटना

अध्यक्षीय भाषण

२८ मार्च, १९६०

देवियो और सज्जनो,

सर्वप्रथम मेरा यह कर्त्तव्य है कि प्राचीन और वर्तमान बिहार की पुण्यभूमि को नमन् करूँ, जिस भूमि पर महाराजा विदेह, जगज्जननी महारानी सीता, तीर्थंकर महावीर स्वामी, भगवान् बुद्ध, सम्राट् चन्द्रगुप्त और सम्राट् अशोक ने जन्म लिया।

आपने इस अधिवेशन का सभापति बनाकर मेरा जो सम्मान किया है, उस के प्रति आप का हृदय से आभारी हूँ। मेरा विचार है कि आपने मुझे यह सम्मान केवल इस कारण प्रदान नहीं किया है कि मैं हिन्दी साहित्य की कुछ सेवा कर सका हूँ, वरन् इसलिए भी दिया है कि मेरा सतत् प्रसास रहा है कि हिन्दी को अपना उचित स्थान राजकाज और प्रशासन क्षेत्र में भी मिले। आज हम जिन परिस्थितियों में यहाँ समवेत हुए हैं, उनमें इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हम सब मिल कर हिन्दी को अपना उचित स्थान दिलाने के लिए और भी अधिक प्रयास करें।

अपने ही राज्य में अपनी भाषा की याचना एक विडम्बना

यह बात लगती तो कुछ अजीब-सी है कि हमें अपने देश में इस बात का प्रयास करना पड़े कि देशवासियों की भाषा राज्यभाषा भी हो। यदि देश पर विदेशी राज्य होता तो ऐसे प्रयास करने की आवश्यकता सम्भवतः समझ में आ सकती थी, किन्तु, इतिहास की यह कैसी विडम्बना है कि जो देश विदेशियों के चंगुल से लगभग बारह वर्ष पूर्व मुक्त हुआ था, उस देश में भी हम को इस बात के लिए परिश्रम और प्रयास करना पड़े कि जनता की भाषा राज्यभाषा हो। जिस जाति की भाषा पूर्णतः अविकसित हो, जिस की अपनी संस्कृति और सभ्यता न हो, जिस की अपनी ऐतिहासिक परम्पराएँ और गौरवगाथा न हो, और जो बर्बरता की स्थिति से या तो निकली ही न हो, या कुछ समय पूर्व ही निकली हो, उस जाति के लिए सम्भवतः अपनी भाषा में अपना राजकाज चलाने के लिए प्रयास करना पड़े; किन्तु हमारे देश का इतिहास, हमारे देश की संस्कृति, हमारे देश की सभ्यता संसार के किसी भी देश से यदि अधिक

पुरानी नहीं तो कम पुरानी नहीं है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र न था और न हो सकता था, जिसमें हमारी जाति ने उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त न की हों और अमूल्य विचार मानव जगत् के सामने न रखे हों। क्या दर्शन, क्या विज्ञान, क्या काव्य सभी क्षेत्रों में भारत ने ऐसे सूक्ष्म और चमत्कारिक विचार रखे कि आज भी सारे सभ्य जगत् पर उन की छाप है और सारा सभ्य जगत् उस का ऋणी। ये सब सत्य हमारे पूर्वजों ने इस देश की भाषा या भाषाओं द्वारा ही व्यक्त किये थे। मैं समझता हूँ कि इन क्षेत्रों में उन्होंने अपनी भाषा द्वारा इतने सूक्ष्म और गूढ़ विचार व्यक्त किये कि आज भी उन के पूर्ण रहस्य को समझने के लिए विद्वानों को परिश्रम करना पड़ता है। अपनी बात को मँजे हुए और बहुत ही थोड़े शब्दों में व्यक्त करने की परिपाटी हमारे यहाँ इतनी घर कर गई कि मात्रा के लाघव को भी विद्वान् पुत्रलाभ के समान मानते थे। आज संक्षेपाक्षरों की जो प्रणाली प्रचलित है, उससे भी अद्भुत प्रणाली हमारे यहाँ दो सहस्र वर्षों पहले प्रचलित थी और प्रत्याहारों द्वारा पाणिनि ऋषि व्याकरण-जगत् में वह चमत्कार कर गये, जिस की पुनरावृत्ति अनेक शताब्दियों तक प्रयास करने पर भी कोई देश या जाति नहीं कर सकी। इस प्रकार हमारे देश के विद्वान् गागर में सागर भरने में समर्थ थे और मैं यह मानता हूँ कि आज भी हैं। यह बात न केवल संस्कृत के लिए ठीक है; वरन् हमारी अन्य भाषाओं के लिए भी उतनी ही ठीक है। कबीर ने हिन्दी में जितने उदात्त; किन्तु सूक्ष्म दार्शनिक विचार अपनी सूक्तियों में रक्खे हैं, वैसे संभवतः उतने थोड़े शब्दों में अन्यत्र कहीं भी न मिलेंगे। मैं यह बात आपके समक्ष मिथ्या अभिमान या अतीत की गौरवगाथा के लिए नहीं रख रहा; वरन् मैंने इन की ओर संकेत केवल इसलिए किया है कि आप इस देश के अन्य वासी इस ऐतिहासिक विडम्बना पर विचार करें कि इतनी समृद्ध भाषाओं वाले देश में यह प्रयास क्यों करना पड़े कि देश की भाषा राजभाषा भी हो; पर मैं इसे अपना दुर्भाग्य कहूँ, जनता का दुर्भाग्य कहूँ या अपनी भावी पीढ़ियों का दुर्भाग्य कहूँ कि आज भी हमारे देश में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जो संभवतः सच्चे मन से या स्वार्थवश इस बात पर अड़े हुए हैं कि इस देश की कोई भाषा राजद्वार में फटकने न पाये। अतः हम सब के लिए जिन का जीवन-प्रयास और जीवन-लक्ष्य जनवाणी की सेवा करना रहा है, यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि हम पूरी लगन से इस प्रयास में लग जायँ कि हमारे देश की भाषा और देश की भाषाओं का वह अपमान और निरादर अब अधिक दिनों तक न किया जा सके।

हाल ही में स्वतन्त्र हुए देशों में भी अपनी भाषाओं का उपयोग

इस सम्बन्ध में मैं आप का ध्यान उन कुछ देशों की ओर खींचना चाहता हूँ, जो

अभी चार पाँच साल पहले ही स्वतन्त्र हुए हैं। आप सब लोग जानते हैं कि कम्बीज, लव प्रदेश, वियतनाम अभी कुछ वर्ष हुए स्वतन्त्र हुए थे। मेरा विश्वास है कि आप सब इस बात से भी परिचित हैं कि इन देशों के वासियों का इतिहास कम-से-कम इतना पुराना नहीं है, जितना कि हमारे देश का है। मैं यह भी समझता हूँ कि इन देशों की संसार को सांस्कृतिक देन हमारे देश की अपेक्षा कहीं कम रही। इन की भाषा और इनकी लिपि भी हमारे देश की भाषा और लिपि की अपेक्षा कम उन्नत थी। किन्तु, इन देशों ने इतने अल्पकाल में ही अपना सारा राजकाज अपनी भाषाओं में करना आरम्भ कर दिया है। वहाँ भी फ्रांस ने फ्रांसीसी भाषा को अपने राज्यकाल में प्रशासन, विधि और शिक्षा का माध्यम बना रखा था। वहाँ का शिक्षित वर्ग भी फ्रांसीसी भाषा का प्रयोग करने में अभ्यस्त था। किन्तु, यह सब होते हुए भी वहाँ के नये शासकों ने एक दिन भी यह नहीं कहा कि फ्रांसीसी भाषा को ही प्रशासन, न्याय या शिक्षा का माध्यम बना रक्खा जाय या फ्रांसीसी भाषा के द्वारा ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत् से सम्बन्ध स्थापित किया जाय या ज्ञान-सरोवर को केवल फ्रांसीसी भाषा की खिड़की द्वारा ही देखा जाय। मैं समझता हूँ कि संसार में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो यह कहने की सामर्थ्य या धृष्टता रखता हो कि फ्रांसीसी भाषा ज्ञान या किसी अन्य क्षेत्र में अंग्रेजी से किसी प्रकार कम है। सच तो यह है कि आज भी लगभग सारे मध्यपूर्व और योरप के देशों में फ्रांसीसी भाषा राजनय की भाषा है और अंग्रेजी का प्रयोग वहाँ बहुत थोड़ा है और अभी कुछ ही वर्षों से किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में आरम्भ हुआ है। किन्तु, ऐसी समृद्ध भाषा का भी मोह उन्हें अपनी देश भाषा को अपनी राजभाषा बनाने से एक मुहूर्त के लिए भी न रोक सका। चीन की बात मैं कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। अभी हाल में उस देश का व्यवहार कुछ ऐसा रहा कि जिससे हमारे मन में कड़वाहट पैदा हो गई है; किन्तु इस पर भी हमें यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि हम उस की प्रगति और उस के प्रगति के कारणों को अपने ध्यान में रक्खें, क्यों कि यदि हमने ऐसा न किया तो हम उन का उचित समय पर उचित प्रतिरोध करने में कभी सफल न होंगे। वे हमारे शत्रु ही सही, किन्तु उन के बलाबल से हमें अपने को पूर्णतया परिचित रखना है और इस दृष्टि से मैं आप का ध्यान इस बात की ओर खींचता हूँ कि वहाँ भी एक क्षण के लिए यह प्रश्न किसी के मन में नहीं उठा कि वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से वहाँ शिक्षा का माध्यम योरप की ऐसी किसी भाषा को रखना चाहिए, जिस में विज्ञान का भण्डार है। वहाँ भी सब प्रकार की शिक्षा-दीक्षा चीनी भाषा के द्वारा दी जाती है। उन्हें एक क्षण के लिए भी यह अनुभव नहीं हुआ कि इस कारण उनके देश में किसी प्रकार के यंत्रविदों, वास्तुकारों, वैज्ञानिकों की कमी रही हो।

बड़े से बड़े भारतीयों की आँखों पर अंग्रेजी के मोह की पट्टी

पर, हमारे देश में ऐसे शिक्षाशास्त्री हैं, ऐसे प्रशासक हैं, ऐसे राजनीतिज्ञ हैं, ऐसे राजनायक हैं जो यह माने बैठे हैं, कि भारत की मुक्ति, भारत का भविष्य, भारत की समृद्धि अंग्रेजी और केवल अंग्रेजी पर ही आधारित है। मैं नहीं जानता कि कभी उन्होंने इस बारे में सोचा भी है या नहीं कि जब अंग्रेज इस देश में नहीं आये थे, जब अंग्रेजी इस देश में नहीं आयी थी, तब इस देश के लोगों ने अपनी जीवनधारा कैसे चलायी थी, प्रकृति से कैसे संघर्ष किया था, राजनैतिक तंत्र कैसे स्थापित किये थे और भूमि एवं अंतरिक्ष के अनेक सत्यों का कैसे पता चलाया था। क्या वे समझते हैं कि अंग्रेज के पहले हमारे देश के लोग मूक थे, उन की अपनी वाणी न थी, अपनी प्रतिभा न थी। मैं यह नहीं कहता कि वे लोग राष्ट्रप्रेमी नहीं हैं; किन्तु उन का राष्ट्रप्रेम कैसा है, यह मैं समझ नहीं पाता। उन्हें यह बात भी नहीं दिखती कि अंग्रेजी के बिना हम सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में प्रगति न कर पायेंगे, यह विचार हमारे सारे इतिहास का उपहास है, हमारी जाति के प्रति सारे विश्व में यह भावना पैदा करना है कि अंग्रेजों के पूर्व हमारा देश पूर्णतः असभ्य था, बर्बर था और केवल अंग्रेजों ने ही गोरे आदमी का भार वहन करके हमें सभ्य बनाया। मैकाले को मरे हुए लगभग एक शताब्दी हो गयी, किन्तु, यदि वे आज जीवित होते, तो उन्हें कितनी प्रसन्नता हुई होती, जब वे यह देखते कि जो बात उन्होंने भारतीय संस्कृति, भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान के सम्बन्ध में अपनी शिक्षा माध्यम संबंधी टिप्पणी में १८३३ में लिखी थी, उसी बात की पुष्टि असाक्षात् रूप में उन के इन मानस-पुत्रों द्वारा जिन की चमड़ी भारतीय है; किन्तु जिन का मन, जिन की संस्कृति, जिनका दृष्टिकोण मैकाले की भाषा द्वारा, मैकाले के विचारों द्वारा बना है, पुष्ट हो रही है। मैकाले ने अपनी इस टिप्पणी में लिखा था कि यदि समग्र भारतीय साहित्य और विज्ञान की पुस्तकें समुद्र में डाल दी जायँ, तो मानव जाति की कोई हानि न होगी। चाहे अंग्रेजी से मोह रखनेवाले भारतीय विज्ञान और साहित्य के प्रति इन्हीं शब्दों का प्रयोग न करते हों; किन्तु, इससे कुछ अन्य उनका तात्पर्य न तो है और न हो सकता है। नहीं तो वे यह क्यों सोचते या क्यों कहते कि इस देश कि भाषा द्वारा हम प्रगति के प्रशस्त पथ पर अग्रसर न हो सकेंगे, हमारे देश की एकता न रह सकेगी, हम प्रजातन्त्र के प्रयोग को सफल न बना सकेंगे, हम अपने आर्थिक तन्त्र को शीघ्रातिशीघ्र समृद्ध न कर सकेंगे, हम जगत् से अपना संबंध खो बैठेंगे, हम विज्ञान की अमृतदायिनी सरिता से वंचित हो जायेंगे। स्पष्टतः उन के मन में यह मोह है, यह धारणा है कि इन सब बातों का केवल एक सूत्र, केवल एक द्वार, एक माध्यम अंग्रेजी और केवल अंग्रेजी है। पर, थोड़ा विचार करके देखिए कि इसमें कितना तथ्य है। क्या यह

बात ठीक है कि केवल अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही किसी जाति के नर नारी प्रगति कर सकते हैं ? यदि यह बात ठीक होती, तो संभवतः इंग्लैंड में ऐसा एक भी आदमी न होता, जो ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में पारंगत न होता। यदि अंग्रेजी ही सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति का दूसरा नाम है, तो इंग्लैण्ड का हर वासी, जिसे अंग्रेजी अपने माँ के दूध के साथ मिलती है, वह किसी प्रकार विज्ञान या ज्ञान से अपरिचित न होता; किन्तु, क्या ऐसा है ? इंग्लैंड ने विज्ञान के क्षेत्र में जो भी प्रगति पिछले डेढ़ सौ वर्षों में की है, इतिहास इस बात का साक्षी है कि उस प्रगति का कारण अंग्रेजी भाषा किसी प्रकार न थी।

अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की शब्द-सृजन-शक्ति

इंग्लैंड में विज्ञान का प्रवेश 'लातनी' और यूनानी भाषा के द्वारा हुआ। यदि मैं भूलता नहीं, तो इंग्लैण्ड में रोजर बेकन ने अपना कार्य अधिकतर इन्हीं भाषाओं के ज्ञान के सहारे किया और उसके पश्चात् भी अनेक वर्षों तक इंग्लैण्ड के विद्वान् इन भाषाओं का सहारा अपनी विधि, अपनी शिक्षा, अपने विज्ञान के लिये लेते रहे। सच तो यह है कि आज भी अंग्रेजी में यह शक्ति नहीं कि वह नये-नये वैज्ञानिक तथ्यों के लिए अपने निज से शब्द दे सके। आज भी इग्लैण्ड के वैज्ञानिक इन तथ्यों की अभिव्यक्ति के लिए 'लातनी' या 'यूनानी' भाषा का सहारा लेते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है, कि जो लोग दुहाई देते हैं कि अंग्रेजी के बिना भारत अन्धकार के गर्भ में चला जायगा, उन में से अनेक वनस्पतिशास्त्र के ऐसे एक भी शब्द को न समझ सकेंगे, जो उस विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त किये जाते हैं। वे सभी शब्द अंग्रेजी में यूनानी या लातनी भाषा से लिये हैं और मैं तो यह समझता हूँ कि सम्भवतः उन्हें निन्यानवे प्रतिशत अंग्रेजी भी समझ में आती हो। मैं नहीं जानता कि इस ओर अंग्रेजी के हिमायतियों की दृष्टि गयी है या नहीं कि अंग्रेजी भाषा में शब्दनिर्माण की शक्ति लगभग नहीं के बराबर है और उस दृष्टि से सभ्य भाषाओं में उतनी दरिद्र भाषा संभवतः संसार में कोई न होगी। हिन्दी के सम्बन्ध में बहुधा इन लोगों द्वारा यह कहा जाता है कि वह दरिद्र भाषा है। हिन्दी ही क्यों, ये लोग सब भारतीय भाषाओं को दरिद्र भाषा मानते हैं, किन्तु मेरा यह निजी अनुभव है कि हिन्दी में नये शब्द निर्माण करने की नैसर्गिक शक्ति है। उदाहरणार्थ संस्कृत का एक शब्द चूर्ण कई वस्तुओं को व्यक्त करने के लिए काम में लाया जाता था, किन्तु हिन्दी ने उसी आधार पर कई शब्द बना लिये। चून, चूना, चूर्ण ये तीन शब्द पृथक्-पृथक् वस्तुओं को व्यक्त करते हैं और इन का निर्माण हिन्दी ने अपनी शक्ति के आधार पर किया है। ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरण आप को हिन्दी भाषा में मिलेंगे।

इसलिये यह कहना कि हिन्दी दरिद्र भाषा है पूर्णतः निराधार है। हाँ, जिन लोगों को हिंदी के 'अ' 'आ' का ज्ञान नहीं, जिन्होंने अपने जीवन का एक क्षण हिन्दी-साहित्य के अध्ययन में नहीं लगाया और जिन के मन में हिन्दी के प्रति अकारण ही विद्वेष और उपेक्षा का भाव है, और रहा है, यदि वे यह कहने लगें कि हिन्दी दरिद्र भाषा है तो आश्चर्य की बात ही क्या। किन्तु, यदि शुद्ध भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अंग्रेजी और हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो यह पता चलेगा कि केवल भाषा की दृष्टि से कौन-सी भाषा बलशाली है और कौन-सी असहाय और दुर्बल। जो भी हो, इस सम्बन्ध में क्या एक क्षण के लिए भी शंका हो सकती है कि अंग्रेजी विज्ञान के लिए एकमात्र देववाणी नहीं है। यदि भगवान् ने यही विधान कर दिया होता कि अंग्रेजी ही विज्ञान की भाषा होगी, तो फिर क्या रूसी, फ्रांसीसी, जर्मन या अन्य देश वासी विज्ञान के क्षेत्र में ऐसी ही प्रगति कर पाते। यह केवल उपहासास्पद बात है कि अंग्रेजी का प्रगति से कोई विशेष सम्बन्ध है। प्रगति तो केवल इस पर आश्रित है कि मनुष्य की यह भावना और विश्वास हो कि जो भूतकाल से मिला है, उस पर ही पूर्णतः आश्रित न रहकर, उस से ही सर्वथा बँधे न रह कर, जीवन को अधिक समृद्ध और आनन्दमय बनाने के लिए नये-नये प्रयोग किये जायं, नई-नई दिशाएँ खोजी जायें। यह धारणा क्या हम इस देश के वासियों में अपनी भाषा द्वारा नहीं फैला सकते? क्या यह विचार उनके मन में नहीं पैठा सकते? क्या इस सम्बन्ध में एक क्षण के लिए भी किसी प्रकार की शंका होनी चाहिए? अतः मेरा निवेदन है कि अंग्रेजी के पक्ष में इस प्रकार का तर्क देना बड़ा असंगत और अत्यन्त उपहासास्पद है।

भारत की एकता के लिए क्या अंग्रेजी आवश्यक है?

ऐसी ही एक दलील यह है कि भारत की एकता का आधार और स्रोत अंग्रेजी है। यह कहा जाता है कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं और वहाँ के वासियों के लिए परस्पर विचार-विनिमय करना केवल अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही संभव है; अंग्रेजी जाननेवाले इन विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों के प्रत्येक नगर और नगरी में मिलते हैं, इस कारण अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करनेवाले के लिए भारत में किसी स्थान में कठिनाई नहीं होती; यह बात भारत की किसी अन्य भाषा के सम्बन्ध में लागू नहीं है; इसलिए आज जो सुविधा अंग्रेजी के द्वारा हमें प्राप्त है और जिस सुविधा के कारण एक दृष्टि से भारत की एकता बनी हुई है, उसे छोड़ देने में कोई विशेष तुक नजर नहीं आती। इसके अतिरिक्त इनका यह दावा भी है कि अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन के कारण ही भारत में राष्ट्रीय भावना जागृत

हुई और भारत में लोग यह सोचने लगे कि हम किसी जाति-विशेष या प्रदेश-विशेष के न होकर सब भारत माता की सन्तान हैं; अतः अंग्रेजी हमारी राष्ट्रीयता की जननी है, पोषिका है ; इसलिए यदि अंग्रेजी हमारे देश से हट गई, तो परस्पर विचार-विनिमय के अभाव के कारण और राष्ट्रीय एकता के सूत्र अभाव के कारण हमारा राष्ट्र छोटी-छोटी इकाइयों में बंट जायगा। कुछ अंग्रेजी के पक्षपाती यह तर्क भी उपस्थित करते हैं कि अंग्रेजी ही ऐसी भाषा है, जिसके पढ़ने और अध्ययन में हमारे देश के विभिन्न प्रदेश वालों को एक समान प्रयास करना पड़ता है, एक सी ही कठिनाइयों से संघर्ष करना पड़ता है; किन्तु, यदि भारत की कोई एक भाषा भारत की राजभाषा बन गई, तो अन्य प्रदेश वालों को उस भाषा को सीखने में जितनी कठिनाई होगी; जितना प्रयास करना होगा, उतनी कठिनाई उस भाषा के बोलनेवालों को न उठानी पड़ेगी और इस प्रकार उस भाषा के बोलनेवालों को अन्य भाषा-भाषियों की अपेक्षा राजकीय जीवन में अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो जायंगी और इस प्रकार अन्य प्रदेशवासियों के प्रति यह घोर अन्याय होगा। कहते हैं कि जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। अंग्रेजों का जादू इस सम्बन्ध में पूरा उतरता है। वे चले गये, किन्तु, जो मन्त्र वे फूंक गये थे, जो पट्टी वे पढ़ा गये थे, वह आज अपना पूरा प्रभाव दिखा रही है। इस बात को आप लोग न भूले होंगे कि अंग्रेज भारत में अपने राज्य के पक्ष में मुख्यतः यही तर्क देते थे कि भारत की एकता उसी राज्य की नींव पर आधारित है। उनके आने के पहले भारत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटा हुआ था, और उसकी जनता राष्ट्रीयता से सर्वथा अपरिचित थी। भारत में उन की यह गर्वोक्ति थी कि जब तक भारत में हमारा राज्य है, तभी तक भारत में एकता है, यदि हम यहाँ से एक क्षण के लिए भी अपना प्रभुत्व हटा लेंगे, तो भारत के पुनः टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे और यहाँ परस्पर ऐसी मारकाट मच जायगी, ऐसा अनाचार और अत्याचार फैल जायगा कि किसी भी भारतीय कुमारी का सतीत्व बचा न रहेगा। उन का यह भी तर्क था कि इस देश के विभिन्न धार्मिक सप्रदायों, विभिन्न भाषा-भाषी और प्रादेशिक जातियों के अधिकारों की रक्षा वे निष्पक्ष भाव से करते हैं और सब को सम न्याय प्रदान करते हैं; किन्तु, यदि वे चले गये तो भारत का सम्प्रदाय विशेष या जाति विशेष या प्रदेश विशेष दूसरे सम्प्रदायों , दूसरी जातियों और दूसरे प्रदेशों पर छा जायगा और उन को पैरों तले रौंद देगा। आप देखेंगे कि अंग्रेजों के इन्हीं तर्कों की पुनरावृत्ति आज हमारे अंग्रेजी के हिमायती इस सम्बन्ध में कर रहे हैं। अपने गौरांग गुरुओं की शिक्षा का कितनी कुशलता से वे पालन कर रहे हैं। किन्तु, यह सब तर्क थोथे हैं, निराधार हैं। थोड़े से विचार से यह स्पष्ट हो जायगा कि इस सब स्वार्थ के पीछे उन का वैसा ही स्वार्थ है, जैसा कि अंग्रेजों का स्वार्थ उनके अपने राज्य

के समर्थन के पीछे था। अंग्रेजी के द्वारा इन लोगों के लिए यह संभव हो रहा है कि वे भारत की जनता के कंधे पर बैठकर भारत की जनता से उसी प्रकार परिश्रम करा कर जैसे कि अंग्रेज कराते थे, स्वयं सुख भोगें, गुलछर्रे उड़ायें। सिंदबाद नाविक की कहानी में जिस प्रकार हम यह पढ़ते थे कि सिंदबाद की गर्दन पर सवार होकर उसके गले को अपने पाँवों में कसकर और दबाकर उस व्यक्ति ने सिंदबाद को दौड़ाया उससे परिश्रम कराया और स्वयं आनन्द भोगा, उसी प्रकार आज ये आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज से निकले श्यामवर्ण वाले; किन्तु, आंग्ल चेतना और आत्मा वाले हमारे देश की जनता के कंधे पर कसकर आसन जमाये बैठे हैं और हर प्रकार से उसका शोषण कर रहे हैं तथा भोली भाली विभिन्न प्रदेशों की जनता को विमुख करने को इस प्रकार के तर्क दे रहे हैं। नहीं तो क्या वे यह नहीं जानते कि इस देश में अंग्रेजी जानने वालों की संख्या एक प्रतिशत से अधिक नहीं है और इस एक प्रतिशत की एकता भारत की एकता नहीं कही जा सकती। क्या इस बात से इनमें से कोई भी इन्कार कर सकता है कि आज भी लाखों की संख्या में सुदूर दक्षिण में ग्रामवासी, जिन्हें अंग्रेजी का एक शब्द भी नहीं आता, उत्तर भारत के काशी, मथुरा, हरिद्वार और बदरीनाथ जैसे महान् तीर्थस्थानों में प्रतिवर्ष यात्रा के लिए आते हैं। क्या यह बात सत्य नहीं है कि उत्तर भारत के अनेक ग्रामवासी सुदूर रामेश्वरम् की यात्रा करने के लिए सहस्रों की संख्या में जाते हैं? क्या इन लोगों का काम अंग्रेजी के बिना नहीं चल सकता? क्या वे अपने सब धार्मिक संस्कार और जीवन के अन्य व्यापार अपनी यात्रा में हिन्दी के माध्यम द्वारा नहीं करते? क्या यह सत्य नहीं है कि भारत के प्रत्येक धार्मिक तीर्थ-स्थानों में हिन्दी जाननेवाले पढ़े नहीं मिलते या नहीं होते तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि भारत के विभिन्न प्रदेशवासियों के विचार-विनिमय का माध्यम केवल अंग्रेजी है। आसाम के चाय बगानों में, कलकत्ते के बड़े बाजार में, बम्बई की चौपाटी में और सुदूर दक्षिण में सर्वत्र ही हमें हिन्दी भाषा-भाषी श्रमिक-कार्य करते मिलते हैं। हिन्दी भाषा-भाषी व्यापार करते मिलते हैं। हिन्दी भाषा-भाषी पंडे धार्मिक संस्कार करते मिलते हैं। सचमुच यह महत् आश्चर्य की बात होती यदि ऐसा न होता। अंग्रेजी तो अभी कुल एक सौ वर्ष से ही इस देश में आयी थी। उससे पहले भी हमारे देश के विभिन्न प्रदेशों में विचार और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था; अतः स्वाभाविक ही मध्यदेश की यह भाषा हिन्दी उस विचार-विनिमय की माध्यम बन गयी थी और बनी रही और बनी है और बनी रहेगी।

अतीत और वर्तमान के वर्ग-संघर्ष और विग्रह का कारण कौन?

अंग्रेजी वर्ग अधिक-से-अधिक यही कह सकता है कि उसकी अपनी एकता अंग्रेजी

के आधार पर है। यद्यपि इस सम्बन्ध में भी पूरी पूरी शंका की जा सकती है। यदि वर्तमान भारतीय राजनैतिक कलह का वास्तविक कारण ढूंढ़ा जाय, तो हमें यह पता चलेगा कि इस अंग्रेजी से मोह रखनेवाले ही व्यक्तियों में परस्पर सर्वाधिक द्वेष और स्पर्द्धा वर्तमान है। क्या यह सत्य नहीं है कि भारत की राजनीति में जो विषवृक्ष बोया गया है, वह उन लोगों ने बोया या उन लोगों के माध्यम द्वारा बोया गया, जो इस बात के लिए लालायित थे कि अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा इस देश की जनता से दुही जानेवाली संपत्ति में उन का भी कुछ साझा हो जाय! अंग्रेजी साम्राज्य के तन्त्र में छोटी-मोटी नौकरी पाने के लिए कौन लालायित था, वही तो जिन्होंने यह अंग्रेजी पढ़ ली थी। नौकरियाँ थोड़ी थीं और अंग्रेजी पढ़े-लिखे अधिक। अतः इन अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों ने परस्पर एक दूसरे की जड़ काटने के लिए हर प्रकार के साम्प्रदायिक प्रादेशिक और भाषा जाति विभेद पैदा किये और उन्हें तीव्रातितीव्र किया। क्या यह सत्य नहीं है कि पाकिस्तान के आन्दोलन के जन्मदाता इसी अंग्रेजी वर्ग के कुछ लोग थे? उन्होंने भोली भाली जनता को अपने स्वार्थ के लिए गुमराह किया और देश को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। क्या यह सत्य नहीं है कि इसी अंग्रेजी वर्ग के कुछ लोगों ने अंग्रेजों की सह पर इस देश में उत्तर और दक्षिण का प्रश्न उठाया और उत्तरवासियों के विरुद्ध दक्षिण के कुछ प्रदेशों में एक प्रकार का जेहाद प्रारम्भ कर दिया। यदि ऐसा न होता, तो आश्चर्य की बात होती। जिन लोगों ने सर्वप्रथम अंग्रेजी पढ़नी प्रारम्भ की थी, उन लोगों ने उस का अध्ययन ज्ञानोपार्जन विज्ञान और दर्शन के ज्ञान के लिए नहीं किया था; वरन् हमारे देश के पूज्य गुरुजनों के आदेश की अवहेलना कर अधिकांशतः इस प्रयोजन से आरम्भ किया था कि वे भी अंग्रेजी राज्य की लूट में कुछ हिस्सा पायें हो सकता है कि कुछ ऐसे व्यक्ति रहे हों, जिन्होंने अंग्रेजी का अध्ययन अंग्रेजों की सफलता का रहस्य जानने के लिए आरम्भ किया हो; किन्तु, ऐसे लोगों की संख्या नगण्य थी। और, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अधिकांशतः ऐसे लोग स्वार्थरत थे, अपने ही निज सुख और समृद्धि की भावना से प्रेरित थे। भला वे लोग भारत की एकता की बात सोचें, यह तो महान् आश्चर्य की बात होगी।

हम इन्हें दुभाषिया कहें या बहुरूपिया ?

यह बात आज भी है कि जो लोग अंग्रेजी की हिमायत करते हैं, उनमें से निन्यानबे प्रतिशत भारत की एकता की बात मन में नहीं रखते, वे केवल इस एकता की दुहाई अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए देते हैं। नहीं तो क्या यह प्रश्न उनके मन में नहीं उठता कि आज अंग्रेजी के कारण भारत की निन्यानवे प्रतिशत जनता और राज्य के बीच

खाई पैदा हो गई है और बढ़ती जा रही है। क्या उन को यह सोचने का समय नहीं मिलता कि अंग्रेजी के कारण आज भारत के निन्यानबे प्रतिशत नागरिक राज्य-दरबार में प्रवेश नहीं कर पाते। उन की संतान को कहीं कोई राज्यपद नहीं मिलता। मूक, निरीह, असहाय रहे आते हैं। उनके हृदय में यह भावना जागृत नहीं हो पाती कि यह राजतन्त्र, यह देश की संपत्ति इस देश की विशाल भूमि, इस के नदी, पहाड़ सब उन के हैं, आज भी वे अकिंचन बने हुए हैं और यही समझते हैं कि उन के सिर पर बैठी सरकार उन की भाग्यविधाता है, वे स्वयं उस के संचालक नहीं। क्या भारत की एकता के लिए यह आवश्यक नहीं कि भारत के जन-जन के हृदय में यह विचारधारा तरंगित होने लगे कि हम सबका भाग्य एक है, हम सब की संपत्ति एक है, हम सब का इतिहास एक है। मैं विनम्रता से पूछता हूँ कि क्या यह बात अंग्रेजी भाषा के द्वारा संभव हो सकती है? क्या यह स्पष्ट नहीं कि यदि अंग्रेजी के माध्यम द्वारा यह बात संभव होती, तो फिर हमारे ग्रामों में हमारी साधारण जनता से ये लोग अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा वार्तालाप करते, अपने व्याख्यान अंग्रेजी में देते। मैं इस बात की चुनौती देता हूँ कि जो लोग अंग्रेजी के द्वारा भारत की एकता बनी रहने की बात कहते हैं, वे जरा साहस कर हमारे गांवों में जाकर हमारी जनता से केवल अंग्रेजी में बोलें और अपने इस तर्क को चरितार्थ करें। पर, मैं जानता हूँ कि उन में से एक में भी यह सामर्थ्य नहीं। इन्हें हम दुभाषिया कहें या बहुरुपिया? कैसा महान् आश्चर्य है कि देश की एकता को छिन्न-भिन्न करनेवाले देश की एकता की दुहाई दें। देश की राष्ट्रीयता को तिलांजलि देने वाले, इस देश की वेशभूषा, खान-पान, आचार-विचार, रीति-रिवाज, इतिहास और संस्कृति का उपहास और तिरस्कार करनेवाले व्यक्ति और पाश्चात्य, योरप एक विशिष्टतः इंग्लैण्ड को अपना सांस्कृतिक और आध्यात्मिक घर और देश माननेवाले व्यक्ति राष्ट्रीयता का यह बाना दिखाने के लिए पहन लें। इन की राष्ट्रीयता का अर्थ इस देश को छोटा इंग्लैण्ड बनाना है और इसीलिए यह स्वाभाविक है कि अपने स्वप्न के उस निर्माण के लिए ये लोग अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य समझें। किन्तु, यदि विचारपूर्वक हम सोचें, तो स्पष्ट पता चल जायगा कि हमारे देश में राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति किसी भी जाति में उस समय होती है, जब वह आर्थिक विकास की उस स्थिति में पहुँच जाती है, जब कि केवल ग्राम, केवल नगर अथवा केवल जनपद के क्षेत्र में हों। उसका आर्थिक व्यापार सीमित नहीं रहता और नहीं रह सकता। उस समय इन छोटी इकाइयों की सीमा को लांघकर अनेक नगरवासी, अनेक ग्रामवासी, अनेक जनपद-वासियों के हृदय परस्पर बिध जाते हैं और उन्हें यह दिखने लगता है कि हमारे हित दूसरे देशवासियों के हित से पृथक् हैं और परस्पर एक हैं। कभी-कभी राष्ट्रीय भावना की जागृति उस समय होती है

जब एक जाति का किसी विदेशी जाति से संघर्ष हो जाता है। हमारे देश में इस प्रकार की आर्थिक स्थिति यांत्रिक और शक्ति-चालित उद्योग के विकास के कारण पैदा हुई और फैली है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिस की पुष्टि आप को इटली, फ्रांस, जर्मनी जैसे देशों में राष्ट्रीय भावना की जागृति के इतिहास से मिल जायगी। यह संसार विदित है कि आयरलैण्ड में राष्ट्रीय भावना का उद्रेक उस भाषा के पुर्ननिर्माण से हुआ, जिस का अंग्रेजों ने बीज तक लगभग नष्ट कर दिया था। आयरलैण्ड के राष्ट्रीय नेता गैलिक भाषा के पुर्ननिमाता थे, पुनर्प्रतिष्ठाता थे। क्या यह सत्य नहीं है कि हमारे देश में भी कांग्रेस का आन्दोलन तब तक निष्प्राण था, जब तक वह केवल अंग्रेजी जाननेवाले वर्ग तक सीमित था और उस में जीवन-ज्योति उसी समय जगी, जब पूज्य बापू ने हिन्दी को और भारतीय भाषाओं को उस आंदोलन का आधार बनाया और ग्राम-ग्राम में, नगर-नगर में भारतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा स्वाधीनता की अलख जगा दी। भारतीय राष्ट्रीयता का इतिहास भारतीय जनसाधारण का इतिहास है। आज यदि अंग्रेजी जाननेवाला वर्ग इस महान् सृष्टि को हथिया लेना चाहता है, इस का गौरव अपना बना लेना चाहता है, तो कोई आश्चर्य की बात नही। जिस की रग-रग में स्वार्थ बसा है उस से और क्या आशा की जा सकती है? पर उनके लिए यह संभव नही कि वे इस बनी-बनाई राष्ट्रीयता को कायम रख सकें। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि अंग्रेजी का यदि आधिपत्य बना रहा, यदि उसने अपना शोषण कायम रखा, तो भारतीय जन-जीवन शोषक और शोषितों के परस्पर संघर्ष से खंड-खंड हो जायगा। कैसे अचम्भे की बात है कि ये लोग भी न्याय की बात करते है; पर ऐसा लगता है कि न्याय की इन की अपनी विशेष परिभाषा है। सम्भवतः ये लोग इस बात को न्याय नहीं समझते कि भारत के प्रत्येक नर-नारी के लिए यह सुविधा प्राप्त हो कि वह इस देश के राजतन्त्र में सुगमता से प्रवेश कर सके, राजकाज के संचालन में भाग ले सके, राजपदों पर आसीन हो सके। यदि ये लोग इस बात को न्याय मान्ते, तो क्या यह न सोचते कि यह बात तब तक संभव न होगी, जब तक कि भारत का राजतन्त्र अंग्रेजी में लिपटा रहेगा। जैसा मैं अभी कह चुका हूँ कि भारत की निन्यानबे प्रतिशत जनता के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह इस राजतन्त्र में किसी प्रकार से भाग ले सके और वह इसलिए सम्भव नहीं है कि वह अंग्रेजी नहीं जानती और इस राजतन्त्र के द्वार पर बड़े मोटे अक्षरों में लिखा है कि अंग्रेजी न जानने वालों के लिए यहाँ प्रवेश निषिद्ध है। संभवतः इन लोगों की न्याय की परिभाषा वही है, जो साधारण दफ्तरी लोगों की होती है। दफ्तरों में काम करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति यह मानता है कि उस की तरक्की हुई, तो न्याय हुआ और तरक्की न हुई तो अन्याय; अर्थात् वहाँ निजी स्वार्थ का दूसरा नाम न्याय है। जब ये लोग न्याय की

बात करते हैं, तो वहाँ भी वही गंध आती है, नौकरी में हमारी प्रगति रुक जायगी, हम नौकरी में उतने आगे नहीं बढ़ पायेंगे, जितने अन्य; अर्थात् इनके निजी स्वार्थ का ही नाम न्याय है; पर ये लोग इस बात को प्रदेश-प्रदेश के बीच न्याय का बाना पहना देते हैं, मानों कि इनके अपने प्रदेश में ये स्वयं अपनी साधारण जनता के प्रति न्याय कर रहे हों, उस के अधिकारों की रक्षा के लिए लालायित हों। स्वयं अपने स्वार्थ पर डटे रह कर अपनी ही वैयक्तिक प्रगति को ध्यान में रख कर और अपनी जनता के प्रति पूर्ण अन्याय करते रह कर ये लोग न्याय की दुहाई दें, इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है ? अंग्रेजी ही परस्पर इन प्रदेशों में नौकरी के सम्बन्ध में समता रख सकती है, इससे बड़ी अनर्गल बात और क्या हो सकती है ? क्या इन लोगों को यह नहीं दिखाई पड़ता कि इसी तर्क के आधार पर उन्हें एक दिन अंग्रेजों को भी वापस बुलाना पड़ेगा। यदि भारत में भारत की किसी भाषा के प्रयोग से अन्य प्रदेशों के प्रति अन्याय होगा, तो फिर क्या भारत के किसी प्रदेश के व्यक्ति के हाथ में नेतृत्व जाने से इन लोगों को अन्य प्रदेशों के प्रति अन्याय न लगेगा और तब क्या ये लोग इस बात की दुहाई न देने लगेंगे कि भारत का नेता भारतीय न होना चाहिए, वह तो इनके आंग्ल गुरुओं में से एक होना चाहिए। मैं आप सब का ध्यान इस भयावह बात की ओर विशेष रूप से खींचना चाहता हूँ कि जो देशभाषा को विदेशी मान सकते हैं, वे देशभाई को भी विदेशी मान सकते हैं और अपने भाई का गला काटने के लिए विदेशियों को भी आमन्त्रित कर सकते हैं।

प्रजातन्त्र की सफलता क्या अंग्रेजी पर निर्भर है ?

न्याय शब्द का जिस प्रकार उल्टे अर्थ में ये लोग प्रयोग करते हैं, सम्भवतः उसी प्रकार इन के प्रजातन्त्र शब्द का अर्थ है। साधारणतः प्रजातन्त्र से यही बोध होता है कि प्रजा अपना शासन स्वयं करे। राज्यतन्त्र में उस का प्रमुख भाग हो। अपनी राजनैतिक समस्याओं पर वह स्वयं सोच-विचार कर अपनी नीति निर्धारित करे। स्पष्ट है, कि ऐसा राजनैतिक तन्त्र तभी स्थापित हो सकता है कि जब उस का सारा काम-काज जनता की अपनी भाषा में हो। अतः जब भी कोई देश साम्राज्यवादिता के चंगुल से छूटकर स्वतन्त्र हुआ है, उस ने तुरन्त अपना सारा काम-काज अपनी जनता की भाषा में करना आरम्भ कर दिया है। संसार के इतिहास में अन्यत्र ऐसा कोई उदाहरण न मिलेगा, जहाँ स्वतन्त्र देश अपनी भाषा में अपना राज-काज न चलाता हो। केवल हमारा ही अनोखा देश है कि जो स्वतन्त्र कहलाता है; किन्तु जिस का राजकाज देश की भाषा में न होकर उस भाषा में होता है, जो हमारे पिछले शासकों की भाषा थी और जो हम पर उन्होंने अपनी राजनैतिक शक्ति का प्रयोग

कर लादी थी। इससे भी अनूठी बात यह है कि यहाँ का राजतन्त्र प्रजातन्त्र कहलाता है जब कि यहाँ की निन्यानवे प्रतिशत जनता उस भाषा से सर्वथा अपरिचित है, जिस में यहाँ का सारा राज-काज यहाँ का शासक वर्ग करता है। इस अनोखेपन पर गर्व करें या आँसू बहायें ? पर, कैसा आश्चर्य है कि यहाँ का अंग्रेजी जानने वाला वर्ग कहता है कि यदि अंग्रेजी भाषा न रखी गई, तो इस देश में प्रजातंत्र का प्रयोग सफल न हो सकेगा। इन लोगों के अनुसार प्रजातन्त्र हमने इंग्लिस्तान से आयात किया है। इन लोगों का कहना है कि प्रजातांत्रिक प्रणाली और संसदीय राजतन्त्र जगत् को इन के परम गुरु इंग्लैंड की देन है। इंग्लैंड की इस अपूर्व देन के हृदयतल में अंग्रेजी बसी हुई है। तत्सम्बन्धी सारा साहित्य अंग्रेजी भाषा में है। उस की पारिभाषिक शब्दावली अंग्रेजी भाषा में है। उस का विधि-विधान सब अंग्रेजी में है ; अतः यदि हमें इस प्रजातांत्रिक और संसदीय प्रणाली को सफल बनाना है, इस की जड़ें इस देश में मजबूत करनी हैं, तो हमें अंग्रेजी भी अपने यहाँ रखनी है और उसके माध्यम द्वारा अपना कामकाज चलाना है। मुझे इस बात पर आश्चर्य नहीं कि ये लोग समझें कि यह जगत् में जो कुछ श्रेष्ठ है, जो कुछ सुन्दर है, जो कुछ उपास्य है, वह सब इनके परम गुरु इंग्लैंड का है और इंग्लैंड में है; किन्तु इस बात को समझने के लिए अधिक तर्क की आवश्यकता नहीं कि प्रजातांत्रिक प्रणाली से इंग्लैंड का कुछ विशिष्ट संबंध नहीं है। फ्रांस की राज्यक्रांति तक इंग्लैंड में केवल सामन्तों का राज्य था और वहाँ जनसाधारण को बालिग मताधिकार तो पिछले महायुद्ध के पश्चात् मिला। इसके विपरीत युग-युगान्तर से हमारे देश में अपने सामाजिक और सामूहिक मामलों की व्यवस्था ग्राम-पञ्चायतों के द्वारा करने की परिपाटी चली आ रही थी और हमारे देश के लोग उस परिपाटी के अभ्यस्त थे। मैं नहीं जानता कि अंग्रेजी वर्ग के लोग उस पञ्चायत-प्रणाली को प्रजातांत्रिक प्रणाली मानने के लिए तैयार हैं या नहीं, समाज-शास्त्र के निष्पक्ष विद्यार्थी तो उस प्रणाली को प्रजातांत्रिक प्रणाली का आदि रूप सर्वदा स्वीकार करते रहे हैं। तथ्य तो यह है कि किसी देश की भी शासन-प्रणाली उसी देश के आदर्शों और भावनाओं के अनुसार होती है ; अतः हमारे देश में भी वर्तमान प्रणाली की सफलता, विफलता, हमारे इतिहास, हमारी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था, हमारे आदर्शों और भावनाओं पर निर्भर करेगी न कि अंग्रेजी पर। चाहे हम कैसी ही दृढ़ शृंखला से अपने को इंग्लैंड की चौखट से कसकर कितना ही क्यों न बांध लें, चाहे हम "मे" की संसदीय प्रणाली की प्रसिद्ध पुस्तक के कितने ही पारायण क्यों न करें, हमारे देश का राजतन्त्र उस रूप में कार्य नहीं कर सकता, न ही कर सकेगा, जिस रूप में कि वह इंग्लैंड में कार्य करता रहा है ; अतः

इस बात में लेशमात्र तथ्य नहीं कि अंग्रेजी बनाये रखने से हम अपने इस तन्त्र को ठीक उसी ढर्रे पर चला सकेंगे, जैसे कि वह इंग्लैंड में चलता है। यह हमारा अपना है। इस का निर्माण हमारी सर्वप्रभुता सम्पन्न जनता ने अपनी संविधान-सत्ता के द्वारा किया है। यह हमारे देश की समस्याओं को ध्यान में रख कर बना है और इस में अनेक ऐसी बातें हैं, जो न तो इंग्लैंड में और न इंग्लैंड के किसी अधिराज्य में पायी जाती है; अतः इस बात का प्रयास करना कि यह पूर्णतया भारतीय राजतन्त्र इंग्लैंड के राज्यतन्त्र के ही ढर्रे पर चले, इस तन्त्र का अपमान है और हमारे देश का और जनता का अपमान है। कम-से-कम इस आधार पर अंग्रेजी को रखने का समर्थन तो घाव पर नमक छिड़ने के समान है।

देश के द्रुत आर्थिक विकास के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता एक भ्रम

सब से अनोखी बात जो अंग्रेजी के पक्षपाती उस के समर्थन में देते हैं, वह यह है कि हमारे द्रुत आर्थिक विकास के लिए अंग्रेजी की परम आवश्यकता है। कहा यह जाता है कि द्रुत आर्थिक विकास के लिए हमें अनेक इंजीनियर, शिल्पी और वैज्ञानिक चाहिए। हमारे पास इस समय सारा साहित्य अंग्रेजी में उपलब्ध है और भारतीय भाषाओं में वह साहित्य उपलब्ध नहीं है; अतः हम पर्याप्त संख्या में इंजीनियर, वैज्ञानिक और शिल्पी इस अंग्रेजी साहित्य के द्वारा शीघ्रातिशीघ्र तैयार कर सकते हैं। यदि हम थोथी राष्ट्रीय भावना से बंधे रहकर यह प्रयास करें कि हमारी देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा हम अपने विद्यार्थियों को इन विषयों की शिक्षा दें, तो हमें अनेक वर्ष व्यर्थ में यह साहित्य अपनी भाषाओं में तैयार करने के लिए खो देने पड़ेंगे और इस प्रकार हमारा आर्थिक विकास न हो पायेगा। जिस ढंग से यह बात कही जाती है, उससे ऐसा लगता है कि कम-से-कम यह तर्क तो अकाट्य है। किन्तु, है यह भी धोखेभरी बात। अब तक हम सब यही समझते रहे हैं और मानते रहे हैं कि शिक्षा का मूलमंत्र परिचित के आधार पर अपरिचित का बोध कराना है। इसी कारण संसार-भर के शिक्षाशास्त्री यह मानते हैं कि मातृभाषा के माध्यम द्वारा समय और शक्ति की पूर्ण मितव्ययिता के साथ और अत्यन्त तीव्र गति से बालक को शिक्षा दी जा सकती है; अतः यह स्पष्ट है कि भारत में तीव्रातितीव्र गति से देशवासियों को शिक्षित करने का माध्यम अंग्रेजी हरगिज नहीं हो सकती। केवल अंग्रेजी सीखने में ही हमारे विद्यार्थी को कम-से-कम दस वर्ष व्यतीत कर देने पड़ते हैं। इस के विपरीत उसे अच्छा कामचलाऊ ज्ञान एक दो वर्ष में ही हो जाता है। स्पष्ट है, यदि हम देश में हर प्रकार की शिक्षा अपनी मातृभाषा द्वारा अपने युवकों दें, तो वह लगभग आधे समय में उतना ज्ञानोपार्जन कर लेंगे, जितना आज वे

अंग्रेजी के माध्यम द्वारा करते हैं। हर विद्यार्थी के कम-से-कम पाँच छै वर्ष बच जायेंगे और हम यदि इन वर्षों को विद्यार्थियों की संख्या से गुणा कर दें, तो हम को पता चलेगा कि हम अपने देशवासियों के लाखों वर्ष इस प्रकार बचा लेंगे और जो समय इस प्रकार बचेगा, उसे देश के विभिन्न प्रकार के अधिकाधिक आर्थिक विकास में लगा सकेंगे। यह दलील कि हमारी भाषाओं में साहित्य नहीं है, कुछ महत्त्व नहीं रखती। यदि हमने उस धन और समय का जो हम आज अंग्रेजी माध्यम के कारण व्यर्थ गवाँ रहे हैं, शतांश भी आवश्यक साहित्य के निर्माण के लिए लगाया होता, तो अब तक हमारे पास अपनी भाषाओं में बरसों पूर्व सब आवश्यक वैज्ञानिक और शिल्पिक साहित्य हो जाता। पर, हमारे अंग्रेजी वर्ग के लोगों ने ही हर प्रकार की बाधा खड़ी करके यह नहीं होने दिया। इस प्रकार के साहित्य का निर्माण तब होता है, जब उसके लिए मांग हो; किन्तु, जब अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही शिक्षा दी जाती रहे, तो अपनी भाषाओं में ऐसे साहित्य का निर्माण होने का प्रश्न पैदा हो ही कैसे सकता है। न तो कोई लेखक और न कोई प्रकाशक इस बात के लिए तैयार होगा कि वह अपना समय और धन उस साहित्य के तैयार करने और प्रकाशित करने में लगाये जिस के मांग के सब द्वार यत्नपूर्वक पूर्णतः बन्द कर दिये गये हों।

वैज्ञानिक उधार खाता

हमारी भाषाओं में इस प्रकार का साहित्य पहले हो और तब वे शिक्षा का माध्यम बनाई जायें, यह बात किसी से यह कहने के समान है कि तैरना पहले सीख लो और पानी में पीछे घुसो। इस प्रश्न के एक पहलू और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू पर. अब तक लोगों की दृष्टि नहीं गई है। विज्ञान का इतिहास हमें यह बताता है कि नये-नये वैज्ञानिक तथ्यों की खोज और नये-नये यंत्रों का निर्माण विश्वविद्यालय से उपाधि-प्राप्त विद्यार्थियों ने इतना नहीं किया है, जितना कि उन लोगों ने किया है जिन्हें कि जीवन में स्वयं की समस्याएँ स्वयं अपनी प्रतिभा से सुलझाना पड़ती हैं अर्थात् श्रमिकों ने और शिल्पियों ने। हम यह समझे बैठे हैं कि हमारे विश्वविद्यालयों में जो पाठ पढ़ाये जाते हैं, उन्हीं के सहारे इन विश्वविद्यालयों के स्नातक हमारी सब यांत्रिक और आर्थिक समस्याओं का हल कर देंगे। एक प्रकार से देखा जाय, तो विज्ञान के क्षेत्र में भी हम इसी भरोसे बैठे हैं कि पाश्चात्य जगत् से मिले वैज्ञानिक उधार-खाते से हमारा उसी प्रकार काम चल जायगा, जिस प्रकार कि आर्थिक क्षेत्र में विदेशी धन के उधार खाते से हम चला रहे हैं; किन्तु भारत के भौगोलिक वातावरण से और भारत में प्राकृतिक परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए केवल पाश्चात्य जगत् की उधार से हमारा काम नहीं चलने का और यदि किसी सीमा तक चल भी जाय,

तो हम अपने देश को विज्ञान के उस स्तर तक नहीं ला सकेंगे, जिस स्तर तक कि अन्य देश अपनी नई-नई खोजों, नये-नये यंत्र-निर्माणों के द्वारा पहुँच गये हैं और आगे भी पहुँचेंगे। यदि हम वैज्ञानिक जगत् में दूसरों के समकक्ष बनना चाहते हैं, तो हमें स्वयं नई-नई वैज्ञानिक खोजें और नये-नये प्रकार के यंत्र-निर्माण करने होंगे और यह सब हम पाश्चात्य जगत् की जूठन से नहीं कर पायेंगे। इस के लिए यह आवश्यक होगा कि हमारा प्रत्येक श्रमिक, प्रत्येक कृषक, प्रत्येक नर-नारी इस बात के लिए सचेष्ट हो जाय कि जो समस्याएँ उसके सामने आती हैं, उनके समाधान के लिए अहर्निश नई-नई युक्तियाँ सोचे, नये-नये यंत्र निकाले और इस प्रकार नये-नये वैज्ञानिक तथ्यों का पता चलाये। आवश्यकता नवनिर्माण अथवा उत्पत्ति की जननी है। (Necessity is the mother of invention) जब जीवन की चुनौती हम स्वीकार करते हैं, तभी हम नये सत्य खोज निकालते हैं, नये यंत्र, नई युक्तियाँ बना पाते हैं। स्पष्ट है कि हम अपने देश के निन्यानबे प्रतिशत वासियों को यह अवसर इस कारण प्रदान नहीं कर पा रहे हैं कि हम अंग्रेजी से चिपटे हुए हैं और अपने इस देश में यह भ्रम फैला रक्खा है कि जिसे अंग्रेजी नहीं आती, वह किसी प्रकार की वैज्ञानिक खोज या वैज्ञानिक निर्माण नहीं कर सकता। विदेशी भाषा के माध्यम द्वारा पढ़ने के लिए अपने युवकों को मजबूर करके हमने उन की प्रतिभा को तो कुण्ठित कर ही दिया है, उन को रट्टू मंडूक बना ही दिया है, हमने साथ ही अपने देश के साधारण जन में भी असहायता की विचारशून्यता की प्रवृत्ति पैदा कर दी है और ज्ञान के स्रोत हर रकार से अवरुद्ध कर दिये हैं। हमारा आर्थिक तंत्र आज लंगड़ी चाल से चल रहा है, उसमें जनता के हृदय का स्पन्दन नहीं है, उस के पीछे जन-बल नहीं है, इस देश का महान् अपरिमित जन-बल नहीं है। सच तो यह है कि हमारा अंग्रेजी वर्ग अपने स्वार्थवश यह भूल बैठा है कि इस देश की कितनी हानि इस अंग्रेजी के कारण हो रही है। हम अनेक वर्षों तक अपनी राष्ट्रीय महासभा में यह बात अपने संकल्पों, अपने प्रस्तावों द्वारा कहते रहे हैं कि अंग्रेजी के कारण हमारे देश का महान् सांस्कृतिक, आर्थिक और नैतिक महापतन हुआ है। जब हम यह बात कहते थे, तो हमारा आशय इतना ही न था कि हमारा पतन इस कारण हुआ कि इस देश में अंग्रेज राजतंत्र के प्रमुख पदों पर आसीन थे और वे उस तन्त्र को अपने स्वार्थ के लिए चलाते थे; वरन् हमारे मन में यह बात भी थी कि इस पतन का कारण वह भाषा भी है जिसके द्वारा वह अपना शासन इस देश में चला रहे थे। अंग्रेजी भाषा के कारण हमारी अपने देश की भाषाएँ पंगु हो गईं। उन को वह दानापानी न मिला, जो उनके स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक था। अंग्रेजी के कारण हमारे जन-साधारण असहाय हो गये क्यों कि राज-दरबार में जाने पर वे शासकों से अपनी भाषा में न तो बात कर सकते

थे और न शासकों की भाषा समझ सकते थे ; अतः उन्हें अपने जीवन की गाढ़ी कमाई शासकों के दलालों को इसलिये देनी पड़ी कि वे दलाल इन की बात शासकों तक पहुँचा सकें और शासकों के आदेश उन्हें समझा सकें। अंग्रेजी के कारण हमारे देश के शिल्पी, हमारे देश के महान् वास्तुकार दर-दर के भिखारी हो गये। जिन लोगों ने कोणार्क जैसे मन्दिर का निर्माण किया था, उन के वैसे ही कुशल वंशज केवल इसलिये रंक हो गये कि वे अंग्रेजी न जानते थे और अंग्रेजी साम्राज्य के राज-दरबार में केवल वे ही कुशल वास्तुकार माने जाते थे, जिन्होंने किसी अंग्रेजी वास्तुविज्ञान के विद्यालय में शिक्षा पाई थी। अंग्रेजी ने हमें प्रगति पथ पर तो क्या चलाया, हम से वह विज्ञान, वह शिल्प, वह कला भी बहुत कुछ छीन ली, जो हम अंग्रेजी राजकाल के पूर्व अर्जित कर पाये थे। आज भी हमारी अंग्रेजी से कितनी हानि हो रही है, इस पर जरा विचार कीजिए। अंग्रेजी के मोह के कारण हमारे सहस्रों विद्यार्थी इंग्लैंड, अमरीका के विद्यालयों में जाकर पढ़ते हैं और इस प्रकार देश का करोड़ों रुपया विदेशों में खर्च हो रहा है। हमारे यहाँ आज अंग्रेजी की पढ़ाई प्राथमिक विद्यालयों में भी अनिवार्य कर दी गई है। परिणामतः हमें अपनी प्राथमिक कक्षाओं के लिए अंग्रेजी की पुस्तिकाएँ विदेशों से आयात करने के लिए संभवतः करोड़ों रुपया खर्च करना पड़ रहा है। आखिर यह सब क्यों हो रहा है ? वह कौन सी-बात है, जिस के लिए प्राथमिक कक्षाओं में अंग्रेजी पढ़ानी आवश्यक समझी जा रही है और उस की पढ़ाई पर धनराशि व्यय की जा रही है ? आखिर प्राथमिक कक्षाओं में इस अंग्रेजी पढ़ाई से हमारे ग्रामीण बालक को क्या लाभ होता है ? इसके अतिरिक्त हमारे देश में अंग्रेजी का उच्च स्तर बनाये रखने के लिए एक विशेष संस्था हैदराबाद में कायम की गई है, जिस पर भी लाखों रुपया खर्च होगा। इस प्रकार जो धन सृजनात्मक कार्यों और आर्थिक उत्पादन के लिए काम में लाया जा सकता था वह आज इस विफल प्रयास में खर्च किया जा रहा है कि इस देश को अंग्रेजी-भाषा-भाषी बना दिया जाय और यहाँ की भाषाओं का अस्तित्व नष्ट हो जाय। कैसे मजे की बात है कि अंग्रेजी की पढ़ाई प्राथमिक कक्षाओं में तो अनिवार्य की जा रही है ; किन्तु जिस हिन्दी को हमारी प्रभुता-सम्पन्न संविधान-सभा ने संघ की भाषा विहित किया था, उस की पढ़ाई कई प्रदेशों में अनिवार्य नहीं की गई है और यह पूरा प्रयास किया जा रहा है कि वह उन प्रदेशों में प्रवेश न कर पाये। मैं समझता हूँ कि कुछ लोगों के मन में यह कल्पना वर्तमान है कि अंग्रेजी को प्राथमिक करके इस देश के वासियों को वैसा ही अंग्रेजी का ज्ञान करा दिया जाय, जैसा कि अफ्रिका में नीग्रो लोगों को कराया गया और इस प्रकार उन्हें टूटी-फूटी अंग्रेजी में अपनी बात व्यक्त करने के योग्य बनाकर कह दिया जाय कि इस देश के अधिक तर वासी अंग्रेजी भाषाभाषी हैं और इसीलिए

अंग्रेजी का ही यहाँ अक्षुण्ण साम्राज्य बना रहे। यद्यपि उन की परिकल्पना कभी भी सफल नहीं हो सकती, किन्तु, फिर भी वे लोग मोहवश इस प्रकार का प्रयास कर रहे हैं और किसी-न-किसी बहाने से देश के धन, समय और शक्ति का अपव्यय इस लक्ष्य-पूर्ति के लिए कर रहे हैं। किन्तु, स्पष्ट है कि इस प्रकार हमारे देश की महान् हानि हो रही है। अंग्रेजी के कारण हमारा नैतिक पतन भी कुछ कम नहीं हुआ है। हमारे देश में भ्रष्टाचार और युवकों में अनुशासनहीनता और उद्दंडता भी बहुत कुछ इसी कारण फैली है कि अंग्रेजी देशों से आनेवाली कौमिक पढ़-पढ़कर हमारे विद्यार्थी कुछ ऐसी बातों की ओर आकृष्ट होते हैं, जो हमारी मर्यादाओं, हमारी परम्पराओं, हमारे आदर्शों के सर्वथा प्रतिकूल है। और इस प्रकार अनुशासन का आधार अर्थात् आदर्शों में आस्था और परम्पराओं के प्रति आदर नष्टप्राय होता जा रहा है। साथ ही अंग्रेजी के मोह के कारण हमारे देश में आज यह भावना घर करती जा रही है कि हमारी भाषाएँ पंगु हैं और इस प्रकार हमारे देश में ऐसे वर्ग की सृष्टि हो रही है, जो अपनी जाति, अपनी भाषा और अपने देश का भद्दा परिहास करने से नहीं चूकता। आजकल इस वर्ग के लोग यत्र-तत्र भारतीय भाषाओं और विशेषतः हिन्दी का मजाक उड़ाते दिखते हैं। अंग्रेजी का एक शब्द लेकर वह उसके लिए कोई मनमाना हिन्दी का लम्बा-चौड़ा पर्याय देकर और उस पर्याय के प्रति परिहास कर यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि हिन्दी-जैसी उपहास्यास्पद भाषा कोई हो ही नहीं सकती। उन लोगों के मन में संभवतः यह विचार उठता ही नहीं कि अपनी भाषा का परिहास अपनी जननी का परिहास है। भाषा हमारी माता के समान होती है, वह हमारे सांस्कृतिक शरीर की रचना करती है, उस का पोषण करती है, उस को अनुप्राणित करती है ; अतः अपनी भाषा पर कीचड़ उछालना अपनी माँ पर कीचड़ उछालना है। संसार भर में मैं घूमा हूँ ; पर मुझे एक भी ऐसा देश और जाति नहीं दिखाई दी, जिसके लोग अपनी भाषा का स्वयं अनादर तो क्या किसी अन्य से भी अनादर सहन कर सकें ; किन्तु, इस अंग्रेजी मोह के कारण हमारे देश में ऐसे लोग हैं, जो इस बात से कभी नहीं हिचकिचाते कि वे अपनी भाषा का अनादर करें और उस की खिल्ली उड़ायें। जब भी वे बोलते हैं, तभी वे अपनी भाषा का परिहास करते हैं और उसके लेखकों और उपासकों की खिल्ली उड़ाते हैं। उन्हें सम्भवतः यह खयाल नहीं आता कि ऐसा करके वे अपने मुख पर ही कलंक कालिमा पोत रहे हैं और यदि आता भी है तो संभवतः अपने अंग्रेजी-प्रेम के कारण वे अपना काला मुँह करने के लिए भी तैयार हैं। इतना ही नहीं, इस अंग्रेजी के कारण हमारा देश एक प्रकार से इंग्लैंड का अनुवाद बनाया जा रहा है। वैसा ही अनुवाद जैसा कि शेक्सपियर ने अपने एक नाटक में अपने एक पात्र का करके दिखाया है। मैं समझता हूँ कि आप लोगों ने "मिड समर

नाइट्स ड्रीम" नाटक पढ़ा होगा। इसमें एक पात्र बाटमनामी है जिसके सिर पर एक मसखरे वनदेव ने गधे का सिर रख दिया था उसे देख कर उस का मित्र, सहसा कह उठता है—"Bottom Thou art Translated."

हमारी भाषाओं पर अक्षमता का आरोप

हमारे ये अंग्रेजी के उपासक यह माने बैठे हैं कि हमारे देश में जो कुछ अच्छाई आनी है, वह सब अंग्रेजी-साहित्य के अनुवाद से आनी है और इसीलिए वह समय-समय पर इस देश की भाषाओं के उपासकों को चुनौती देते रहते हैं कि इस अंग्रेजी शब्द का क्या देशी पर्याय है, या उस अंग्रेजी शब्द का क्या देशी पर्याय है, मानों कि हमें अंग्रेजी के पर्यायों के अतिरिक्त और कुछ काम रह ही नहीं गया है। वे बार-बार कहते हैं कि देशी भाषाओं में यह क्षमता नहीं कि वे अंग्रेजी शब्दों की विभिन्न ध्वनियों को व्यक्त कर सकें और इसलिए उन में यह क्षमता भी नहीं है कि वे अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध अमूल्य वैज्ञानिक, दार्शनिक और अन्य प्रकार की निधियों को यथावत व्यक्त कर सकें। इस बात का वह ढिंढोरा सारे जगत् में पीटते हैं कि भारतीय भाषाएँ पंगु हैं, अक्षम हैं और इसलिए भारत में अंग्रेजी रखी जा रही है और रखी जायगी, पढ़ाई जा रही है और पढ़ाई जायगी। कैसा पतन है यह हमारा कि हम यह मान बैठें कि हम में अपनी कोई नैसर्गिक सृजन-शक्ति नहीं है, हम कोई मौलिक सृष्टि नहीं कर सकते, हम ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में स्वयं कुछ नहीं दे सकते। यह बात कि किसी विशेष अंग्रेजी शब्द की सब ध्वनियों को हम किसी एक भारतीय शब्द से व्यक्त नहीं कर सकते। ऐसा नहीं है, जिस से भारतीय भाषाओं का किसी प्रकार की अक्षमता लेशमत्र सिद्ध होती हो। हर शब्द के पीछे उस जाति का इतिहास होता है, उस भूमि का वातावरण होता है, भौगोलिक परिस्थितियाँ होती हैं, जिस जाति और जिस देश में उस शब्द का प्रयोग होता रहा है। प्रत्येक अंग्रेजी शब्द के पीछे इंग्लैंड की भौगोलिक परिस्थितियाँ, इंग्लिश जाति का इतिहास और वहाँ के सामाजिक सम्बन्ध और संस्थाएँ हैं; अतः भारतीय भाषाओं का तो प्रश्न ही क्या, संसार की किन्हीं अन्य भाषाओं में भी ऐसा कोई शब्द नहीं मिल सकता, जो उन की सब ध्वनियों को यथावत व्यक्त कर सके। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं के शब्दों के लिए भी अंग्रेजी में कभी ऐसे पर्याय नहीं मिल सकते जो उनके शुद्ध स्वरूप और विभिन्न ध्वनियों को यथावत व्यक्त कर सकें। मैं पूछता हूँ कि क्या कोई अंग्रेजी का महारथी मुझे जलेबी, बालूसाई गुलाब जामुन, दहीबड़े, चाट जैसे हमारे साधारण शब्दों का ठीक-ठीक अंग्रेजी पर्याय बता सकता है ? तब क्या यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी भाषा पंगु है, अक्षम है और उस में विचारों की अभिव्यक्ति की शक्ति नहीं है। बात यह है कि जब भी एक

भाषा में निहित विचारों को और भावनाओं को दूसरी भाषाओं में अनूदित करने का अवसर आता है, तब यह संभव नहीं होता कि अनुवाद पूर्णतः मूल को ध्वनित कर सके। थोड़ा-बहुत अन्तर रह ही जाता है; पर उस कारण किसी भाषा की अक्षमता की दुहाई नहीं पीटी जाने लगती। जो लोग माता के समान आदरणीय अपनी भाषा का उपहास और तिरस्कार करने पर तुले हुए हैं, वे भला यह कहने में क्यों संकोच करेंगे कि हमारी भाषाएँ आधुनिक जगत् के योग्य नहीं हैं। इस संबंध में मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। आजकल हिन्दी का तिरस्कार करने के लिए बराबर यह कहा जाता है कि जो हिन्दी काम में लायी जा रही है, वह इतनी क्लिष्ट, इतनी दुरूह है और की जा रही है कि कोई उसे नहीं समझ सकता। मेरी यह मान्यता है कि यह बात उन लोगों द्वारा अधिकतर दुहराई जा रही है, जो हिन्दी के कभी समर्थक नहीं थे, जिन्होंने हिन्दी जीवन में कभी पढ़ी नहीं, जो हिन्दी से आज भी लगभग अपरिचित हैं, और जो यह समझते हैं कि वही भाषा सरल है, जो उन की अपनी समझ में आ जाय; अर्थात् जो स्वयं अपने को ही इस बात का मापदंड माने बैठे हैं कि कौन-सी भाषा दुरूह और कौन-सी भाषा सरल है। कम-से-कम जो लोग वैज्ञानिक दृष्टि से सब प्रश्नों पर विचार करने की दुहाई देते हैं, उन्हें यह तो सोचना चाहिए कि स्वयं अपने को ही और अपने ज्ञान को ही किसी प्रश्न के निर्णय के लिए मापदंड न मान लेना चाहिए। विज्ञान का यह पहला सिद्धांत है कि निजी व्यक्तित्व को ओझल करके प्रश्न पर विचार किया जाय; किन्तु हिन्दी का यह दुर्भाग्य है कि उस के विषय में विचार करते समय कुछ ऐसे महान् व्यक्ति भी, जो सब दृष्टि से परम पूज्य और आदरणीय हैं, इस विचार की इस वैज्ञानिक प्रणाली को भूल जाते हैं। आज जो हिन्दी लिखी जा रही है, वह वहाँ तक बोधगम्य और जनप्रिय है, इस बात का निर्णय तो इसी से हो जाता है कि हिन्दी के समाचार-पत्र, हिन्दी पुस्तकें, जनता में कितनी बिकती हैं, कितनी पढ़ी जाती हैं। स्मरण रहे कि ये हिन्दी की पुस्तकें या ये हिन्दी के समाचार-पत्र ऐसी परिस्थितियों में जनता द्वारा गृहीत किये जा रहे हैं, जो हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं के सर्वथा प्रतिकूल कर दी गई हैं। आज हिन्दी और देशी भाषाओं को वैसी कोई सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं, जैसी अंग्रेजी के लिए उदारता से उपलब्ध की जा रही हैं। यह सभी को ज्ञात है और इस संबंध में लोकसभा, राज्यसभा आदि में भी काफी प्रश्नोत्तर तथा भाषण हो चुके हैं कि हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रों को सरकारी विज्ञापन उस प्रकार नहीं मिलते, जिस तरह अंग्रेजी पत्रों को मिलते हैं, चाहे इन भारतीय भाषाओं के पत्रों की ग्राहक संख्या अंग्रेजी पत्रों से अधिक ही क्यों न हो। विज्ञापन देने के संबंध में सरकार की इस नीति में तुरन्त परिवर्तन होना आवश्यक है। बिना इसके भारतीय भाषाओं

के पत्रों का स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता और न उसका आर्थिक ढाँचा सुधर सकता और न उनका सम्मान ही बढ़ सकता है। क्या संघ और क्या राज्य, सर्वत्र ही अंग्रेजी पढ़े-लिखे को ही शासन में पद मिलता है। जिसकी अंग्रेजी अच्छी नहीं, वह सेवा आयोगों द्वारा ली जानेवाली परीक्षाओं में कदापि सफल नहीं हो सकता। इसका परिणाम यह हो रहा है कि जिन प्रदेशों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाएँ कर दी गई हैं, वहाँ के विद्यार्थी इन परीक्षाओं में अपने को पिछड़ा हुआ पाते हैं। इस प्रकार उन प्रदेशों को दंड दिया जा रहा है, जिन्होंने भारतीय भाषाओं का आंचल पकड़ा है। फिर इसमें क्या आश्चर्य की बात है कि अनेक माता-पिता जो अपनी संतान का भविष्य उज्ज्वल करना चाहते हैं, इस बात की मांग करें कि अंग्रेजी पुनः शिक्षा का माध्यम बनाई जाय और अंग्रेजी का स्तर ऊँचा किया जाय। साथ ही इसमें क्या आश्चर्य की बात है कि हमारे देश का अभिजात वर्ग इस का प्रयास करे कि उस के पुत्र-पुत्रियाँ अंग्रेजी या पब्लिक स्कूलों में प्रवेश पा जायें। कुछ दिन हुए एक आंग्ल भारतीय नेता ने दम्भ के साथ कहा था कि मंत्री लोग भी आंग्ल भारतीय विद्यालयों में अपने बालकों को प्रविष्ट करने के लिए लालायित रहते हैं; पर जब हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं के गले में फांसी डाल दी गई है और उन का आसरा लेने वालों के लिए कोई भविष्य नहीं छोड़ा गया है, तब इस में क्या आश्चर्य कि अपने बालकों को उच्च आसन पर बैठालने के इच्छुक माता-पिता इन आंग्लभारतीय विद्यालयों में उन का प्रवेश करना चाहें। इस पर भी देशी भाषाओं की पुस्तकें लाखों की संख्या में बिकती हैं और पढ़ी जाती हैं और पाठकों को कभी यह नहीं लगता कि उन की भाषा उन की समझ में नहीं आती।

अंग्रेजी भक्तों की वैज्ञानिक शब्दावली का फार्मूला

मजे की बात यह है कि लोग इस बात की दुहाई देते हैं कि हिन्दी अत्यन्त सरल बनाई जाय, उन्हीं लोगों ने यह फैसला भी कर दिया है कि जहाँ तक वैज्ञानिक शब्दावली का प्रश्न है, वह पूरी-की-पूरी अंग्रेजी भाषा से ज्यों-की-त्यों ले ली जाय। क्या यह बात उन्हें नहीं दिखती कि वह शब्दावली हमारे देशवासियों के लिए अत्यन्त दुरूह और क्लिष्ट होगी और यहाँ के ९९.९ प्रतिशत लोग उसे समझने में पूर्णतः असमर्थ होंगे। मैं इस संबंध में आप के समक्ष कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। नीम जैसे सरल सुबोध और जनप्रिय शब्द के लिए अब हमारी वैज्ञानिक शब्दावली में Azadirachta Indica लिखा जायगा। मैं नहीं जानता कि आप में से कितने लोग और आप में से ही क्यों, इस देश में से कितने लोग इस शब्द को समझ पायेंगे। मैं तो यह भी कहता हूँ कि अंग्रेजी के हिमायतियों में से भी ९९ प्रतिशत इस को बोल न सकेंगे,

समझने का तो प्रश्न ही क्या। ऐसा ही दूसरा शब्द हल्दी है जिसके लिए हमारी वैज्ञानिक शब्दावलियों में लिखा जायगा Circuma Tonga धनिये के लिये लिखा जायगा Coriandrum Satibum हींग के लिए लिखा जायगा Ferula Asa Foetida इसी प्रकार सोने को Aurum कहा जायगा, लोहे को Ecrrum और सीसे को Plumbum कहा जायगा। मैंने कुछ अन्य शब्दों की एक सूची तैयार की है जिसको यहाँ पढ़कर सुनाना आवश्यक नहीं है किन्तु, इस भाषण की प्रतियों के साथ संलग्न है। इस सूची में तो कुछ ही शब्द दिये हुए हैं ; किन्तु, ऐसे ही लाखों शब्द जिन्हें कोई नहीं समझ सकता, हिन्दी पर लादने का निश्चय किया जा चुका है। मैं यह पूछता हूँ कि सरलता का सिद्धान्त इस क्षेत्र में क्यों लोप हो गया ? यदि यह कहा जाय कि वैज्ञानिक क्षेत्र में यह आवश्यक है कि शब्द बड़े निश्चित और सधे हुए हों और इसलिए कठिन शब्दों से नहीं बचा जा सकता, तो फिर यह कहना कि अन्य क्षेत्रों में सूक्ष्म विचार व्यक्त करने के लिए या भावों की चमत्कारिक अभिव्यक्तियों के लिए कठिन शब्द आवश्यक न होंगें, ठीक नहीं है। शब्दों का चयन विषय के अनुसार होता है और एक विषय वालों को दूसरे विषय के शब्द दुरूह लगा करते हैं। इस का एक बड़ा उत्तम उदाहरण अभी हाल में मिला है। संयुक्त राष्ट्र में वक्ताओं के भाषणों का तात्कालिक अनुवाद करने के लिए अत्यन्त योग्य अनुवादक और कई भाषाओं के ज्ञाता नियुक्त हैं। कुछ दिन हुए, एक वैज्ञानिक के सम्मेलन में इन अनुवादकों को वैज्ञानिकों के भाषणों का अनुवाद करने का काम सौंपा गया, किन्तु इन में से एक भी उसे न कर पाया, क्यों कि जिन विषयों की चर्चा इस वैज्ञानिक सम्मेलन में थी, उन विषयों से ये अनुवादक परिचित न थे ; अतः यदि हिन्दी की, अन्य भारतीय भाषाओं के विभिन्न विषयों संबंधी शब्दावली, हमारे कुछ राजनीतिकों की समझ में न आये, तो उन्हें यह न समझना चाहिए कि जान-बूझकर कोई इन भाषाओं को दुरूह बना रहा है और कम-से-कम उन लोगों को तो इस सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकार हो ही नहीं सकता, जिन्होंने भारतीय भाषाओं में से किसी को पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया है ; अतः मेरा विनम्र निवेदन है कि अंग्रेजी के भक्त हमारी भाषाओं का निरादर और अपमान करने से अब अलग रहें। यह हमारे देश का अपमान है, हमारी सांस्कृतिक जननी का अपमान है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का आधार अंग्रेजी—एक भ्रमजाल

ऐसे ही खेद की यह बात है कि अंग्रेजी के कारण हम में कुछ यह भावना पैदा हो गई है कि हम विदेशियों से कुछ हेय हैं और हम उन के समकक्ष तभी हो सकते हैं, जब

हम उन की भाषा में ही या अंग्रेजी के माध्यम द्वारा उन से बात करें। मेरी यह मान्यता है कि यही हेयता की भावना इस तर्क के पीछे है कि बाह्य जगत् से हमारा संपर्क केवल अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही हो सकता है। कहा यह जाता है कि आज संसार के विभिन्न देश एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गये हैं और इसलिये प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति के लिए यह वांछनीय है कि सारे भू-मण्डल से अपना सम्पर्क बनाये रखे। और जहाँ तक हमारे देश का संबंध है, यह कहा जाता है कि यह संपर्क केवल अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही रखा जा सकता है; पर प्रश्न यह होता है कि हमारे लिए ही यह क्यों आवश्यक है कि हमारा बाह्य जगत् से सम्पर्क अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही हो? यह बात फ्रांस, रूस, दक्षिण अमेरिका, चीन आदि के लिए आवश्यक क्यों नहीं है? क्या इन देशों का बाह्य जगत् से सम्पर्क नहीं है? क्या ये लोग संयुक्त राज्य में केवल अंग्रेजी के द्वारा ही विचार-विनिमय करते हैं? क्या यह सत्य नहीं है कि दक्षिणी अमरीका के राज्यों के प्रतिनिधि स्पेनिश भाषा के माध्यम द्वारा, रूस के प्रतिनिधि रूसी भाषा के द्वारा, फ्रांस के फ्रांसीसी भाषा के द्वारा और चीन के चीनी भाषा के द्वारा सब काम वहाँ करते हैं? यदि वे लोग अपनी-अपनी भाषाओं के माध्यम द्वारा बाह्य जगत् से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं तो फिर ऐसी कौन-सी बाधा है कि हम अपनी भाषा के माध्यम से बाह्य जगत् से संबंध स्थापित न कर सकें? यह ठीक है कि आज संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी एक स्वीकृत भाषा नहीं है; किन्तु क्या इस का यह कारण नहीं है कि जिस समय संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई थी, उस समय हम परतन्त्र थे और अंग्रेजी के दास थे; अतः वहाँ हमारे संबंध में यह विचार ही पैदा न हुआ कि हमारी भी कोई मांग हो सकती है। चीन ने अपनी गरिमा रखने के लिए अपनी भाषा को वहाँ मान्य कराया; किन्तु क्या स्वतन्त्र होने के पश्चात् हम ने एक दिन भी यह प्रयास किया है कि हमारी भाषा उस संगठन की एक स्वीकृत भाषा हो जाय? पर हम करते ही कैसे, जब हम अपने देश में ही अपनी भाषा को राज्यासन पर बैठालने को उत्सुक नहीं हैं। परिणाम यह हुआ है, कि विदेशी हम को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं और समझते हैं कि हम ऐसी बर्बर जाति के लोग हैं, जिन की अपनी कोई भाषा नहीं। और जो अपने भूतपूर्व शासकों की भाषा के जूठन से काम चलाते हैं। कैसा पतन है यह उस देश का, जिस की भाषा एक दिन सारे दक्षिण एशिया और अन्य देशों की विचार-विनिमय की भाषा थी। जिस में अनेक देशों के विद्यार्थी उस भाषा का ज्ञान उपार्जित करने को आते थे और जो देश सारे सभ्य जगत् का सांस्कृतिक केन्द्र था। कैसा पतन है कि आज उस देश के वासी इस बात में अपना गौरव समझें कि उन की सन्तान केवल अंग्रेजी बोल सकती है, इस देश की एक भाषा भी नहीं। हमारी आत्मा का हनन इससे अधिक और क्या हो सकता है और यह सब इसलिए

हुआ है कि अंग्रेजी हम पर लादी गई। राजनीति-शास्त्र में एक सूत्र है कि यदि कोई जाति अन्य जाति पर अपना राज पूर्णतः जमाना चाहती है, तो उसे यह चाहिए कि वह विजित जाति की भाषा नष्ट कर दे। अंग्रेजों ने इस प्रयोजन से हम पर अंग्रेजी लादी थी। वे हमारी भारतीय आत्मा का हनन करना चाहते थे। वे इस में कुछ सीमा तक सफल हुए ; किन्तु हमारी क्रांति ने उन्हें पूर्णतः सफल न होने दिया। पर, आज हमारी आत्मा की इस शत्रु को हम पर क्यों लादा जा रहा है ?

अंग्रेजी भाषा से मुझे कोई द्वेष नहीं, पर...

मैं यह स्पष्ट कर दूं कि मुझे अंग्रेजी भाषा से कोई विद्वेष नहीं है ; किन्तु जो कांटा मेरे मन में चुभता है, वह यह है कि इस भाषा को हमारे देश में विषमता का, शोषण का, वर्ग-प्रभुत्व का साधन बनाया जा रहा है और इस का ऐसा प्रयोग किया जा रहा है कि जिस से हमारे देश की आत्मा का हनन हो। इस विषय में मेरा वही मत है, जो अंग्रेजों के संबंध में गांधीजी का था। वे सदा कहते थे कि उन की अंग्रेज जाति से शत्रुता नहीं, अंग्रेजों से वे प्रेम करते हैं ; परन्तु यह होते हुए भी अंग्रेजी राज्य इस देश पर अस्वाभाविक है, इस देश की समस्त पीड़ाओं का कारण है; इसलिये उसे जाना ही चाहिए। अंग्रेजी भाषा के संबंध में भी मेरी यही स्थिति है। यदि अंग्रेजी से ऐसे ही बरता जाय, जैसा कि अन्य विदेशी भाषाओं से बरता जाता है, तो मैं उस का स्वागत करूंगा। न तो मुझे और न किसी हिन्दी या भारतीय भाषा-प्रेमी को इस बात में कोई आपत्ति है, या हो सकती है कि जो लोग चाहें वे अंग्रेजी सीखें, चाहें फ्रांसीसी सीखें, चाहें चीनी सीखें। यदि कुछ लोग कई भाषाएँ सीखना चाहते हों, तो यह भी अच्छी बात होगी और इसके लिये प्रबन्ध होना चाहिये ; किन्तु केवल इस दृष्टि से कि यहाँ अंग्रेजी लादी जाय, यह दलील देना कि कई भाषाओं का ज्ञान उपार्जन हर विद्यार्थी के लिए वांछनीय है, कुछ उचित बात नहीं है। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि जो लोग आज इस वांछनीयता की दुहाई देते हैं, उन में से कितनों ने यह सोचा भी है, प्रयास करने का तो प्रश्न ही नहीं, कि वे इस देश की कुछ भाषाएँ सीख लें। मुझे तो ऐसा लगता है कि अंग्रेजी के अतिरिक्त उन्होंने कोई और भाषा सीखने का विचार तक नहीं किया और यहाँ तक कि जो भाषा उन्हें अपनी माता से मिलती थी, उस को भी उन्होंने भुला दिया और यह प्रयास किया कि उन की संतान अंग्रेजी के अतिरिक्त न और कुछ जाने न बोले। अंग्रेजी के मोह में वे इतने पागल हैं कि इस विचार से कि पाँच छै वर्ष की अवस्था से हमारे देश के बालकों को वे अनिवार्यतः अंग्रेजी पढ़ाने के लिए तर्क दे सकें, उन्होंने अंग्रेजी बोलने वाले देशों से विद्वान् बुला कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि छोटे बालकों के लिए कई भाषाएँ सीख लेना बहुत आसान

होता है और इसीलिए छोटी कक्षाओं में ही उन्होंने अंग्रेजी की पढ़ाई करना आरम्भ कर दी है। पर प्रश्न यह होता है कि अंग्रेजी की ही क्यों ? क्या इस देश की कई भाषाओं का ज्ञान कराना ठीक नहीं ? पर ऐसी कोई योजना नहीं दिखाई पड़ती। कहा यह जाता है कि फ्रांस का राजकुल अपने मुकुट को आंखों पर धरे पहाड़ के कगार पर जा रहा था और खड्ड में गिर पड़ा एवं विनष्ट हो गया। कहीं इतिहास यह न कहे कि भारत में अंग्रेजी-वर्ग इस अंग्रेजी मुकुट को आँखों पर धरे इसी प्रकार खड्ड में जा पड़ा। मेरा यह प्रयास है कि समय रहते हम सँभल जायें और इसी दृष्टि से मैं आप सब का आह्वान करता हूँ कि आप इस महाप्रयास में लग जायँ कि इस देश की भाषाएँ शीघ्रातिशीघ्र राज्य-क्षेत्र में अपना उचित स्थान पा जायँ।

सरकारी नौकरियों की परीक्षाओं का माध्यम

इस प्रयास के दो पहलू हैं। एक तो उन बाधाओं को हटाना, जो हमारी भाषाओं की प्रगति को अवरुद्ध कर रही हैं। मेरे विचार में सब से बड़ी बाधा तो यह है कि लोक-सेवा-आयोगों की परीक्षा का माध्यम आज सर्वत्र केवल अंग्रेजी है। यह उन प्रदेशों के प्रति घोर अन्याय है, जिन्होंने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बना लिया है। इन प्रदेशों के विद्यार्थी इन परीक्षाओं में पिछड़े रह जाते हैं और इस-लिए इन प्रदेशों में भी यह प्रयास हो रहा है कि शिक्षा का माध्यम पुनः अंग्रेजी हो जाय। कम-से-कम विश्वविद्यालयों के शिक्षक इसी आधार पर यह तर्क देते हैं कि उच्च शिक्षा का माध्यम अभी अंग्रेजी ही रहना चाहिए। भारत सरकार और राज्य सरकारों का यह कर्तव्य है कि वे देशी भाषाओं के प्रति इस घोर अन्याय को अविलम्ब बन्द कर दें ; इसलिए हिन्दी और अन्य देशी भाषाएँ इन परीक्षाओं का माध्यम स्वीकार की जानी चाहिए। इस के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि हमारे देश की भाषाएँ इन परीक्षाओं के लिए वैकल्पिक विषयों की सूची में भी सम्मिलित की जायें। यह कितनी भारी विडम्बना है कि इन परीक्षाओं के लिए योरप की प्रादेशिक भाषाएँ ; अर्थात् फ्रेंच, जर्मन, इटालियन इत्यादि इत्यादि वैकल्पिक विषयों की सूची में तो हों ; किन्तु इस देश की एक भी प्रादेशिक भाषा उस सूची में न हो। मानो हमारे राज-कर्मचारियों के लिए फ्रांसीसी या स्पेनिश सीखना तो वांछनीय है ; किन्तु इस देश की एक भी प्रादेशिक भाषा जानना या सीखना वांछनीय नहीं है। अंग्रेजों ने तो इस देश की भाषाओं को इन परीक्षाओं के लिए वैकल्पिक विषय इसलिए न रक्खा था कि उन की तुलना में यहाँ के परीक्षार्थी अधिक सफलता प्राप्त न कर पायें और योरप की प्रादेशिक भाषाओं को इसलिये रखा था कि अंग्रेज परीक्षार्थी भारतीयों की अपेक्षा उन परीक्षाओं में अधिक संख्या

में सफल हो सकें; किन्तु आज किस सिद्धान्त पर भारतीय भाषाओं का यह बहिष्कार किया जा रहा है? इस बहिष्कार के कारण भी इन भाषाओं की प्रगति में बाधा पड़ रही है और यह अब अविलम्ब दूर होना चाहिए।

उच्च न्यायालयों की भाषा

इस के अतिरिक्त आज हमारी भाषाओं के सामने यह बाधा भी है कि उन का प्रयोग उच्चन्यायालयों में नहीं हो सकता। हमारा आज जो संविधान है, उस में यह एक उपबन्ध है कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की भाषा केवल अंग्रेजी होगी। परिणामतः वहाँ व्यवसाय करने वाले सब लोग अंग्रेजी का ही प्रयोग कर सकते हैं और करते हैं। स्वभावतः सारे विधि-व्यवसायियों का हित इसी में हो जाता है कि वे देशी भाषाओं से कुछ विशेष वास्ता न रख कर अंग्रेजी से ही अपना वास्ता रखें। विधि के क्षेत्र से हमारी भाषाओं के इस बहिष्कार के कारण भी वे पनप नहीं पातीं। कैसी अजीब बात है कि जिस देश के निन्यान्बे प्रतिशत लोग अंग्रेजी का एक शब्द नहीं समझते, उन की जीवन-व्यवस्था करने के लिए नियम और विधियाँ अंग्रेजी में ही बनायी जायं। जो कारखानों में काम करते हैं और जिन के लिए अंग्रेजी 'करिया अक्षर भैंस बराबर' है, उन के अधिकारों संबंधी बिधियां भी अंग्रेजी में बनायी जायें। परिणाम यह है कि विधियों से जो अधिकार हमारे जन-साधारण को मिले हुए हैं और जो दायित्व उन पर रखे हुए हैं, उन से वे सर्वथा अपरिचित रह जाते हैं और कुछ मुट्ठी-भर अंगरेजी पढ़े-लिखे हाथों की कठपुतली हो जाते हैं। इस के अतिरिक्त हमारी न्याय-प्रणाली इस अंग्रेजी के कारण अत्यन्त खर्चीली और शिथिल गतिवाली हो गई है। जब कभी उच्चन्यायालय में कोई अपील जाती है, तब इस कारण कि उच्चन्यायालय की भाषा अंगरेजी है, उस मुकदमें की पूरी कार्यवाही का उल्था अंग्रेजी में करना पड़ता है। इस उल्थे को पेपर बुक कहा जाता है और इस के तैयार करने में पर्याप्त धन और समय का खर्च होता है। कभी तो पेपर बुक पर हजारों रुपया खर्च बैठता है और वर्षों में वह तैयार होता है, किन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि न्याय-प्रणाली के इस दोष के प्रति विधि-आयोग ने संकेत तक नहीं किया है; क्यों कि अंग्रेजी का चश्मा उस की आँखों पर भी चढ़ा हुआ था और वह अंग्रेजी से होने वाली इस हानि को देख ही नहीं सकता था। मैं समझता हूँ कि हमारी भाषाओं की इस बाधा को भी तुरन्त दूर कर देना चाहिए और इस बात की अनुमति चाहिए कि उच्च न्यायालयों में और उच्चतम न्यायालय में देशी भाषाओं या हिन्दी का प्रयोग किया जा सके।

मन्त्रियों और शासन-यन्त्र की भाषा

इसके अतिरिक्त हमारे मंत्रियों और उच्च पदाधिकारियों द्वारा भी अंग्रेजी का अपने सब कार्यों में प्रयोग हमारी भाषाओं के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धान्तों के अनुसार इन मंत्रियों की देखादेखी अन्य लोग भी इसी में अपना गौरव समझते हैं कि वे भी अपने विभिन्न कार्यों में अंग्रेजी का ही प्रयोग करें, चाहे वह अंग्रेजी कितनी ही टूटी फूटी, गलत सलत क्यों न हो ; अतः हमारे मंत्रियों और उच्च पदाधिकारियों को भी अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए कि वे अपना सारा कार्य अपनी प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम द्वारा ही करें। साथ ही सचिवालयों में भी हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग और इतर भाषा-भाषी क्षेत्रों में वहां की भाषाओं का प्रयोग तुरन्त होना चाहिए, तभी हमारी भाषाओं को वह सम्मान मिलेगा, जो उन की प्रगति के लिए प्राणवायु के समान है। शब्द संचार के जो यांत्रिक साधन आज अंग्रेजी के लिए उपलब्ध हुए हैं, वे भारतीय भाषाओं के लिए भी अविलम्ब उपलब्ध किये जाने चाहिए, तभी हमारी देशी भाषाओं के समाचार-पत्र उस बाधा से मुक्त हो सकेंगे, जो आज उन्हें घेरे हुए है और जिस के कारण वे उतनी शीघ्रता से समाचार नहीं दे सकते, जितनी शीघ्रता से कि अंग्रेजी पत्र दे लेते हैं। बाधाएँ तो और भी हैं ; किन्तु उन सब को गिनाना आवश्यक नहीं है। केवल इतना कह देना मैं पर्याप्त समझता हूँ कि हमारी भाषाओं को वे सब सुविधाएँ दी जानी चाहिए, जो अंग्रेजी को दी जा रही हैं।

चारों हिन्दी-भाषी राज्यों में 'हिन्दी चलाओ' योजना

जहां तक हिन्दी-भाषा-भाषी उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश चार राज्यों का सम्बन्ध है, मैंने हाल ही में 'हिन्दी चलाओ' नामक एक योजना प्रस्तुत की है। इन चारों राज्यों में इस योजना को काफी समर्थन मिला है। कहा जाता है कि रचनात्मक ढंग की यह पहली ब्यौरेवार योजना है। जो कुछ हो, हमें प्रयत्न करना है कि इन चारों राज्यों में यह योजना कार्यरूप में परिणत की जाय।

हिन्दी का कहीं कोई विरोध नहीं

परन्तु, जब मैं इन चारों हिन्दी-भाषा-भाषी राज्यों में हिन्दी चलाने की बात कहता हूँ, तब यह न समझ लिया जाय कि मैं यह मानता हूँ कि जिन राज्यों अथवा क्षेत्रों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहां हिन्दी का ऐसा विरोध है इस पर ध्यान दिया जाय।

हमारी संविधान-सभा ने सर्वमत से हिन्दी को इस देश की राजभाषा स्वीकृत किया था। आज यत्र-तत्र इतर भाषा-भाषी कतिपय सज्जन हिन्दी का विरोध करते सुने जाते हैं। एक तो वे दक्षिण के चार राज्यों में से केवल तमिल भाषा-भाषी मद्रास के महानुभाव हैं और कुछ बंगाल के; परन्तु यह विरोध रोटियों के कारण है और जिस मद्रास राज्य में यह विरोध दिख रहा है, वहां इस विरोध के साथ ही हिन्दी सीखने वालों की संख्या बढ़ी है। शेष भारत के किसी भी भाग में हिन्दी का कोई विरोध नहीं है। मैंने समूचे भारत के न जाने कितने दौरे किये हैं और करता भी रहता हूँ और यह बात मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कहता हूँ।

साहित्य-सर्जन

दूसरा हमारे प्रयास का पहलू सर्जनात्मक हो—मैं इस संस्था को बधाई देता हूँ कि इसने इस के बारे में स्तुत्य कार्य किया है; किन्तु हम अब तक के कार्य से संतोष करके नहीं बैठ सकते। हमें इस देश की आत्मा की अभिव्यक्ति, अपने भाषाओं के माध्यम द्वारा ही हर प्रकार से करनी है। हमारे साहित्यकारों का यह धर्म है कि वे अपनी जीवनानुभूति अपनी भाषाओं के सुन्दरतम शब्दों में अभिव्यक्त करके इन भाषाओं के साहित्य-भंडार को परिपूर्ण कर दें। हमारा देश आज एक महत् यात्रा पर चल पड़ा है—ऐसी यात्रा पर, जो उस महामन्दिर में उपासना के लिए है। जिस के प्रसाद से हमारे देश के प्रत्येक नरनारी का जीवन सब दृष्टियों से सम्पन्न, समृद्ध और आनन्दमय हो जायगा।

आह्वान

पिछली शताब्दियों में अनेक कारणों से हमारा जीवन गतिहीन हो गया था और इस कारण हम अन्य जातियों से बहुत पिछड़ गये। हमें अब बड़े पग बढ़ा कर उनके समकक्ष आ जाना है और यह हम तब ही कर पायेंगे, जब हमारे प्रत्येक नागरिक के हृदय में वह ज्योति जग जाये कि उस के ही प्रयास पर उस का और हम सब का भविष्य निर्भर करता है। हमें उसे गतिमान बना देना है, गांव-गांव और नगर-नगर में हमें यह नवसंदेश पहुँचा देना है। यह काम हमारे भाषा के साहित्यिकों का है, कवियों का है, कलाकारों का है और साथ ही हमारे दार्शनिकों और वैज्ञानिकों का है। मैं आप को आह्वान करता हूँ कि आप इस ज्योतिशिखा को लेकर, इस भाषा की अपार शक्ति को लेकर ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में अलख जगायें। जन-मानस को आंदोलित कर दें, जिससे कि वे सब बाधाओं को हटा कर, सब विदेशी जंजीरों को तोड़ कर अपना भाग्य-निर्माण करने के लिए और संसार की जातियों में अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए द्रुतगति से अग्रसर हो सकें।

सूर-सूर तुलसी शशी उडुगन केशवदास

सूर-स्मारक-मंडल द्वारा आयोजित ब्रज-साहित्य-गोष्ठी

परासौली

अध्यक्षीय भाषण

२१ अप्रैल १९६१

देवियो और सज्जनो !

आज महाकवि सूरदासजी की इस दिव्य भूमि के दर्शन कर के जहां कभी इस महाकवि की मधुर वीणा झंकृत हुई थी और जहां कि इस सिद्ध तपोभूमि में अपनी साधना की सिद्धि के रूप में सूरदासजी को महाप्रभु वल्लभाचार्य-जैसे गुरु प्राप्त हुए थे—जिनके सत्संग से वह भगवान् श्री कृष्ण की लीलाओं के गायक के रूप में अमर हो गये—उस सिद्ध-भूमि को मैं प्रणाम करता हूँ। यह भी कहा जाता रहा है कि यही वह भूमि है, जहाँ परशुरामजी की माता रेणुका जन्मी थीं और यहीं कहीं भरतवंशी महाराज शान्तनु मल्लाह की पुत्री सत्यवती पर विमुग्ध हुए थे, जिस के कारण भीष्म-प्रतिज्ञा हुई थी। सुना यह भी जाता है कि शृंगी ऋषि का स्थान भी यहाँ से अधिक दूर नही है। इस प्रकार यह भूमि आरंभ से ही रामायण और महाभारत-जैसे अमर महाकाव्य के पात्रों से सम्बद्ध और सम्भवतः इसके इसी आकर्षण के कारण यह महाकवि सूर को भी भायी होगी। ऐसी पावनभूमि पर सूर-स्मारक की आयोजना का यह संकल्प सचमुच अपने-आप महान् है और डा० सत्येन्द्रजी तथा इस आयोजन के प्रधान मंत्री श्री सिद्धेश्वरनाथजी इस आयोजन के प्रणेता सभी महानुभावों को मैं इस शुभ प्रयत्न के लिये अपनी हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ। यदि आप सब इसी उत्साह से इस कार्य में दत्तचित्त रहे, तो मैं समझता हूँ कि आप जल्दी ही यहाँ, महाकवि सूर का उन के गौरव के अनुरूप एक उचित स्मारक स्थापित कर सकेंगे, जो मेरे विचार से अतीत में आप के आगरा में ही बनाये गये सम्राट् शाहजहाँ के स्मारक से भी अधिक महत्त्वपूर्ण होगा, क्यों कि मैं एक वैसे ही महाकवियों को सम्राटों से कहीं बड़ा मानता हूँ, दूसरे आगरा में बने जिस स्मारक का मैंने उल्लेख किया है, उस के निर्माण की भावना का मूलाधार पार्थिव है, जब कि इस स्मारक की मूल भावना आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। मैं सचमुच अपने को बड़ा

सौभाग्यशाली मानता हूँ कि आप के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में कुछ क्षणों के लिए मैं भी भागीदार बना और इस पुण्य में आपने मुझे भी सम्मिलित किया और इस अवसर पर मुझे ब्रज-साहित्य-गोष्ठी का अध्यक्ष बनाया, इसके लिए मैं आप सब को पुनः कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

सज्जनो !

मैं इस अवसर पर महाकवि सूर की महत्ता या उन के काव्य-सौन्दर्य पर कोई भाषण करना नहीं चाहता, क्यों कि मैं यह मानता हूँ कि सूर और उन के काव्य को मुझ से अधिक आप जानते हैं। इसीलिये तो आप इस महाकवि के स्मारक-निर्माण-कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। यह ठीक है कि बचपन से ही वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित पारिवारिक वातावरण में पले होने के कारण मुझे भी अपनी माताजी की गोद में आप ब्रजवासियों के समान ही सूरदासजी के पद, लोरियों के स्थान पर सुनने को मिले थे; परन्तु आप लोगों के पूर्वज तो महाकवि सूर के साथी, सहयोगी और उन के निर्माता रहे हैं; अतः मैं अपने को आप के समक्ष सूर के संबन्ध में कुछ अधिक कहने का अधिकारी नहीं मानता, परन्तु वल्लभ संप्रदाय का अनुयायी और ब्रजभाषा का एक प्रेमी होने के नाते, मैं भी अपने को ब्रज से दूर नहीं पाता और आप लोगों ने भी मुझे ब्रज-साहित्य-मंडल का अध्यक्ष बना कर ब्रज में सम्मिलित कर लिया है; इसलिए दो-चार मोटी-मोटी बातें ही मैं यहाँ इस अवसर पर कहना चाहता हूँ।

सूर की महत्ता

सूर ब्रज-भाषा-साहित्य के मुकुटमणि हैं। वे केवल ब्रज-भाषा के सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ महाकवि ही न थे; वरन् इसके साथ ही वे एक महान् संगीतज्ञ और क्रान्तिकारी भी थे। कदाचित् आप को मेरे द्वारा महाकवि सूर को क्रान्तिकारी कहा जाना कुछ अटपटा लगे; परन्तु भगवान् कृष्ण की जो छवि उन्होंने अपने काव्य में उरेही है, मुझे उस में कुछ ऐसा ही भासित होता है। जब वे खेलते हुए भगवान् कृष्ण के सखाओं द्वारा कहलाते हैं कि—

> "खेलत में को काको गोसैयाँ।
> अति अधिकार जनावत याते, अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ।"

तो शायद आप कहेंगे कि यह सब उन की सख्य-भक्ति की भावना है। ठीक है, मैं भी इसे बिलकुल इसी रूप में मानता हूँ; परन्तु उस सामन्ती युग में क्या भगवान् कृष्ण की इन क्रीड़ाओं में हम उस समाजवादी दृष्टिकोण की झलक नहीं पाते, जिस की रचना हम भारतीय आज अपना मुख्य ध्येय मान चुके हैं ?

सूरदास ने भगवान् कृष्ण का जो रूप हमें दिया, वह भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य थाती है। आज हम भगवान् कृष्ण को अपने हृदय के इतना अधिक निकट पाते हैं, इस का बहुत-सा श्रेय महाकवि सूरदासजी को है; इसलिए हम उन की इस देन से कभी उऋण नहीं हो सकते। हमें उन की दिव्य-दृष्टि के समक्ष सदा झुकना ही होगा।

सूर और तुलसी

जैसा हम सभी मानते हैं, महात्मा सूरदासजी और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनों ही हमारी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। इन दोनों महापुरुषों को हिन्दी का सूर्य और चन्द्र कहा जाता है। इन दोनों महाकवियों ने दो पृथक् दृष्टिकोणों से काव्य की रचना की है, जो अपने-अपने क्षेत्र में अनूठी है; अतः इन दोनों महाकवियों की महत्ता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है, परन्तु दुर्भाग्य से इस सम्बन्ध में हमारी गति बहुत धीमी रही है। गोस्वामीजी के सम्बन्ध में फिर भी कुछ हुआ है; परन्तु सूर-साहित्य का तो अभी विधिवत वैज्ञानिक रीति से सम्पादन भी नहीं हुआ है। विगत वर्ष ब्रज-साहित्य मंडल से इस संबंध में कुछ आशा हुई थी; परन्तु वह फिर अपने आपसी झंझटों में उलझ गया। यह हम सब का दुर्भाग्य है। यदि मंडल इस काम को नहीं कर पा रहा है, तो मैं यह पूछना चाहता हूँ कि आप के ब्रज-भाषा-भाषी क्षेत्र में स्थापित यह आगरा और अलीगढ़ विश्वविद्यालय 'सूर-साहित्य' के संपादन का कार्य हाथ में क्यों नहीं ले सकते? तुलसीदासजी के राम-चरित-मानस का कई योरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। हाल में ही रूस में राम-चरित-मानस के अनुवाद की बड़ी हलचल थी; परन्तु अभी हमने सूरदास को क्यों अपनी ही भावुकता की चारदीवारी में ही बाँध रखा है? क्या उन का बाल-कृष्ण का वर्णन और बालस्वभाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण अद्वितीय नहीं है? फिर क्यों उन के साहित्य के संपादन की और उसके अन्य भाषाओं में अनुवाद की योजना नहीं बनाई जाती? हमने सूर-जैसे विश्वकर्मा को अभी तक केवल हिन्दी का ही कवि बना रखा है, यह हमारी निष्क्रियता का ही कारण माना जायगा। साहित्य-अकादमी भारतीय भाषाओं के ग्रंथों के कुछ अनुवाद एक से दूसरी भाषा में प्रकाशित कर चुकी है, वह सूर-सागर का अनुवाद दूसरी भाषाओं में क्यों नहीं कराती? आप को सजग होकर इन संस्था और संगठनों से काम करना और कराना चाहिए, यह मेरा निवेदन है।

सूर-स्मारक

इसी प्रकार सूर के स्मारक का निर्माण भी एक राष्ट्रीय आवश्यकता है।

गोस्वामी तुलसीदास का स्मारक उत्तर-प्रदेश की सरकार की रुचि के अनुसार राजापुर में स्थापित किया जा रहा है। सरकार ने वहाँ बहुत रुपया लगाया है, यह हर्ष की बात है; परन्तु इधर सूरदासजी के लिए उत्तर-प्रदेश की सरकार पिछले वर्षों में कोई विशेष कार्य नहीं कर पाई है, यह आश्चर्य और दुर्भाग्य की बात है। ब्रज-साहित्य-मंडल के अनुरोध पर परसौली में उस ने हजार या दो हजार रुपया खर्च करके जो एक छोटा-सा चबूतरा तथा पत्थर लगाया है, वह तो सूरदासजी का उपहास-मात्र ही प्रतीत होता है। मैं उत्तर-प्रदेश सरकार से अब यह कहना चाहता हूँ कि उसे सूर और तुलसी पर समान रूप से ध्यान देना चाहिए और जितना रुपया राजापुर में तुलसी-स्मारक पर व्यय किया गया है, उतना व्यय तो सरकार को सनुकता के इस सूर-स्मारक के लिए अविलंब ही स्वीकार कर देना चाहिए।

यदि आप पसन्द करें, तो मैं यह सुझाव भी देना चाहता हूँ कि आप सूर-स्मारक-मण्डल केवल आगरा में ही सीमित न रखें। यदि सूर के जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वान् अभी सर्वसम्मत निर्णय न कर पाये हों, तो इस समय आप इस पचड़े को छोड़ दीजिए; परन्तु परासौली और गोघाट को आप एक दूसरे से अलग न कीजिए; क्यों कि यह दोनों ही महाकवि की सर्वमान्य साधना-स्थली हैं। सूर-स्मारक-मण्डल को तो आप समस्त ब्रजक्षेत्र, हिन्दी-क्षेत्र और कृष्ण-भक्तों तक विस्तृत कीजिए, तभी सूरदास के ऋण का बोझ हम उतार सकेंगे। यदि सूर-स्मारक को आप संस्कृति, साहित्य तथा समाज-सेवा का जैसा केन्द्र बनाना चाहते हैं, तो उस स्वप्न को आप कदाचित् तब अधिक साकार कर सकेंगे। सूर के स्मारक की स्थापना का कार्य केवल ब्रज या हिन्दी का ही कार्य नहीं है, यह तो एक राष्ट्रीय कार्य है और इस को हमें उसी स्तर पर पूर्ण करना होगा।

मेरा आप से अनुरोध है कि आप अपने सूर-स्मारक की योजना को दो स्थानों में बाँट दें और उसमें परसौली और गौघाट दोनों को ही ध्यान में रखकर कार्यारम्भ करें। क्या यह उचित न होगा कि सूर-स्मारक के स्थान पर एक 'अष्टछाप-मंदिर' स्थापित किया जाय और उस मंदिर में ब्रजभाषा-साहित्य का एक वृहत् संग्रहालय, शोधपीठ और साथ ही संगीत-कला की शिक्षा की भी उचित व्यवस्था रहे।

मैं स्वयं गिरिराज गोवर्द्धन में एक कृष्णधाम स्थापित करना चाहता था, जिसे एक सांस्कृतिक ग्राम विश्व-विद्यालय के रूप में देखने की लालसा आज भी मेरे हृदय से दूर नहीं हुई है, परन्तु उस उद्देश्य की पूर्ति के प्रथम चरण के रूप में मैंने ब्रजयात्रा की जो योजना बनाई थी, वह उस समय कुछ आकस्मिक कारणों से स्थगित कर देनी पड़ी थी। फिर भी वह संकल्प यदि कभी पूरा हुआ, तो कृष्णधाम और सूर-स्मारक यह दोनों योजनाएँ एक-दूसरी की पूरक हों, ऐसी मेरी अभिलाषा है।

सूर और ब्रजभाषा

सज्जनो ! मैं आप का अधिक समय नहीं लेना चाहता ; परन्तु एक बात, जिस का मैं अनुभव करता आ रहा हूँ, उल्लेख इस समय आपके समक्ष और कर देना चाहता हूँ। मैं लगातार यह देख रहा हूँ कि हमारे सूर और तुलसी जैसे प्राचीन कवि, जो जनता के जीवन में उसके साथ एकदम घुले-मिले थे, धीरे-धीरे प्रतिदिन उससे दूर हटते जा रहे हैं। इस के अनेक कारण हो सकते हैं, मैं यहाँ उन के विवेचन में नहीं जाना चाहता; परन्तु मेरे विचार से इस का मूल कारण यह है कि हम ब्रजभाषा से काफी दूर हट गये हैं। आज हिन्दी की कविता का अर्थ केवल खड़ीबोली का काव्य समझ लिया गया है और हिन्दी की इस सब से प्रमुख काव्य-भाषा का आज के काव्य में कोई महत्त्व नहीं रह गया है। न तो हमारे पत्रों मे ही ब्रजभाषा का काव्य प्रकाशित होता है और न आकाशवाणी के ही काव्य-धारा या कविता-पाठ के कार्यक्रमों अथवा सर्व-भाषा कवि-सम्मेलन या अन्य हिन्दी के कवि-सम्मेलनों में ब्रजभाषा या हिन्दी की जनपदीय बोलियों को कभी कोई महत्त्व दिया जाता है।

कभी-कभी तो यहाँ तक कहा जाता है कि इन जन-वाणियों के साहित्य को पाठ्य-क्रम से सर्वथा निकाल देना चाहिए। हिन्दी के लिए इस से अधिक अनिष्टकारी बात मैं और कोई नहीं मानता। मेरी समझ में नहीं आता कि सभी ओर हिन्दी-काव्य को इतना एकांगी क्यों बनाया जा रहा है। यदि हम चाहते हैं कि नई और पुरानी हिन्दी में तालमेल बना रहे, तो यह बहुत आवश्यक है कि हम इन पुरानी काव्य-भाषाओं का जो हिन्दी-काव्य की रीढ़ हैं, उन को उचित स्थान दें। पहले दिल्ली के ग्रामीण कार्यक्रम में होनेवाले ब्रजभाषा कार्यक्रम में कभी-कभी ब्रजभाषा की सुन्दर कविताएँ सुनायी देती थीं, परन्तु अब तो प्रायः वे भी बन्द हैं। लगता यह है कि कदाचित् दिल्ली आकाशवाणी के अधिकारी ब्रजभाषा को जबरन देहाती भाषा बनाने पर तुल गये हैं, जब कि ब्रजभाषा कभी देहाती भाषा नहीं रही। ब्रजभाषा तो सूर की भाषा है, नन्ददास की भाषा है, तुलसी की भाषा है, देव की भाषा है, तथा भूषण, पद्माकर, रहीम, रसखान, भारतेन्दु और रत्नाकर की भाषा है और इन सब से बढ़कर वह भगवान् कृष्ण की भाषा है जैसा कि आप के ही ब्रज-कोकिल सत्यनारायणजी ने कहा था—

"बरनन को करि सकै, कहो तेहि भाषा कोटी।
मचल-मचल माँगी हरि जासों माखन रोटी।"

इसलिए मैं समझता हूँ कि ब्रजभाषा को ग्रामीण भाषा समझना, एक भारी भूल है और इस भूल के निवारण के उपाय आप की इस परिषद् को करने चाहिएं।

ब्रजभाषा को आकाशवाणी द्वारा लगाये गये ग्रामीणता के दोष से मुक्त कर के आप को ब्रजभाषा का एक स्वतन्त्र कार्य-क्रम स्थापित कराना चाहिए, जो कम-से-कम आध घंटे का हो। वह कार्यक्रम ब्रजभाषा की साहित्यिक, सांस्कृतिक और जनपदीय तीनों ही धाराओं से आवश्यक जल-ग्रहण करके ब्रज-संस्कृति का एक ऐसा 'विमल-कुंड' बन सकता है, जैसा कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण ने सब तीर्थों के जल से कामवन में स्थापित किया था। इसके साथ-साथ ही हिन्दी के पत्रों और अन्य साहित्यिक विधाओं में भी ब्रजभाषा के काव्य को महत्त्व मिलना चाहिए। मुझे खेद है कि हमारी मध्य प्रदेश की सरकार ने ही ब्रजभाषा-काव्य पर मिलनेवाला एकमात्र देव-पुरस्कार दूसरे विषयों के लिए कर दिया, परन्तु आप कुछ नहीं बोले। ब्रजभाषा के लिए आप सजग प्रहरियों की आवश्यकता है।

आकाशवाणी-केन्द्र

अन्त में एक बात, जिस में मैं समझता हूँ आप सब मुझ से सहमत होंगे, आज और कहना चाहता हूँ। यह बात इसलिये कहना और आवश्यक है कि जब हाथरस में संवत् २००९ विक्रमी में, मैं ब्रज-साहित्य-मंडल का सभापति था, तब राष्ट्रपतिजी के समक्ष ब्रजवासियों ने सर्वसम्मति से ब्रज में रेडियो की स्थापना का एक प्रस्ताव पारित किया था; परन्तु वह मांग अभी तक पूरी नहीं हो पाई है। उस समय ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र की जनसंख्या लगभग ३ करोड़ के बतलाई गई थी। पता नहीं, अब वह कितनी है; परन्तु होगी वह अब और अधिक ही। इसलिए, मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इतने विस्तृत क्षेत्र की भाषा और संस्कृति की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। वैसे भी पूर्वी-उत्तर प्रदेश में तो लखनऊ और प्रयाग दो स्टेशन पास-पास हैं और सुना है, अब काशी में भी कुछ होने जा रहे हैं, परन्तु ब्रजक्षेत्र के इस पश्चिमी भाग की न जाने क्यों निरन्तर उपेक्षा हो रही है और अभी तक ब्रज की इस पुरानी आकांक्षा की पूर्ति नहीं हुई है।

हाथरस में आकाशवाणी केन्द्र कहाँ स्थापित हो, जब यह प्रश्न उठा, तो वे जहाँ तक मुझे स्मरण है, मथुरा और आगरा के दो नाम विचाराधीन थे। उस समय सांस्कृतिक दृष्टि से मथुरा को अधिक पसन्द किया गया था, परन्तु अब मैं सोचता हूँ कि यदि सूरदास की साधना-स्थली गौघाट पर आकाशवाणी-केन्द्र स्थापित हो सके, तो यह मथुरा और आगरा दोनों के लिये ही संतोषप्रद होगा। साथ ही इस पावन सिद्ध और श्रद्धामयी भूमि से उद्घोषित ब्रज-काव्य का संदेश वर्तमान युग की इस अश्रद्धा की भावना पर भी कदाचित् कुछ रोक लगा सकेगा। जो उसे अश्रद्धा की ओर ले जा रही है।

यदि सरकार यहाँ आकाशवाणी-केन्द्र बना सकेंगी, तो प्राचीन साहित्य-स्थली को अधिक शीघ्र विकसित होने का अवसर मिलेगा और आप के साहित्यकार सूर की इस सीधी-सादी सरल कुटी में माथा टेक कर ब्रजभाषा के महाकवियों से नवीन प्रेरणा और चेतना प्राप्त कर सकेंगे।

यदि सूर-स्मारक का यह स्वप्न सफल हो सका, तो यह हिन्दी के लिए निश्चय ही एक सौभाग्य की बात होगी और इस से ब्रज-साहित्य का गौरव बढ़ेगा।

तुलसी-मेला, राजापुर

अध्यक्षीय भाषण

५ अप्रेल, १९६२

देवियो और सज्जनो !

पुण्यश्लोक गोस्वामी तुलसीदास उत्तर भारत की जन-जिह्वा पर साढ़े तीन सौ वर्ष से आज भी विराजमान हैं। अपठित-पठित, साक्षर-निरक्षर, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी लोग इस महापुरुष को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते रहे हैं। इस भाषण को आरम्भ करते हुए मैं भी गोस्वामीजी के चरणों में प्रणाम करता हूँ। न जाने किस-किस ने, कितना उनके लिए लिखा है; अतः मैं कोई नया विवेचन उपस्थित कर सकूँ यह असम्भव है; परन्तु ऐसे अवसर पर श्रद्धांजलि के रूप में कुछ कहना भी आवश्यक है, वही मैं कर रहा हूँ।

तुलसीदासजी की उक्तियाँ

गोस्वामीजी की उक्तियों का जितना अधिक प्रयोग जनसाधारण में होता है, कदाचित् उतना किसी अन्य कवि के शब्दों का नहीं; यथा—'पर उपदेस कुशल बहुतेरे। पराधीन सुख सपनेहु नाहीं। होइ है सोई जो राम रचि राखा। कोउ नृप होई हमैं का हानी। परम स्वतन्त्र न सिर पै कोई। प्रभुता पाई काहि मद नाहीं। धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपद काल परखिए चारी। तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।' तुलसी की सूक्तियों का परिपूर्ण संकलन श्री एटकिंस ने 'रामचरितमानस' के अपने अनुवाद के अन्त में उपस्थित किया है। रामकथा का गान अनेक महाकवियों ने किया है, तथापि जो-जो भावप्रवणता और सरसता तुलसी-दासजी के 'रामचरित-मानस में' बहुलता से विद्यमान है वह अन्यत्र विरल है। अत्याचारों से पीड़ित और निराश प्राणों में स्फूर्त्ति डाल कर, तुलसीदासजी ने जो लोक-कल्याण किया है, वह अनुपम है।

गोस्वामीजी के ग्रन्थ

गोस्वामीजी ने लगभग चालीस ग्रन्थ लिखे, जिन में से बारह ग्रन्थ बहु-सम्मति

से उन के समझे जाते हैं। चार चरण के बीस सोहर छन्दों में लिखे हुए 'रामलला नहछू' में राम-विवाह के अवसर पर नखच्छेद का वर्णन है; जिस का निर्माण, ऐसा प्रतीत होता है, गोस्वामीजी ने स्त्रियों के गाने के उद्देश्य से किया होगा। शकुन-सम्बन्धी 'रामाज्ञा प्रश्न' में रामचरित का उल्लेख सात काण्डों में किया गया है, जिसके प्रत्येक काण्ड में सात दोहे हैं। 'पार्वती मंगल' में भगवती पार्वती के विवाह का वर्णन १६४ छन्दों में है। 'जानकी मंगल' २१६ छन्दों का ग्रन्थ है, जिस में वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम-लक्ष्मण के मिथिला-गमन से लेकर सीता-राम के विवाह तक का वर्णन है। 'गीतावली' में रामचन्द्रजी का जीवन-चरित अनेक गेय छन्दों में, वाल्मीकिजी के अनुसार, दिया गया है। इस ग्रन्थ में सात काण्डों में ३२८ पद हैं। 'कृष्ण गीतावली' में ६१ गीत हैं, जिनमें भगवान् कृष्ण की गोकुल-संबंधी बाल-लीलाओं और गोपियों के विरह का वर्णन है। 'विनय-पत्रिका' में राम के प्रति विनय-पदों का संग्रह है। 'बरवै रामायण' ६९ बरवै छन्दों की पुस्तिका है। इसमें भी भगवान् राम के जीवन की प्रधान घटनाओं का उल्लेख है। 'दोहावली' में ५७३ दोहे हैं, जिसमें ज्ञान धर्म की शिक्षा है। 'कवितावली' काव्य की दृष्टि से गोस्वामीजी का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इस के सात काण्डों में सब मिला कर ३६९ छन्द हैं, जो अनेक प्रकार के हैं। 'हनुमान बाहुक' से तुलसीदासजी के आद्य जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है; पर गोस्वामीजी का सब से अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ 'रामचरित मानस' है, जिसे उन्होंने विक्रमीय संवत् १६३१ में प्रारम्भ किया था। इस का आधार अध्यात्म रामायण है, पर निगम, आगम, पुराण, तथा अन्य अनेक उत्कृष्ट ग्रंथों का आलम्बन भी ग्रहण किया गया है। 'मानस' में माता-पुत्र, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सेव्य-सेवक, भाई-भाई, मित्र-मित्र, राजा-प्रजा के सम्बन्धों का जो आदर्श उपस्थित किया गया है, वह सारे संसार के साहित्य में अन्यत्र अप्राप्य है। इन ग्रन्थों से गोस्वामीजी की रचना-विशालता का परिचय मिलता है। तुलसी-प्रेमी जानते हैं कि गोस्वामीजी का अधिकार अनेक शैलियों और भाषा-बोलियों पर था। इन के प्रबन्ध और मुक्तक रामभक्ति से परिपूर्ण सरस काव्य के उत्कृष्ट से उत्कृष्ट आदर्श हैं। 'कवितावली', 'विनय-पत्रिका', और 'रामचरित-मानस' उनके काव्यत्व के प्रकाश-स्तम्भ हैं। उन्होंने अपनी रसमयी; किन्तु पूत वाणी से जनमन का रंजन किया और उसे उन्नत भी बनाया। वे जन-वाणी के माध्यम से शास्त्रों की गम्भीरता को सुबोध और आकर्षक बनाने में पूर्णतः सफल हुए हैं। उन के रूपक अप्रतिम और उद्भावनाएँ मनोरमतम हैं। 'विनय-पत्रिका' का यह रूपक तो स्वर्णाक्षरों में लिख लेने योग्य है—'केशव कहि न जाय का कहिए।' उन्होंने काव्य के रूप, अंग और आदर्श पर भी समुचित प्रकाश

डाला है, यथा—

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।।
आखर अरथ अलंकृत नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना।।
भावभेद रसभेद अपारा। कवित दोस गुन विविध प्रकारा।।
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई।।

रामचरित-मानस के पात्र

गोस्वामीजी श्रद्धालु, गुरु और मातृ-पितृ भक्त, निष्ठावान, विनयशील, अगाध पण्डित, स्पष्टवक्ता और निर्भीक व्यक्ति थे। एक ओर वे प्रकृति-प्रेमी भी थे। उन्होंने हिमालय, चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या, गंगा, पुष्पवाटिका, वर्षा, शरद आदि की जो चर्चा की है, वह मनोरमता के साथ आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है और दूसरी ओर वे आदर्शवादी स्रष्टा थे। इस कारण 'रामचरित-मानस' के पात्र भी आदर्श हैं। एक दो उदाहरण लीजिए। श्रीरामचन्द्र से वनवास की सूचना प्राप्त होने पर कौशल्याजी बड़ी उद्विग्न होती हैं, वाल्मीकिजी के वचन हैं—

"महान् पराक्रमी पति महाराज दशरथजी के द्वारा आज तक मुझे सुख, शांति एवं सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। उन लालसाओं की पूर्ति आज्ञाकारी पुत्र राम के द्वारा होगी, ऐसी धारणा करने वाली मैं (तुम्हारे वन-गमन काल में) अपने से छोटी सौतों के हृदयवेधी दुर्वचनों को बड़ी होते हुए भी सुनूंगी। स्त्रियों के लिए इससे बड़े दुःख की बात और क्या हो सकती है कि मुझे इस प्रकार का अनन्त शोक प्राप्त हुआ है? घर में तुम्हारी उपस्थिति में भी इस प्रकार मेरी उपेक्षा होती थी। हे तात, फिर तुम्हारे वन चले जाने के बाद मेरा तो मरण ही होगा। पति द्वारा उपेक्षिता मैं कैकेयी और उस के बड़े छोटे परिजनों के द्वारा अत्यन्त अपमानित होती हूँ। जो भी दास-दासी मेरी सेवा या आज्ञा का पालन करना चाहते हैं, वे कैकेयी के पुत्र को देख कर मुझ से बात तक नहीं करते। मेरी सौत के इस प्रकार अनर्थकारी और अधार्मिक वचनों को मानकर मुझ शोकाकुला माता को त्यागकर तुम्हारा वन गमन उचित नहीं है।"

किन्तु तुलसीदासजी की आदर्श शुचिता और कोमलता को देखिए—

राखौं सुतहि करौं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू।।
कहौं जान बन तौ बड़ हानी। संकट सोच विवश भई रानी।।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका।।
जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ माता।।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

जब सुमन्त जी सीता, राम और लक्ष्मण को पहुँचाकर अयोध्या लौटे, तो वाल्मीकिजी के अनुसार, कौशल्या ने दशरथ से कहा—"महाराज, यह कठिन कार्य के कर्त्ता रामचन्द्र का सन्देश लाया है। इससे आप क्यों नहीं बोलते ? पहले आपने भीषण अपराध किया, अब आप इतने दुःखी क्यों हो रहे हैं ? वह कैकेयी जिस के भय से आप रामचन्द्र के वृत्तान्त नहीं पूछते, यहाँ नहीं है। आप मन में कोई शंका न करें, जो कहना चाहें कहें"; परन्तु तुरसीदासजी की अभिव्यक्ति कितनी कोमल है—

नाथ, समुझि मन करिय बिचारू। राम वियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहित बूड़हि सबु परिवारू ॥
जौं जिव धरिय बिनय पिय मोरी। रामु लषन सिय मिलहिं बहोरी ॥

वन-गमन से पूर्व कैकेयी के मरणोपम वचनों को सुन कर रामचन्द्रजी ने वन जाने के लिए वाल्मीकिजी के अनुसार वचन दिया, किन्तु विमाता से यह अवश्य कहा—"देवि, मुझे एक बात खटकती है कि महाराज ने अभी तक अपने श्रीमुख से यह नहीं कहा कि मैं भरत को राज्य देने के लिए तैयार हूँ—'अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम। स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम्'"। तदनन्तर आवेग से राम बोले—"हे देवि, मैं साधारण मनुष्यों की भाँति अर्थ का लोभी नहीं, यह समझ लो कि मैं ऋषियों के समान धर्म पर अटल हूँ।" पर तुलसीदासजी तो रामचन्द्रजी के मुख से कहीं अधिक विनम्र शब्दों का प्रयोग कराते हैं—

पूछी मधुर वचन महतारी।
मोहि कहु मात-तात दुख कारन। करिय जतन जेहि होई निवारन ॥
+ + +
मन मुसुकाई भानुकुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू ॥
बोले वचन विगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ॥
सुनु जननी सोई सुत बड़ भागी। जो पितुमातु वचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥
मुनि गन मिलनु विसेषि वन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहिं महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥
भरत प्रान-प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥

वाल्मीकिजी के अनुसार मारीच ने मरते समय 'हा सीता, हा लक्ष्मण' कहा था। सीताजी ने ज्योंही उस आर्तनाद को आश्रम में सुना, तो वे लक्ष्मण से बोलीं—"वत्स लक्ष्मण, दौड़ो। प्रतीत होता है कि आर्यपुत्र पर कोई संकट आया है और वे तुम्हें

बुला रहे हैं ; अतएव दौड़कर जाओ और उन्हें बचाओ।" पर राम ने लक्ष्मण से कह रखा था कि इस स्थान से न हटना ; इसलिए लक्ष्मण वहाँ से हटे नहीं। सीताजी को क्रोध आ गया, वे बोलीं—"लक्ष्मण, समझ पड़ता है कि तुम्हारे मन में मेरे लिए कोई पाप है, इस कारण तुम भाई की रक्षा के लिए नहीं जा रहे हो। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम उस संकट से प्रसन्न हो, जो उन पर आया है, इसलिए तुम यहाँ चुपचाप बैठे हो।"

पर गोस्वामीजी ने इस बात का पूरा उल्लेख नहीं किया। उन्होंने केवल इतना लिखा है—मरम वचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।

उक्त कतिपय उद्धरणों का अभिप्राय यह है कि वाल्मीकि रामायण में अथवा अध्यात्म रामायण में अथवा अन्यत्र जहाँ-जहाँ ऐसे प्रसंग आये हैं, जिन में किसी प्रकार की तीव्रता-कटुता विद्यमान है अथवा जिन में राम पर किसी प्रकार का आक्षेप है, उन्हें मृदुतारूपी रस से पाग दिया गया है। राम-चरित्र के चित्रण में वाल्मीकि तथा अन्य लेखकों ने कहीं-कहीं मानव-स्वभाव की साधारण कमजोरियों का दिग्दर्शन किया है, परन्तु तुलसीदासजी ने मान-मर्यादा का ध्यान रखा है, आदर्श को उपस्थित किया है। वे राम के अनन्य भक्त थे ; अतएव वे कभी यह बर्दाश्त न कर सकते थे कि कौशल्या, सीता, राम आदि के मुख से कोई ऐसा शब्द निकले, जो आदर्श से हीन हो।

हनुमान आदर्श सेवक थे। उन के सम्बन्ध में जाम्बवान् ने कहा था—

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विग्यान निधाना।।
कवन सो काज कठिन जगमाहीं। जो नहिं होइ तात तुव पाहीं।।

भगवान् शिव ने भी उस की सराहना इस प्रकार की थी—

हनूमान सम नहिं बड़ भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी।।

भगवान् रामचन्द्र की सेवा तो अनेक व्यक्तियों ने की थी ; पर 'सुत' की पदवी केवल हनुमान ने सीता और राम दोनों से पायी थी।

सुग्रीव और विभीषण दोनों रामचन्द्रजी के आदर्श मित्र थे, इनमें से एक थे वानरराज और दूसरे थे राक्षसराज। रावण के साथ युद्धों में दोनों ने रामजी की जो अमूल्य सेवाएँ कीं, वे अविस्मरणीय हैं।

लक्ष्मणजी आदर्श भाई थे। वे थे तो भाई, पर वे अपने को राम का आज्ञाकारी सेवक ही समझते थे। वे सीताजी को माता के समान मानते थे।

भरतजी तो अति-भ्राता (सुपर ब्रदर) थे। जिसने माता-पिता से पाये हुए एवं गुरुजन और प्रजाजन-सम्मत राज्य को अपनी विमाता के पुत्र के लिए त्यागकर स्वयं चौदह वर्ष तक तपस्वी-जीवन व्यतीत किया, वह क्या साधारण भाई था। ऐसा

उदाहरण भारत में क्या, समग्र संसार में नहीं ; अतएव भरत के लिए गोस्वामीजी की ये प्रशस्तियाँ सर्वथा उचित हैं—

जो न होत जग जन्म भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ॥
सिय राम प्रेम पीयूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत आचरत को ॥
दुख दाह दरिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

तुलसीदासजी के दार्शनिक विचार

उनके दार्शनिक विचारों की परिमित समय में चर्चा न तो संभव है और न न्याय-संगत ही होगी। फिर भी इस दिशा में दो-चार शब्द अनुपयुक्त न होंगे। उनके अनुसार राम परम तत्त्व हैं, जो सगुण और निर्गुण दोनों से अतीत हैं। माया है तो, किन्तु उस की स्थिति उन राम से तनिक भी स्वतन्त्र नहीं, जो 'विधि हरि सम्भु नचावना हारे' हैं। उन्हीं के अंश से नाना ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न होते हैं। उन्हीं के भृकुटि-विलास से सृष्टि और लय होती हैं।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल विचार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥

ब्रह्म के दो रूप हैं—अगुण और सगुण।

अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

दोनों ही रूपों में ब्रह्म अनिर्वचनीय, अनादि और अनुपम है, किन्तु तुलसीदास के मत से राम इन दोनों से बड़े हैं और राम का नाम राम से भी बड़ा है—

निरगुन ते एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ रामतें निज विचार अनुसार ॥

निर्गुण और सगुण में कोई वास्तविक भेद नहीं

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा।

निर्गुण ही सगुण हो जाता है।

फूले कमल सोहसर कैसे। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसे ॥

यदि निर्गुण और सगुण में कारण-कार्य का सम्बन्ध है तो वह सम्बन्ध किस प्रकार का है, इस विषय में वे शुद्धाद्वैती दृष्टिकोण को अपनाते हुए तर्क को उपस्थित करते हैं—

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥

और इस प्रकार महाप्रभु वल्लभ के अविकृत परिणामवाद को वे स्वीकार कर लेते हैं—जल-हिम जल परम सत्ता। अब अव्यक्त है अब अव्यक्त अब पुन: व्यक्त। भगवान 'इच्छा' का शरीर धारण कर संसार में धर्म-संस्थापन, दुष्ट-दमन और साधु-भक्त-परित्राण के लिए समय-समय पर अवतार लेते रहते हैं।

गोस्वामीजी के अनुसार जीव अविनाशी, नित्य, चेतन, अमल और सुखराशी है और ईश्वर का अंश है।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

मुक्ति शांति की एक अवस्था है, जो चार प्रकार की होती है— सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, और सायुज्य। पर भक्त लोग मुक्ति नहीं चाहते, उन्हें तो वह अपने-आप प्राप्त हो जाती है।

राम भजत सोई मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आइव बरिआई।।

मुक्ति-प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बताये जाते हैं—कर्म, ज्ञान और भक्ति। गोस्वामीजी ने कर्म की अधिक सिफारिश नहीं की है और उन्होंने लगभग पाँच कारणों का उल्लेख किया है। वे ज्ञान और भक्ति को एक-सा समझते हैं—

भगितिहि ज्ञानिहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

फिर भी उनका स्पष्ट झुकाव भक्ति की ओर है, क्यों कि ज्ञान पर माया का प्रभाव पड़ जाता है, इस में अनेक विघ्न होने की संभावना रहती है और यह मार्ग कठिन भी है।

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।

ज्ञान-दीपक के जलाने में बड़ा आयोजन करना पड़ता है, तथापि वह विषय-प्रभंजन से बुझ सकता है; अतएव भक्ति-मणि विश्वसनीय उपाय है। भक्ति-मणि माया से अप्रभावित है और राजपथ के समान प्रशस्त है। भक्ति उपाय हैं—स्तुति, प्रार्थना, नाम-जप विप्रार्चा, सत्संग, विनम्रता, और द्वादशाक्षर मन्त्र। भक्ति की उत्कृष्ट रूप प्रपत्ति है और फल है भगवत्प्रसाद। जड़ चेतन की ग्रन्थि भगवत्कृपा से संभव है।

अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित् सो निरु अरई।।

यदि 'कदाचित्' से 'शायद' तात्पर्य ग्रहण किया जाय, तो प्रसाद सिद्धान्त पर ही पानी फिर जाता है; अतएव यही कहना ठीक प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने 'कदाचित्' शब्द का प्रयोग 'कभी' के अर्थ में किया है, जैसा कि श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य ने भी तत्वार्थ दीप में किया है—"कदाचित् सर्वमात्मेव भवतीह जनार्दन:"४१। जिस प्रकार आचार्यजी ने अणु भाष्य में लिखा कि "एकेषां पुष्टिमार्गीयाणां भक्तान-

मुभयोः प्रारब्धा प्रारब्धयोर्भागं विनैव नाशो भवति'' उसी प्रकार गोस्वामीजी ने भी गाया—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा ॥

गोस्वामीजी ने 'रामचरित-मानस' के उत्तर काण्ड में जो मनोवैज्ञानिक चर्चा की है वह हिन्दी साहित्य को ही नहीं, विश्व साहित्य को बहुत बड़ी देन है। उन्होंने ग्रंथियों के रूप और कारण पर प्रकाश डाला है और मानसिक एवं शारीरिक रोगों की चिकित्सा के निमित्त तीन योगों का उल्लेख किया है। उन के विचार आधुनिक मनोविश्लेषण-निष्कर्षों के अत्यन्त निकट हैं।

गोस्वामीजी के आचार-परक विचार इस प्रकार हैं—ईश्वर कार्य करने में स्वतन्त्र है, किन्तु जीव इस प्रकार परतन्त्र है, जिस प्रकार पिंजड़े का तोता अथवा रस्सी से बँधा बन्दर। मनुष्य में विवेक शक्ति है; अतएव वह अपने कार्य के लिए उत्तरदायी है। यद्यपि कभी-कभी अज्ञानवश ऐसा भासता है कि करने वाला कोई और है और भोगने वाला कोई और है। अच्छे कार्यों का फल सुख देता है; अतएव उन्हें करते रहना चाहिए। राम-नाम-जप से परमार्थ सुलभ है। कर्म-सिद्धान्त सब के लिए है—जो जैसा करता है, वैसा भरता है। पाप-शांति के लिए ध्यान, तीर्थ, तप आदि की आवश्यकता है, पर देखा जाता है कि पाप रक्त-बीज की भांति बढ़ते रहते हैं और भगवत्कृपा ही उन के लिए राम-बाण है—

करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रकत बीज जिमि बाढ़त जाहीं ॥
हरनि एक अघ-असुर-जालिका। तुलसिदास प्रभु कृपा कालिका ॥

व्यवहार में परोपकार की महिमा है—

परहित सरिस धरम नहि भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई ॥

गोस्वामीजी के दार्शनिक विचारों का सिंहावलोकन करने के पश्चात् मेरी धारणा है कि गोस्वामीजी वल्लभ संप्रदाय में, अपने चचेरे भाई नन्ददासजी की भांति, दीक्षित न थे; पर वे नन्ददासजी और सूरदासजी के सम्पर्क में आये थे और मथुरा भी पधारे थे, जैसा कि वैष्णव-वार्ताओं और अन्य कुछ वैष्णाव-ग्रन्थों से स्पष्ट है। स्यात् इसी से एवं अन्य कतिपय कारणों से गोस्वामीजी अपने दार्शनिक दृष्टिकोण में वल्लभ-संप्रदाय से प्रभावित अवश्य थे; अतः जिस प्रकार उन्होंने अपने गुरुदेव तथा माता-पिता का सादर किन्तु गूढ़ रीति से उल्लेख किया है, कुछ उसी प्रकार उन्होंने महाप्रभु वल्लभ और गोकुल के प्रति भी गूढ़ श्रद्धांजलि इस प्रकार उपस्थित की है—

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभम्।
चरणारविंदमहं भजे भजनीय सुरमुनि दुर्लभम् ॥

गोस्वामीजी के राजनैतिक विचार

उन के राजनीति-परक सिद्धान्त भी माननीय है। गोस्वामीजी ने राजा, मन्त्री आदि की योग्यता पर विचार प्रकट किये हैं और शासन के सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।
माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग बस होंहिगे, कबहुँ कबहुँ कलिकाल।।
बरषत हरषत लोग सब, करषत लखें न कोइ।
तुलसी प्रजा-सुभाग तें भूप भानु सो होइ।।

अच्छा राजा तो माली, सूर्य और किसान के समान होता है। माली कुम्हलाते हुए पौधों में पानी देता है, उदार नृप असहाय और दीनों की रक्षा करता है। सूर्य समुद्र से, अलक्षित रूप में, जल को ले लेता है, वैसे ही चतुर राजा जनता पर परोक्ष कर लगा कर जनता का हित करता रहता है। जिस प्रकार किसान खेत जोतता, खाद डालता, बीज बोता, पानी देता, देखभाल करता और अन्त में खेती के तैयार होने पर उसे काट लेता है, उसी प्रकार नरेश भी अपनी प्रजा का हित करता रहता है।

गोस्वामीजी समन्वयात्मक राष्ट्रकवि थे

गोस्वामीजी की दृष्टि समन्वयात्मक थी। उन्होंने निर्गुण-सगुण का, ज्ञान-भक्ति का और शैव-वैष्णव का अच्छा समन्वय किया। तुलसी के अनुसार भगवान् शिव के हृदय में राम सदैव विराजते हैं और राम भी शिव-द्रोही से विमुख रहते हैं। रामेश्वरम् में शिवलिङ्ग की स्थापना कर राम ने इस प्रकार घोषणा की—

शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा।।
शिवद्रोही मम भक्त कहावै। सो नर सपनेहु मोहिं न भावै।।
शंकर विमुख भक्ति चह मोरी। सो नर मूढ़ मंदमति थोरी।।
शंकर-प्रिय ममद्रोही शिवद्रोही ममदास।
ते नर करहिं कल्प भरि घोर नरक महु वास।।

तुलसीदासजी राजकवि न थे। उन्होंने कभी प्रकृत राजा, जमींदार अथवा धनिक को प्रसन्न करने के लिए कविता न की थी। हाँ, तोडर नाम के एक भक्त पर कुछ दोहे अवश्य लिख दिये थे। उन की काव्य-स्फूर्ति तो स्वान्तः सुखाय थी। वे कविता द्वारा राम-गुण गाते और अखिल जगत् को 'सियाराममय' समझकर

उसके कल्याण की कामना करते थे। वास्तविक अर्थ में वे राष्ट्रकवि थे। उन के काव्य ने नैराश्य में प्राण फूंक दिये। उन की कलम से आदर्श-चरित्र का सर्जन और देश का नैतिक उत्थान जन-भाषा में हुआ। उन की वाणी राष्ट्रीयता की विशाल भावना से व्याप्त है। शताब्दियों के व्यतीत हो जाने पर भी, उन का काव्य अक्षुण्ण बना हुआ है। आज भी कुछ और ही प्रकार के 'शैव' 'वैष्णव' परस्पर संघर्ष पर भारत की भावी उन्नति में बाधक हो रहे हैं। संकीर्ण साम्प्रदायिकता को राष्ट्र-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व में परिवर्तित हो जाने की आवश्यकता है। आज भी राष्ट्र के नैतिक पतन के उत्थान एवं भावात्मक एकीकरण के निमित्त गोस्वामी-जी की समन्वय-साधना को अपनाने की महती आवश्यकता है। इस महापुरुष ने अपने युग में ज्ञान-दीप और भक्ति-मणि का प्रकाश दिया था, आज फिर भारत उन की ओर देखता है।

गोस्वामीजी का मूल्यांकन

गोस्वामीजी का मूल्यांकन उन्हीं के काल में प्रारम्भ हो गया था। उन्हीं के वचनों से पता चलता है कि उन के विषय में लोकधारणा कितनी उत्कृष्ट हो गयी थी। लोग तुलसी को उच्चकोटि का ऐसा व्यक्ति समझते थे—

जो पाय पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि सो।

यद्यपि उन का बाल्य दीनावस्था में व्यतीत हुआ था, तथापि वे अपनी प्रतिभा एवं तपस्या के कारण इतने बड़े हो गये कि राजे-महाराजे भी उन के चरणों की वन्दना करने में अपना गौरव समझते थे—

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।

किन्तु तुलसी की उन्नति का वास्तविक कारण राम-नाम-जप था—

राम नाम को प्रभाव पाय महिमा प्रताप।
तुलसी सो जग मानियत महामुनि सो।

तुलसीजी के समकालीन महापुरुषों ने उन पर प्रशस्तियां लिखीं। तत्कालीन असाधारण विद्वान् मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं—

आनन्द कानने ह्यस्मिन् तुलसी जंगमस्तरुः।
कविता मंजरी भाति राम-भ्रमर-भूषिता।।

भक्त नाभाजी के अनुसार वाल्मीकिजी ही तुलसीदास के रूप में आविर्भूत हुए—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित,
वाल्मीकि तुलसी भयो।

अब्दुल रहीम खानखाना ने परोक्ष संस्तुति लिख भेजी—

गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।

इसी कारण अनेक टीकाकारों, आलोचकों और अनुसंधित्सुओं ने तुलसीदासजी के ग्रन्थों का अध्ययन और मनन कर गोस्वामीजी के विचारों को अपने-अपने शब्दों में संसार के सामने उपस्थित किया है। 'सूर सूर तुलसी ससी' यह प्राचीन उक्ति तुलसीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

केवल साहित्यिक ही गोस्वामीजी से प्रभावित रहे हों, ऐसी बात नहीं। महात्मा गांधी जैसे विश्व-विख्यात् जन-नेता भी तुलसीकृत 'रामचरित-मानस' से अत्यन्त प्रभावित थे। उनके शब्द हैं—

'Nothing elates me like the music of the Gita and the Ramayana of Tulsidas.' अर्थात्—मुझे कोई वस्तु इतना आनन्दित नहीं करती, जितना कि गीता का संगीत और तुलसीकृत रामायण।

विदेशियों ने भी तुलसी-गौरव को कुछ कम नहीं आँका। एफ० एस० ग्राउज़, डी० पी० हिल, और एटकिंसन ने रामचरित-मानस के तीन अंग्रेज़ी अनुवाद प्रस्तुत किये हैं और एलेग्ज़ी बारान्नीकोव ने रूसी भाषा में। सर जार्ज आर्थर ग्रियर्सन ने तुलसीदासजी के जीवन और काव्य के अनुसंधान में जो परिश्रम किया है, वह परम स्तुत्य है। उन के अनुसार भारत में भगवान् गौतम बुद्ध के पश्चात् जिन महापुरुष का आविर्भाव हुआ वे थे गोस्वामी तुलसीदास। एफ० ई० के० की सम्मति में इन की रामायण निस्सन्देह महती कविता है, जिस की गणना विश्व-साहित्य के आभिजात्य सर्वोत्कृष्ट महाकाव्यों में की जाने के योग्य है। इसी प्रकार ए० ए० मैक्डोनल समझते हैं कि 'रामचरित-मानस' अपनी उत्कृष्टता और पवित्रता के आदर्श-मान के कारण उत्तरी भारत के करोड़ों निवासियों के लिए 'बाइबिल' के सदृश है; पर ग्रिफ़िथ कहते हैं कि—

'The Ramayana of Tulsidas is more popular and more honoured by the people of north west provinces than the Bible is by the corresponding class in England'. अर्थात्—इंगलैण्ड में 'बाइबिल' का जो आदर है, उस से अधिक लोकप्रिय और आदृत तुलसीकृत रामायण उत्तर भारत में है। सुविख्यात इतिहासकार विंसेंट आर्थर स्मिथ गोस्वामी तुलसीदास को इन शब्दों में स्मरण करते हैं:—

'Yet that Hindu was the greatest man of his age in India—greater even than Akbar himself.' अर्थात्—वह हिन्दू भारत में अपने युग का महत्तम पुरुष था, स्वयं अकबर से भी महत्तर।

राजापुर की महिमा

देशी-विदेशी, छोटे-बड़े, सभी लोग जिस व्यक्ति की नित्य अर्चना करते हैं, उस का स्मारक कितना आवश्यक है, इस विषय पर प्रकाश डालना सूर्य को दीपक दिखाना है। जिस प्रकार महात्मा गांधी के स्मारक नगर-नगर में बने हैं, उसी प्रकार गोस्वामीजी के भी स्मारक महत्त्वपूर्ण स्थानों में स्थापित होने चाहिए। मुझे यह कहते प्रसन्नता भी है कि उन के कुछ स्मारक अन्यत्र स्थापित हुए हैं; पर राजापुर की विशेषता यह है कि जहाँ गोस्वामीजी के जन्म, परिवार, विद्या आदि के सम्बन्ध में विवाद है, वहाँ यह बात सन्देहातीत और सर्वमान्य भी है कि वे यमुना तीरस्थ इस राजापुर में बहुत समय तक रहे थे। यह उन की तपोभूमि है। गोस्वामीजी ने राजापुर की नींव डाली थी, इस कारण भी इस नगर के गौरव में विशेष वृद्धि हो जाती है। इस बात का उल्लेख १८७४ ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित और एडविन टी० एटकिंसन द्वारा सम्पादित, स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टारिकल अकाउंट आव द नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज आव इण्डिया की बुन्देलखंड जिल्द १ के पृष्ठ ५७२-५७३ पर इस प्रकार हुआ है—

'Tradition has it that in Akbar's reign, a holy man, Tulsidas, a resident of Soron in Paraganah Aliganj of the Etah district, came to the jungle on the banks of the Jumna, where Rajapur now stands, erected a temple, and devoted himself to prayer and meditation. His sanctity soon attracted followers, who settled around him, and as their numbers increased they began to devote themselves (and with wonderful success) to commerce, as well as to religion. There are some curious local customs peculiar to Rajapur derived from the precepts of Tulsi.' अर्थात्— जनश्रुति है कि अकबर के शासनकाल में तुलसीदास नाम के एक पुण्यात्मा, जो एटा जिले के परगना अलीगज में सोरों के निवासी थे, यमुनाजी के किनारे जंगल में आये, जहाँ अब राजापुर स्थित है। वहाँ उन्होंने मन्दिर बनवाया और वे प्रार्थना-ध्यान में लीन हो गये। उन की साधुता से आकृष्ट हो कर उन के अनुयायी उन के चारों ओर बस गये। ज्यों-ज्यों उन की संख्या बढ़ती गयी, त्यों-त्यों वे आश्चर्यजनक सफलता से वाणिज्य और धर्म की ओर प्रवृत्त होने लगे। तुलसी उपदेश-जन्य कुछ विचित्र स्थानीय प्रथाएँ हैं, जो राजापुर में ही मिलती हैं।

यह जनश्रुति, इम्पीरियल गजेटियर, बाँदा गजेटियर में तथा गोस्वामीजी

पर अनुसंधान करने वाले देशी-विदेशी सुविख्यात महानुभावों के लेखों में विद्यमान हैं। इस कारण राजापुर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थ है।

इसके अतिरिक्त राजापुर से गोस्वामीजी की घनिष्ठता को स्पष्ट करने के लिए कुछ अन्य सामग्री का उल्लेख किया जा सकता है; यथा—अयोध्याकाण्ड की प्राचीन हस्तलिखित प्रति, मन्दिर, प्रतिमाएँ, माफी की सनदें, शर्त वाजिबुल अर्ज। शर्त वाजिबुल अर्ज से यह स्पष्ट है कि राजापुर में गोस्वामीजी के शिष्य निवास करते हैं, जो हमारे लिए बड़े गौरव की बात है। इन के पास जो परम्परागत 'रामचरित-मानस' का अयोध्याकाण्ड है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह भले ही गोस्वामीजी के हाथ का लिखा न हो, किन्तु इस में सन्देह नहीं कि वह प्रति अत्यन्त प्राचीन है ; अतएव संग्रहणीय और आदरणीय है। इन्हीं कतिपय, किन्तु पुष्ट कारणों से मैं तुलसी-स्मारक के लिए राजापुर की महिमा को मानता हूँ।

जिन महानुभावों ने स्मारक के उत्थान में साहाय्य प्रदान किया है, वे सभी साधुवाद के पात्र हैं। इस की कार्यकारिणी के अथक और उत्साही सदस्य और वे सभी सज्जन हार्दिक धन्यवाद के पात्र है, जिन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार शारीरिक एवं आर्थिक सहयोग दिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि इस स्मारक से केवल राजापुर के निवासी ही नहीं, अपितु अखिल भारतवर्ष के तथा विश्व के भक्त-जिज्ञासु यहाँ पधार कर लाभान्वित होते रहेंगे।

धन्यवाद

मैं आप सब का हृदय से कृतज्ञ हूँ कि आपने इस पुण्य वेला और इस पवित्र तीर्थ में मुझे स्मरण कर, गोस्वामी तुलसीदासजी के इस भव्य यशोभवन में विश्व-कवि के सम्बन्ध में कुछ कहने का और तुलसी-भक्तों के दर्शन करने का अवसर प्रदान किया।

केशवदास-जयन्ती-समारोह, टीकमगढ़
अध्यक्षीय भाषण
३० मार्च, १९६३

प्राचार्य महोदय, देवियो और सज्जनो,

केशव-जयन्ती के इस पुण्य अवसर पर आपने मुझे समारोह के उद्घाटन तथा अध्यक्षता के लिये आमंत्रित किया ; इसलिये आपको धन्यवाद देता हूं। अपने राजनीतिक जीवन में मैंने साहित्य को बहुत ऊंचा स्थान दिया है ; क्योंकि मैं उसे शाश्वत मानता हूं। किसी भी देश की संस्कृति और सभ्यता बिना साहित्यिक आधार के खोखली हो जाती है और फिर राजनीति तो वायु की तरह चंचल और अस्थिर है। राजनीति के प्रभाव से हम भारतवासी वर्तमान काल में बहुधा अपनी वीर पूजा राजनीतिज्ञों तक ही सीमित रखते हैं ; परन्तु सत्य तो यह है कि जिन मनीषियों ने हमारे अन्तस्तल को प्रतिबिम्बित किया तथा उसे नई अनुभूतियों से अनुप्राणित कर राष्ट्र की संस्कृति को पुनर्जीवन दिया, वे ही हमारी पूजा के विशेष रूप से पात्र हैं।

जिस देश का साहित्य अपनी भाषा की ठोस परम्परा से विचलित हो, प्रत्येक आंधी के झोंके से उथल-पुथल होता रहता है, वह अपना स्वत्व खो बैठता है। पश्चिम से आये प्रभाव यदि शुद्ध हवा की तरह हैं, तो निस्संदेह हमें उन से परिचित होना चाहिए ; परन्तु यदि वे अंधड़ हैं, तो उन से बचकर चलना चाहिए, ताकि वे हमारे पैर न उखाड़ दें। इस विडम्बना से बचने का उपाय है कि प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य के मूल तक पहुंचने की कोशिश करे। उस के इतिहास और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में अपने को आत्मसात् करे। ऐसा करने से व्यक्तिवाद की विकेन्द्रीय शक्तियां क्षीण हो जाती हैं और परम्परा का शुद्ध भाव साहित्य में प्रवेश पा सकता है।

इस समारोह का महत्त्व बौद्धिक संदर्भ में देखा जाय, तो बहुत है। १७वीं सदी के हिन्दी कवि को, जो पिंगल शास्त्र का आचार्य था आज हम अपनी श्रद्धांजलि देने यहां एकत्रित हुए हैं। यह हमारा प्रयास अपनी परम्परा, अपनी जड़ों, अपने अतीत की आत्मा के खोजबीन का है। इस महान् आचार्य के सामने नत-मस्तक

हो हम अपने उस साहित्यिक जीवन के समक्ष नत हैं ; जब राष्ट्र अपनी ही भाषा में अपनी सारी चेष्टाएँ अभिव्यंजित करता था। यही कारण है कि हमारे देश की उन समस्त कवियों की रचनाओं में, जिन पर विदेशी भाषा का प्रभुत्व नहीं हो पाया है, एक विशेष सौष्ठव है। विचार भावनाएँ, रस चिन्तन, दर्शन आदि अपने-अपने माध्यम में विकसित हो भाषा को समृद्ध करते थे। काव्य के प्रत्येक शब्द के पीछे एक ध्वनि है, एक प्रतिबिंबित अनुभूति हैं, एक ठोस आवाज है, जो नकली सिक्के की नहीं है। हमारे देश की सारी भाषाएँ विदेशी प्रभुत्व के पहले इसी शुद्ध दशा में पाई जाती हैं। चाहे बंगला हो अथवा मराठी या तेलगु; अंग्रेज़ी प्रभुत्व के पहले उन के काव्य की अपनी संजोई भाषा थी। चंडीदास हों अथवा संत तुकाराम, हमारे काव्य की भाषा मूलतः भारतीय थी और अनुभूति राष्ट्रीय जीवन से प्रभावित थी। आचार्य केशवदास का यह संकेतात्मक महत्त्व हमें स्मरण रखना चाहिए। सत्रहवीं सदी आज हम से बहुत दूर है। उसकी मान्यताएँ तथा मूल्यांकन आज पुराने पड़ गये हैं। उस की तस्वीर एक धुंधली स्मृति ही भर है; परन्तु इस कवि के प्रभाव से प्रस्फुटित कांगड़ा शैली की ओर इस बीसवीं सदी में क्यों एकाएक रुझान पैदा हो गई है, क्यों आज भी रसिक प्रिया के छन्द इस छायावाद तथा प्रयोगवाद की तृप्त पीढ़ियों के मन में एक अजीब बेचैनी पैदा कर देते हैं ? संयोग और वियोग के उस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को आज भी इस हैवलाक एलिस के युग में हम क्यों पसंद करते हैं ? क्या यह सत्य है कि केशवदास ने जीवन के समूचे भाग को पूरी तपस्या से आँका और सतत साधना से उसे शब्दबद्ध किया ?

आज के इस आलोचना-प्रधान युग में महाकवि केशवदासजी को विभिन्न आलोचकों ने विभिन्न दृष्टियों से देखा है। किसी ने इनको कठिन काव्य का प्रेत कहा, तो किसी ने हृदयहीन और चमत्कारवादी ; परन्तु अपने समय में ही इस महाकवि को जो यश, सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त हुआ, इससे यह सिद्ध होता है कि महाकवि केशवदास अपने समय के ख्यातिप्राप्त सम्मानित कवि थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वे जहां भी गये, अत्यधिक सम्मान के साथ उन का आदर हुआ तथा सब के श्रद्धा-भाजन बने। उस विषम युग में जब कि कविवर गंग को हाथी के पैरों से कुचलवाया गया ; अति उदार राजभक्त एवं योग्य सेनानायक कवि अब्दुर्रहीम खानखाना को भी अपनी सम्पत्ति से वंचित होना पड़ा, केशव को जो राज-सम्मान प्राप्त हुआ, वह इस बात का परिचायक है कि वे अपने युग के एक सफल राज-नयज्ञ, लोकव्यवहारपटु, विद्वान् तथा प्रतिभाशाली कवि थे।

इस महाकवि का व्यक्तित्व अनुपम था। यह इनके व्यक्तित्व का ही प्रभाव

है कि इन्होंने अपने युग के महान् सम्राट् अकबर की कोपाग्नि को अपने काव्य की शीतलता से शान्त कर महाराजा ओरछा नरेश को राज-दण्ड से मुक्त करा दिया। तत्कालीन परिस्थितियों में रह कर भी किस प्रकार इन्होंने सब को अपने अनुकूल बनाया, यह इसी बात से प्रकट हो रहा है कि इन के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह तो इन्हें अपने गुरु के समान मानते ही थे, महाराज रामशाह भी इन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे।

इनके असाधारण व्यक्तित्व के कारण अकबर-दरबार के नवरत्नों में से अधिकांश इन को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। बीरबल तो इन की रचना पर इतने अधिक मुग्ध थे कि इन्होंने अकबर के द्वारा महाराज इन्द्रजीतसिंह पर जो जुर्माना हुआ था, उस को तो माफ कराया ही, स्वयं भी ६ लाख की हुण्डी दे डाली।

यह भी इनके गुरुत्व का प्रभाव है कि इन की शिष्या वारांगना प्रवीनराय में वह आत्मबल था कि उस ने अकबर-ऐसे प्रतापी शासक के प्रस्ताव को ठुकरा देने का सत्साहस किया। इससे यह सिद्ध होता है कि उन का व्यक्तित्व असाधारण था। वे केवल राज-दरबारी कवि ही नहीं थे, वे थे अपने समय के कला-प्रवीण, व्यवहार-कुशल, प्रकाण्ड पण्डित तथा काव्य-कला के अद्वितीय शिक्षक।

महाकवि का अपना निजी व्यक्तित्व होने के कारण अपना दृष्टिकोण भी पृथक् था। कला का एकान्तिक प्रेम ही इन के जीवन का उद्देश्य था। इन के पास संस्कृत-साहित्य का प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा स्वयं की चिंतन शैली और विचार पद्धति थी, जिस को लेकर हिन्दी-साहित्य में प्रवेश किया। यद्यपि रीतिकालीन परम्परा इन के पश्चात् पचास या साठ वर्षों बाद प्रारम्भ हुई, तथापि केशवदास जी का हिन्दी-साहित्य में एक निश्चित स्थान है।

इन्होंने अपने समय तक के हिन्दी-साहित्य की प्रगति एवम् विकास को देखते हुए भाषा को व्यापक बनाने का प्रयास किया, काव्य को विकसित एवम् उन्नत करने की अधिक चेष्टा की, अनेक नवीन छन्दों, शैलियों का प्रयोग कर आगे आने वाली पीढ़ी के लिए अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

केशवदास महात्मा सूरदास और तुलसीदास के समान जनमानस के श्रद्धेय तथा लोकमंगल के साधक नहीं थे। वे भगवती वीणापाणि के रसिक, उपासक तथा हिन्दी-साहित्य के मन्दिर में अपनी प्रतिभा का प्रसून चढ़ा देने को आतुर सहृदय कवि थे। इन में शास्त्रज्ञान की प्रधानता थी। ये भक्त कवि न होकर रीति के उन्नायक थे, कल्पना का चमत्कार ही उन के काव्य का प्राण था। इन्हें भक्ति का प्रचार इष्ट न था। ये वाग्वैदग्ध्य तथा कलाचातुरी के प्रवीण कवि थे। अलंकार योजना, छन्दों की विविधता तथा वर्णन की चारुता में किसी से कम नहीं थे। यही

कारण है कि हिन्दी-साहित्याकाश में सूर और शशि के साथ नक्षत्र कोटि में इन की गणना की जाती है।

भक्ति के सामयिक प्रवाह में केशवदासजी बहे ; परन्तु सूर और तुलसी की भांति भक्तिभाव इन के जीवन का उद्देश्य नहीं था। ये मुक्त नहीं बद्धजीव थे। राजाश्रय प्राप्त कुल में उत्पन्न तथा राजछत्र की छाया में पलने वाले राजकवि थे। सामयिक परिस्थितियों से आवृत, व्यक्तिगत रुचियों से विवश, राजनीतिक तथा सामाजिक परिवेश से आबद्ध इस कवि को इन परिप्रेक्ष्यों से पृथक् कर आधुनिक दृष्टि से देखना तथा कालनिरपेक्ष आलोचना की कसौटी पर कसना इन के समान रसिक, लोकपटु, काव्यशास्त्रज्ञ कवि के प्रति न्याय नही कहा जा सकता।

महाकवि केशवदास के समय देश का जीवन बदल चुका था। भारतवर्ष अपने पौरुष को राजनीति के जुए मे हार चुका था। अधिकांश प्रजा-पालक राजवंश अपनी मर्यादा का त्याग कर विदेशी शासन के समक्ष नतमस्तक हो चुके थे। जनता राजनीति-विमुख होकर उत्पीडन और अत्याचार को भाग्य की देन समझकर सह रही थी। उन के रक्षक वैभव तथा विलास की मदिरा से उन्मत्त थे। वे आत्मविस्मृत, दायित्वविहीन हो मदिरापान तथा वासना-तृप्ति को ही राजधर्म समझ बैठे थे। सूर्य और चन्द्रवंश की प्रतिष्ठा मुगल दरबार के मनसब या पद तक ही सीमित थी। उस समय न तो राष्ट्रोद्धार का प्रश्न था, न आत्मोद्धार की भावना। ऐसे समय में जब कि धार्मिक आचार्य भी जगन्मिथ्यात्व का उपदेश देकर लौकिक सुख की अपेक्षा पारलौकिक सुख को ही जीवन का लक्ष्य सिद्ध कर रहे थे, राष्ट्रकवि कालिदास का आविर्भाव असम्भव था। ऐसे युग में राष्ट्र के तारुण्य को जगा देने वाली कविता की रचना सम्भव न थी। उस युग के वातावरण में उत्पन्न केशवदास की रचना के प्रति आलोचकों की सहानुभूति अपेक्षित है। इस महाकवि का हिन्दी-साहित्य के विकास में कितना योगदान है, यह इन की रचनाओं के परीक्षण और उन की व्यक्तिगत रुचियों तथा मान्यताओं के पर्यवेक्षण से स्पष्ट हो जायगा। इनकी प्रवृत्तियों के निर्माण, काव्य-सिद्धान्तों के स्थिरीकरण में कुल-परम्परा तथा प्राक्कालीन साहित्य-परम्परा का कहां तक सहयोग है, इस पर विचार करना भी इनके मूल्यांकन के लिए अनिवार्य है।

इनके पूर्वज संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् तथा कवि थे। इन के यहाँ के दास-दासी भी संस्कृत का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे। पितामह कृष्णदत्त मिश्र सूर्यवंशियों की गहरवार शाखा में उत्पन्न महाराज प्रतापरुद्र के आश्रित थे, जो महाराज की बसाई नगरी ओरछा में पुराणवृत्ति पर रहा करते थे। कवि के पिता काशीनाथ

मिश्र ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् और ग्रन्थकर्ता थे। संस्कृत में रचना प्रस्तुत न करने का इन्हें दुःख था। यह अनुताप इस दोहे में प्रकट होता है—

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि सो मंदमति, तेहि कुल केशवदास।।

संस्कृतज्ञ कुल में उत्पन्न ओरछा नरेश दानवीर इन्द्रजीतसिंह के कृपापात्र, इक्कीस गाँव के पुरस्कार से पुरस्कृत कवि के हृदय में भक्ति-भावना का न होना, हेतु-सिद्ध है। ऐसे कवि के मूल्यांकन के लिये सहृदयता तथा नीर-क्षीर-विवेक आवश्यक है।

रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, वीरसिंहदेव-चरित, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका, रतनबावनी और विज्ञान गीता कवि की सर्वमान्य रचनाएँ हैं।

रामचन्द्रिका प्रबन्धकाव्य है, जिसमें रामचरित का वर्णन किया गया है। इस का आधार वाल्मीकि रामायण है। प्रारम्भ में एक गुरु वाले श्री छन्द से लेकर अनेक वर्णों वाले छन्दों के प्रयोग से यह जान पड़ता है कि कवि इस ग्रन्थ में विविध छन्दों का प्रयोग-कौशल भी दिखाना चाहता है—रामचन्द्र की चन्द्रिका, वर्णत हौं बहु छन्द।

अनेक कथा-प्रसंगों की योजना कवि की प्रसंगोद्भावना की मौलिकता का परिचय देती हैं ; जैसे—परशुराम और राम के विवाद को भगवान् शंकर आकर शान्त करते हैं। चित्रकूट में भरत के विनीत आग्रह पर राम को लौटते न देख कर गंगाजी भरत को मानसिक परितोष प्रदान करती हैं। इस ग्रन्थ के देखने से यह भी स्पष्ट होता है कि कथा के उपयुक्त निर्वाह की ओर कवि की रुचि नहीं थी। वे तो अपना वर्णन-कौशल ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं। जहां वर्णन का अभाव है, वहाँ संवादों का कौशल ही प्रकट कर देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि काव्य में प्रबन्ध-तत्त्वों की उपेक्षा कर वर्णनात्मकता को ही प्रधानता दी गई है। इस रचना में केशव ने भारवि और माघ के आदर्शों को सामने रखकर छन्दों की विविधता का एक विशिष्ट प्रयोग प्रस्तुत किया है, जो अपने ढंग का अद्भुत प्रयोग है। छन्दों के परिवर्तन से कथा-प्रवाह की रसात्मक नादाभिव्यक्ति में कहां तक बाधा पहुंचेगी, इस ओर कवि का ध्यान नहीं रहा।

केशव वर्णन को भी अलंकार मानते थे। प्रकृति वर्णन के लिये—

देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम सरिता ताल।
रवि शशि सागर भूमि के, भूषण ऋतु सब काल।।

ही पर्याप्त है, अतः रामचन्द्रिका में इन का वर्णन विस्तारपूर्वक मिलेगा। इस दृष्टि से यह वर्णन-प्रधान महाकाव्य है। वर्णन विस्तार के साथ, कथा-संबंधी

प्रत्येक स्थल पर, जहां कवि तुलसी के समान अपनी भावुकता का परिचय दे सकता था, वहां पाण्डित्य तथा रचना-कौशल के प्रदर्शन की चेष्टा के कारण नीरसता आ गई है। वाक्यों की जटिलता के कारण ऐसे स्थलों में दुरूहता भी आ गई है। जहां जटिलता नहीं है, वहा अलंकारों के विलक्षण प्रयोग, संवादों की कुशल योजना तथा नवीन उद्भावनाएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।

अयोध्यापुरी के प्रत्येक प्रासाद में जो चित्रकारी थी, वह देखते ही बनती थी। इस नगरी को विश्वरूप की अमल आरसी बना कर कवि ने एक ही साथ अनेक भावों की अभिव्यंजना की है।

सीता-स्वयंवर के समय राजसभा की शोभा का वर्णन कवि ने इस छन्द में किया है—

शोभित मंचन की अवली गजदन्त मयी उज्ज्वल छबि छाई।
ईश मनै वसुधा सुवारि सुधाधर मंडल मंडि जुन्हाई॥
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यौं जनु देवसभा शुभ सीय स्वयंवर देखन आई॥

सीय स्वयंवर के शुभ उज्ज्वल वातावरण को कवि ने उत्प्रेक्षा के प्रयोग से साकार-सा बना दिया है। ऐसे वर्णनों से यह महाकाव्य भरा पड़ा है। कवि के आलंकारिक वर्णन से परिपूर्ण यह छन्द भी—

राघव की चतुरंग चमूचय केशव को गनै राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझे पग तुंग पताकन को पट साजनि॥
केशव टूट परे तिनके मुकता उपमा बरनी कवि राजनि।
बिन्दु किधौं मुख फेननि को किधौं राजसिरी द्रव मंगल लाजनि॥

संदेहालंकार के सहारे कल्पना-शक्ति का परिचायक है। पताका की ऊँचाई दिखाने के लिए कवि की कल्पना-चातुरी देखने योग्य है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कवि पर यह आक्षेप किया है कि केशव में मार्मिक स्थलों के पहचानने की शक्ति न थी। वे उक्ति-वैचित्र्य और शब्दक्रीड़ा के प्रेमी थे। इस प्रसंग में उन्होंने कई उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं; परन्तु केशवदासजी की मनोवृत्ति का परिचय पहले ही दिया जा चुका है; अतः यह आक्षेप विचारणीय है। राज-दरबारी होने के कारण कवि ने राज-दरबार और राजदूतों की शिष्टता पर बराबर ध्यान रखा है। केशव के राजदूत अंगद भी शिष्टता का ध्यान रखते हैं। वे तुलसी के अंगद के समान उजड्ड दूत नहीं हैं, जो झट से कह दें कि—

मैं तुव दसन तोरबे लायक,
आयसु पै न दीन्ह रघुनायक।

राक्षस-पत्नी मन्दोदरी के लिये भी उन की शिष्ट वाणी में देवि शब्द का प्रयोग रहेगा। रावण के चरित्र-वर्णन में भी वाक्पटुता और कूटनीतिज्ञता का समावेश कर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। आवेश में आकर शत्रु के लिये भी अनुचित शब्दों का प्रयोग कवि को अभीष्ट नहीं।

सीता के आदर्श चरित्र के प्रति श्रद्धा का भाव कवि ने सर्वत्र व्यक्त किया है। पति-सेवा के लिए सर्वस्व त्याग करनेवाली सीता को मार्ग की धूप तथा तपी धूल भी शीतल लग रही है—

घाम को राम समीप महाबल, सीतहिं लागत है अति सीतल।
मारग की रज तापित है अति, केशव सीतहिं सीतल लागति।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि केशव को कवि-हृदय नहीं था। उन में वह सहृदयता और भावुकता न थी, जो एक कवि में होनी चाहिए। उन की सहृदयता और भावुकता के दर्शन के लिए कविप्रिया तथा रसिकप्रिया का अवलोकन ही उचित होगा। संभवतः केशवदासजी रामचन्द्रिका में मर्यादा-पालन के कारण ही अपनी भावुकता और सहृदयता का परिचय न दे सके। उन्होंने इस प्रबन्ध काव्य की रचना अपनी वर्णन-प्रियता तथा संवाद-पटुता दिखाने के लिए ही की है; अतः उन के संवादों का अध्ययन ही उनके कवि-हृदय का साक्षी होगा। रामचन्द्रिका में भी अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ उन की सहृदयता और भावव्यंजकता देखी जा सकती है। विश्वामित्र के साथ राम-वन-गमन के समय दशरथ के हृदय का भाव इस छन्द में व्यक्त हुआ—

राम चलत नृप के युग लोचन, वारि भरित भए वारिद लोचन।
पायनि परि ऋषि के सजि मौनहिं, केशव उठि गए भीतर भौनहिं॥

महाराज दशरथ का मौन होकर भवन में चला जाना, किस प्रकार हृदय की व्यथा प्रकट कर रहा है, यह विचारणीय है। भरत-मिलन के अवसर पर तथा शोक-सतप्त सीता के चित्र प्रस्तुत करने में कवि ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया है।

केशवदासजी के प्रकृति चित्रण के प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कालिदास और भवभूति के समान प्रकृति चित्रों का ब्योरेवार वर्णन उपस्थित न कर, फलों, वृक्षों का नाम भर गिनाया है। इस दोष से उस समय का कोई भी कवि अछूता नही है। इस का कारण यह है कि एक तो प्रकृति-वर्णन की वह परम्परा समाप्त हो गयी थी, दूसरे केशव के हृदय में प्रकृति के प्रति प्रेम या आकर्षण न था; इसलिये प्रकृति के रूढ़ वर्णनों से ही उन्होंने सन्तोष कर लिया। सूर्योदय, वन-उपवन, वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन में भी कवि ने कल्पना का सहारा लिया है, जो परम्पराभुक्त

है। अलंकार-योजना के कारण-प्रकृति वर्णन में भी चमत्कारोत्पन्न की प्रवृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है ; परन्तु कहीं-कहीं रमणीय और उपयुक्त उपमानों का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

जैसे—जनकपुर में सूर्योदय-वर्णन में—

अरुण गात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ मय।

इस छप्पय में कापालिक काल के अतिरिक्त सभी उपमान रमणीय हैं।

रामचन्द्रिका में केशवदासजी को संवादों में अधिक सफलता मिली है। इन संवादों में पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि भावों की व्यंजना भी सुन्दर है। गर्व की उचित व्यंजना रावण की गर्वोक्तियों में ही देखने को मिलती है। उस में रावण के व्यक्तित्व का सहज ही आभास मिल जाता है—

केशव कोदण्ड विषदण्ड ऐसो खण्डै अब,
मेरे भुजदंडनि की बड़ी है बिडंबना।

में ऐसा जान पड़ता है, मानों धनुष को तोड़ देना रावण के लिये एक साधारण-सी बात है।

इसी प्रकार रावण-बाण-संवाद प्रसंग में रावण की उक्ति—

जानत सकल लोक लोकपाल, दिगपाल,
जानत न बाण बात मेरे बाहुबल की॥

में रावण का प्रचण्ड पराक्रम और शौर्य प्रकट होता है। इसी प्रकार रावण की दक्षता एवं उस की कूटनीति, स्वयंवर, सीतासंवाद, हनुमान और अंगद के संवादों में स्पष्टतया प्रकट होता है। अन्य संवादों में भी केशव की वाक्पटुता और संवादों द्वारा चरित्र को चित्रण कर देने की क्षमता दिखाई देती है। केशवदासजी के कटु आलोचक कृष्णशंकर शुक्ल ने भी उन के संवादों की प्रशंसा की है। जिन-जिन स्थानों पर केशवदासजी ने पात्रों को स्वयं बोलने का अवसर दिया है, वहां पात्रों में हम जीवन का पूर्ण स्पन्दन पाते हैं।

प्रवाह, रोचकता और प्रभावोत्पादन की दृष्टि से भी केशवदास के संवादों का महत्त्व है। इन में चरित्रगत विशेषताओं के उद्घाटन के साथ नाटकीयता का संयोग विशेष महत्त्वपूर्ण है। विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखने वाले प्रसंगों को समास-शैली में व्यक्त करने की पटुता इन संवादों में देखने को मिलती है। इन के द्वारा किसी भाव की व्यंजना कितने प्रभावपूर्ण ढंग से केशवदासजी कर देते हैं, इस का उदाहरण रावण के प्रतिहार के शब्दों में प्रकट हो जाता है—

पढ़ौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
न बोलु चंद मंद बुद्धि, इन्द्र की सभा नहीं॥

प्रतिहार भी रावण के समान देवों को भी अनुचर के समान समझता है।

राम-परशुराम संवाद में केशवदासजी ने अपनी अद्भुत रचना-क्षमता दिखलाई है। अन्य संवादों की भाँति यहाँ भी कवि ने पात्रगत मर्यादा तथा औचित्य को ध्यान में रखकर सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति केशव के लक्ष्मण कटूक्तियाँ कह कर मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। व्यावहारिकता और औचित्य-विचार से केशवदासजी का यह संवाद भी अत्यन्त सफल है। राम-परशुराम के संवाद में राम की गंभीरता, संयम, वृद्धों के प्रति श्रद्धा तथा संकोच, भाषा का संयम बड़े ही स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ज्यों ज्यों संवाद आगे बढ़ता है, क्रोध क्रमशः स्फुरित होता जाता है। क्रोध के साकार रूप परशुराम राम को अपने परशु के घाट उतारने की धमकी देते हैं—

राम तिहारे कण्ठ को श्रोनित पान को चाहे कुठार पियोई।

राम अत्यन्त विनम्रता से अपना अपराध जानना चाहते हैं; परन्तु क्रोधान्ध परशुराम पर इस का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वे राम के—"सो अपराध परो हम सों अब क्यों सुधरे तुमही तो कहो।" का उत्तर "बाहु है दोऊ कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहौ।" से देते हैं। इतना ही नहीं, वे राम के गुरु कौशिक विश्वामित्र के प्रति भी अनुचित शब्द का प्रयोग कर देते हैं। परशुराम का क्रोध अपनी चरम-सीमा पर पहुँच जाता है। विवश हो राम को भी क्रोध करना पड़ता है। राम भी यह कहने को बाध्य हो जाते हैं—

भगन कियो शिव धनुष साल तुमको अब सालों।
भृगुनन्द संभारु कुठार मैं कियो सरासन मुक्त सर॥

अपने कुठार पर गर्व करनेवाले परशुराम को कुठार सम्हालने की चुनौती तथा ललकार अत्यन्त स्वाभाविक और समयोचित है। इस उक्ति में राम के क्रोध की व्यंजना कितनी मार्मिक और स्वाभाविक है, यह दर्शनीय है। अन्य संवादों को केशवदासजी ने संस्कृत के हनुमन्नाटक, प्रसन्न राघवम् के आधार पर प्रस्तुत किया है; किन्तु यह संवाद मौलिक है। अन्य संवादों को भी केशवदासजी ने ऐसी सफाई तथा स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया है कि वे भी नवीन जान पड़ते हैं।

संवादों में रावण-अंगद-संवाद अपना पृथक् महत्त्व रखता है। यह संवाद भी गोसांईजी की अपेक्षा अधिक रोचक और सुन्दर है। अंगद ने रावण की सभा में जाकर राजदूतोचित मर्यादा तथा शिष्टता का पालन किया है। गोस्वामीजी ने राज-सभा की मर्यादा तथा रावण के प्रताप की उपेक्षा कर रावण के प्रति जो कटूक्तियाँ अंगद के द्वारा कहलाई हैं, वह राजकीय आचार-संहिता के सर्वथा विपरीत है। केशवदासजी ने मर्यादा के भीतर अंगद के मुख से आपाततः नम्र

बाणी कहलाई है; परन्तु यह गम्भीर और मर्म-भेदिनी है। रावण के प्रश्न का उत्तर प्रश्न के रूप देकर अंगद ने अपने रामदूतत्व का सम्यक् निर्वाह किया है। रावण के हनुमान के विषय में व्यंग्य सहित प्रश्न करने पर—

कौन है वह बाँधि कै हम देह पूंछ सबै दही ?

अंगद का यह व्यंग्य—

लंकजारि संहारि अक्ष गयौ सो बात वृथा कही।

नहले पर दहले का काम कर रहा है। रावण मर्माहत हो पुनः एक वाग्बाण फेंकता है। वह बालि के विषय में पूछ बैठता है—

है कहाँ वह बीर! अंगद, देवलोक बताइयो।

इस का उत्तर अंगद ने 'रघुनाथ बान विमान बैठि सिधारियौ' के व्यंग्य द्वारा देकर अपने वाग्वैदग्ध्य से रावण को हत तेज कर दिया। गूढ़ोत्तर अलंकार के सहारे कवि ने अपने संवादों में प्राण डाल दिया है। कभी-कभी एक ही पंक्ति में अनेक प्रश्नों और उनके उत्तरों को प्रस्तुत कर कवि ने अपने असाधारण प्रत्युत्पन्न मतित्व का परिचय दिया है।

कौन के सुत ? बालि को, वह कौन बालि ? न जानिये ?

ऐसे स्थलों पर भावानुकूल भाषा का प्रयोग अत्यन्त प्रशंसनीय है। स्वामी राम के प्रति अटल श्रद्धा रखनेवाले रामदूत अंगद ने तृष्णा और लोभ से अनासक्त होकर इस संवाद में जो वाक्पटुता दिखाई है, वह केशवदासजी की प्रतिभा की परिचायक है। इसी प्रकार लव-कुश के संवादों की मार्मिकता भी आलोचकों को मन्त्रमुग्ध कर देती है। संवादों की सजीवता और उत्कृष्टता बहुत अंशों तक रामचन्द्रिका के दोषों को क्षालित करने में समर्थ है, इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है।

महाकवि का दूसरा प्रबन्ध-काव्य वीरसिंहदेव-चरित है। यह एक वीर-काव्य है। रासो की शैली पर लिखा हुआ यह काव्य भी वीर-काव्यों में अपना पृथक् स्थान रखता है। इस रचना के द्वारा हिन्दी-साहित्य में एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया गया है, जो इसके पूर्व रासो ग्रन्थों में तथा इसके पश्चात् के वीर-काव्यों में नहीं दिखाई देता। वीरगाथा-कालीन वीर-चरितों में घटनाओं की अतिरंजना के कारण ऐतिहासिकता निष्प्राण सी हो गई है। घटनाओं के तोड़-मोड़ के कारण आज के इतिहासविदों को इन की प्रामाणिकता में सन्देह होने लगा है। शृंगार को जबर्दस्ती युद्ध का कारण बनाया गया है। वर्णन के आधिक्य के कारण कथानक का प्रवाह विघटित हो गया है। वीरसिंहदेव-चरित इन दोषों से रहित है। इस में ऐतिहासिकता की रक्षा की गई है। ऐतिहासिक वर्णन को यथार्थ, कथानक को निर्दोष तथा काव्योचित गुणों से परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

कथानक विशुद्ध ऐतिहासिक है; परन्तु कवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से मार्मिक स्थलों को अपनी प्रतिभा के सहारे काव्यमय बना दिया है। इस प्रबन्ध-काव्य में कथा का प्रवाह अविराम गति से अग्रसर होता है। यदि यह गुण रामचन्द्रिका में होता, तो निश्चित ही वह हिन्दी-साहित्य की अनूठी कृति होती।

कवि ने परवर्ती कवियों की भाँति इस में मनगढ़न्त कथाओं को स्थान नहीं दिया है। न तो नायक के यश-वर्णन में वह अतिरंजना आने दी है, जो वर्णन को हास्यास्पद बना देती है, न युद्ध-वर्णन के प्रसंग में ऐसे ध्वनि अनुकरणात्मक शब्दों की आवृत्ति ही है, जो रसपरिपाक में बाधा उत्पन्न करती है। इस कौशल के कारण यह ग्रन्थ अपने ढंग का अद्‌भुत है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस काव्य की रचना में कवि ने पृथ्वीराज रासो वाली संवाद-परम्परा को अपनाया है, जिससे कथानक में नाटकीय क्षिप्रता आ गई है।

रतन बावनी में महाराज इन्द्रजीतसिंह के ज्येष्ठ भ्राता रतनसिंह की वीरता का बावन छन्दों में वर्णन किया गया है। जिसमें वीररस का उचित परिपाक हुआ है। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में यह वीररस का अच्छा काव्य है। भूषण की शिवाबावनी, इसी के अनुकरण पर बनी हुई जान पड़ती है।

इस वीर-काव्य में षोडश वर्षीय राजकुमार रत्नसिंह की वीरता, सत्यनिष्ठा, आत्मोत्सर्ग और युद्ध-कौशल का वर्णन सफलतापूर्वक किया गया है।

कुमार कर्मनिष्ठा को प्राण से अधिक मानते हैं—

प्राण गये फिर-फिर मिलहि, पति न गये पति पाइये।

कुमार के इस कथन में कवि की आत्मा मानो स्वयं बोल उठती है।

धरम गये सब करम, करम गए पाप बसै तब।
पाप बसै नरकन परें, नरकन केशव को सहैं।

इस संवाद से महाकवि केशव की व्यक्तिगत मान्यताओं का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। कवि ने इसके द्वारा उस सुप्त भारतीय भावनाओं को जगाने का प्रयत्न किया है, जिस के जागरण पर राष्ट्र का जागरण निर्भर करता है।

जहाँगीर-जस-चन्द्रिका में जहाँगीर का यश-वर्णन है। जहाँगीर ओरछा में शारण पा चुका था। ओरछा नरेश के साथ उसकी मैत्री थी; अतः केशवदास ने उस को भी अपने काव्य का नायक बनाया; परन्तु इस में कवि हृदय का वह विस्तार और अनुराग, जो वीरसिंह देवचरित तथा रतनबावनी में पाया जाता है, देखने को नहीं मिलता।

रसिकप्रिया की रचना केशवदासजी ने महाराजा इन्द्रजीतसिंह की प्रेरणा से की।

ये भामह और दण्डी के समान अलंकारवादी परम्परा के थे। इस परम्परा में 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्' का सिद्धान्त ही गृहीत था। 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' का सहज सौन्दर्य इस परम्परा के कवियों को आकृष्ट करने में असमर्थ था; इसलिये इस महाकवि ने भी —

यदपि सुजाति सुलच्छनी, सुवरन, सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजई, कविता, बनिता, मित्त ॥

को ही स्वीकार किया। इनकी दृष्टि में जयदेव की भांति अलंकार काव्य का शोभादायक साधन नहीं, अग्नि के उष्णत्व की भांति आत्मधर्म है।

केशवदासजी के समान संस्कृत विद्वान् से रसिकप्रिया में जिस शास्त्रीय रस विवेचना की आशा की जा सकती थी, वह इस में नहीं पाई जाती। भामह और दण्डी के समक्ष आनन्दवर्द्धन और मम्मट का वह प्रौढ़ रस-विवेचन नहीं था। उन के सामने भरत का सूत्रात्मक नाट्यशास्त्र ही था, जिस को वे आचार्य अपनी मान्यता के अनुकूल बनाने में स्वतन्त्र थे; परन्तु केशवदास के सामने यह प्रश्न नहीं था। उन के सामने तो अलंकारवाद की खण्डनात्मक पद्धति के साथ रसवाद का प्रौढ़ विवेचन था। फिर भी इन्होंने अलंकारवादी परम्परा को अपना कर आलोचकों को आलोचना करने का अवसर दिया। इस में इन की व्यक्तिगत रुचि या परिस्थिति ही कारण मानी जा सकती है; क्यों कि उस समय कला के क्षेत्र में सर्वत्र फारसी अलंकरण शैली का ही प्राधान्य था। भारतीय कला की भावमयी व्यापकता तथा ओज का सर्वत्र अभाव था।

रसिकप्रिया में केशव का आचार्य तथा कवि का सम्मिलित रूप देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ के सोलह प्रकाशों में तेरह प्रकाश तक शृंगार का ही वर्णन है। नायक और नायिका शृंगार के आलंबन और आश्रय हैं; अतः इन का वर्णन भी इन प्रकाशों में यथेष्ठ हुआ है। चौदहवें में शृंगारेतर रसों का वर्णन पंद्रहवें में कैशिकी आदि वृत्तियों का वर्णन तथा सोलहवें में अनरस नाम से पांच रस दोषों का वर्णन है।

इस ग्रन्थ में अन्याचार्यों की भांति केशवदास ने भी शृंगार का रसराजत्व स्वीकार किया है; किन्तु रसराज के सिंहासन पर शृंगार को बैठाने की विधि अद्भुत है। केशव ने रूप गोस्वामी की भांति कृष्ण के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है और शृंगार को रसराज इसलिये मानां है कि उस में अन्य रस अन्तर्भूत हो जाते

हैं ; किन्तु 'सब रस में ब्रजराज नित' की स्वीकृति ने अन्य रसों के उदाहरण को असंगत बना डाला है।

इसी प्रकार शान्त रस के उदाहरण में भी निर्वेद की प्रतीति न होकर शृंगार की ही प्रतीति होती है।

तो रदनच्छद को रसरंचक, चालि गये करिके हूँ ढिठाई।
ता दिन तें उन राखी उठाय, समेत सुधा वसुधा की मिठाई।।

यदि केशव की श्रद्धा अन्य कवियों की भांति ब्रजराज के प्रति शृंगार-वर्णन तक ही सीमित रहती, अन्य रसों के आलम्बन-क्षेत्र में उन को न घसीटते, तो संभवतः अन्य रसों का वर्णन भी रुचिकर हो जाता।

रसिकप्रिया उन की कलात्मक रुचि का परिचायक ग्रन्थ है। उपयोगिता की दृष्टि से न देख कर यदि लालित्य की दृष्टि से देखा जाय, तो कला के विविध चित्रों के मार्मिक रूप देखने को मिलेंगे। नायिकाओं के जो विविध मनोवैज्ञानिक, भावमय चित्र देखने को मिलते हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। जान पड़ता है कि केशवदास ने अपने हृदय की सारी सरसता इन रूपों में भर दी है।

नारी की सुकुमारता, अंगभंगिमा और अवस्थाजनित कान्ति के मनोहर शब्द-चित्र कवि-हृदय की भावुक तरलता को व्यक्त करते हैं। संभवतः इसीलिए कला-पारखियों ने रसिकप्रिया के अनेक कलात्मक उदाहरणों को कांगड़ा-शैली के चित्रों में अमर बना दिया है, इस दृष्टि से रसिकप्रिया कवि की प्रौढ़ तथा सरस रचना है। कविप्रिया का निर्माण कवि ने कविकर्म की शिक्षा देने के लिए किया है।

कवियों की यह प्रिया षोडश शृंगार भूषिता बने; इसलिये इस को षोडश प्रभावों से सज्जित किया गया है। कवि-शिक्षा ही उन का उद्देश्य था; अतः इस ग्रन्थ में काव्यांगों की मार्मिक मीमांसा का प्रयास नहीं पाया जाता है। ध्वनि, रस अलंकार, शब्दशक्ति, छन्द, गुणवृत्ति आदि का जैसा उपयोग इन के काव्यों में देखा जाता है, वैसी विवेचना इन के रीति ग्रन्थों में नहीं, इस ग्रन्थ में काव्य-दोष कवि-भेद, वर्णन के प्रकार, सामान्यालंकारों और विशिष्टालंकारों का वर्णन है। नखशिख, चित्रालंकार आदि के वर्णन इस में हैं। दोष तथा अलंकार दण्डी के काव्यादर्श, केशव के अलंकार शेखर तथा अमर के काव्य कल्पलतावृत्ति से लिये गये हैं। कविप्रिया में अलंकारों का वर्गीकरण भी किया गया है।

विज्ञानगीता प्रबोधचन्द्रोदय के समान प्रतीकात्मक काव्य है। यह उन की वृद्धावस्था के वैराग्य का प्रमाण है। इस में महामोह और विवेक के युद्ध, मुक्ति प्राप्ति के लिए आत्मज्ञान की अनिवार्यता, आत्मा और परमात्मा की एकता का अद्वैत-भावना के अनुसार वर्णन किया गया है।

कवि की समग्र रचनाओं पर विहंगम दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि केशवदासजी अपने समय के विविध काव्यांग निरूपक आचार्यों की श्रेणी में सम्मानित व्यक्ति थे। इन की रसिकप्रिया का रसिक समाज में अत्यधिक सम्मान था। इन की रचनाओं से तत्कालीन कलाकारों को अपूर्व मनस्तृप्ति होती थी। रामचन्द्रिका के सजीव संवादों ने जनता को प्रभावित किया। संस्कृत-ग्रन्थों को अपनी रचना का आधार बनाकर उन का रसास्वाद हिन्दी-भाषियों को कराया। यदि तुलसी और सूर की भांति अपने अहं के विलय में समर्थ होते, तो इन की रचना में कालिदास तथा बाण का अपूर्व समन्वय होता। त्रुटियों के होते हुए भी इन की रचना का समादर इन के जीवन-काल में ही हो गया, इस से सिद्ध होता है कि इन की रचनाएं लोकरुचि को तृप्ति देती थीं।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जिस महाकवि ने अपनी रचना से राष्ट्र-भाषा हिन्दी के वाङ्मय को समृद्ध बनाने का जीवन-भर प्रयत्न किया, उस कवि के स्मारक बनाने की ओर जनता तथा जनता की सरकार ने अब तक उचित ध्यान नहीं दिया। अन्य देशों में राष्ट्र के प्राचीन कवियों के जन्मस्थान को तीर्थ के समान पवित्र मान कर उन की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया जाता है; किन्तु राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा के गौरव महाकवि केशवदास के प्रति शासन ने अपनी सम्मान-भावना का कोई परिचय नहीं दिया। इंगलैंड में आज भी शेक्सपियर की निजी वस्तुएँ, शेली के केश, वर्ड्सवर्थ की मेज तथा डिकन्स की दैनिक सामग्रियाँ संगृहीत हैं और राष्ट्रीय निधि मानी जाती हैं। साहित्यकारों के ये पुण्यस्थल तीर्थस्थान हो गये हैं। इस संदर्भ में मैं मध्यप्रदेश की शासन का ध्यान आचार्य केशवदास के स्मारक बनाने की आवश्यकता पर आकृष्ट करना चाहता हूँ।

हमारे नये मध्यप्रदेश की साहित्यिक और कलात्मक परम्परा सारे भारत में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। सांची का स्तूप, खजुराहो के मंदिर, तानसेन की संगीत-प्रणाली तथा केशवदास की काव्य-कला हमारे प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन को मुखरित किये है। इस सुन्दर ताने-बाने को काल के आक्षेप से सुरक्षित रखना, हम सब का परम कर्तव्य है।

विदेशों में हिन्दी-प्रचार

बर्मा-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, रंगून

उद्‌घाटन-भाषण

२६ मई, १९५६

देवियो और सज्जनो !

इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ कि इस ऐतिहासिक और परम पवित्र अवसर पर होनेवाले इस शुभ अनुष्ठान में अपना योगदान करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। आप अतीत और भविष्य को मिलाने के लिए सुन्दर और भव्य सेतु का निर्माण करने का पग उठा रहे हैं। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व, भारत निवासियों और इस सुन्दर रमणीक ब्रह्म देश के निवासियों में घनिष्ट सम्पर्क था और वह शताब्दियों तक बना रहा। सहस्रों वर्षों तक उन में विचारों और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता रहा। इस घनिष्ठ संबंध के परिणाम-स्वरूप हमारे दोनों राष्ट्रों के बीच परस्पर बन्धुता के अत्यन्त दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गये और दोनों ही राष्ट्र एक दूसरे के जीवन को उर्वर और समृद्ध बनाते रहे। इन अतीत के सम्बन्धों में सब से महत्त्वपूर्ण सर्वाधिक अनुप्राणित करनेवाली बात भगवान् बुद्ध का संदेश था। उन्होंने समग्र मानव-जाति के समक्ष पंचशील का उन्नत आदर्श रखा और वह इस महान् ब्रह्म देश के सामाजिक और धार्मिक जीवन का मुख्य आधार बन गया। हमारे दोनों राष्ट्रों का महादुर्भाग्य था कि हम पिछली शताब्दी में विदेशी जाति के चंगुल में पड़ गये। परिणाम यह हुआ कि हमारे दोनों राष्ट्रों के बीच जो मधुर और अमृतमय सम्बन्ध था, वह लगभग टूट-सा गया ; किन्तु दुःख और पराधीनता के दिन अब दूर चले गये हैं और मुझे पूरा-पूरा भरोसा है कि हमारे दोनों राष्ट्रों के बीच भविष्य में पंचशील के आधार पर अत्यन्त निकट और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहेंगे।

जिस हिन्दी-संस्था को आपने इस ब्रह्मदेश में जन्म दिया है, मुझे विश्वास है कि इन सम्बन्धों का विकास और दृढ़ीकरण इस का प्रमुख भाग होगा। यदि मैं यह कहूँ तो अनुचित न होगा कि यह संस्था हमारे दोनों देशों के बीच अत्यन्त भव्य और सुदृढ़ सेतु बन जायगी। साथ ही हमारे दोनों देशों के पिछले और अगले इतिहास की टूटी शृंखला को जोड़ने में भी यह पूर्णरूपेण सहायक होगी। मैं यह बात इसलिए कहता हूँ ; क्यों कि मेरा यह विश्वास है कि भाषा न केवल मानवों के हृदयों को

जोड़ने वाला सेतु ही होती है; वरन् वह जातीय इतिहास के विभिन्न युगों के बीच का प्रधान सेतु भी होती है। प्रत्येक मानव-जाति समय-समय पर जो भी अनुभूति करती है, राग, ज्ञान और कर्म के विभिन्न क्षेत्रों में जो भी अनोखी मणियां खोज-कर पा जाती है, उन सब को वह भाषा के अथाह कोश में सहेज कर रख लेती है। इस प्रकार भाषा ऐसा बैंक है, जिस में प्रत्येक पीढ़ी अपनी बौद्धिक और रागात्मक उपार्जन को जमा कराती है और जिस में से प्रत्येक पीढ़ी अपनी बौद्धिक और रागात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक ज्ञान और आनन्द धन निकाल लेती है। दूसरे शब्दों में भाषा ऐसा सेतु है, जो ज्ञान और राग के क्षेत्र में पिछली पीढ़ियों को अगली पीढ़ियों से जोड़े हुए है।

आपने ऐसे ही अक्षय कोष और ऐसे ही सुदृढ़ और प्रशस्त सेतु का निर्माण किया है। इतने पुनीत कार्य में आप पूर्णतः सफलता प्राप्त करें और हमारे दोनों राष्ट्रों के हृदयों को एक करके अपने को कृतार्थ कर लें, यही मेरी उत्कट कामना है।

इस महान् कार्य में जिस दूरदर्शिता, जिस कौशल, जिस लगन, जिस उद्यम और जिस सहयोग और सेवा-भावना की आवश्यकता पड़ती है, वह आप में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है और यदि इन बातों के महत्त्व के बारे में मैं आप से आज कुछ कहूँ, तो वह मेरी कोरी धृष्टता होगी; किन्तु हिन्दी का पुराना सेवक और भक्त होने के नाते मैं इस महाप्रयास के एक पहलू के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार आप की अनुमति से आप के सामने रख देना चाहता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि हमारे दोनों देशों के बीच इस मानसिक सेतु के निर्माण में आपको भारी सहायता हिन्दी-भाषा की निजी आत्मा से मिलेगी और मिलनी चाहिए। भाषा केवल ध्वनित या अंकित संकेतों की लड़ी-मात्र नहीं होती। दूसरे शब्दों में भाषा के सच्चे प्रतीक और प्रतिनिधि कोश नहीं होते। चाहे कोई भाषा कितनी ही अविकसित और असमृद्ध क्यों न हो, उस में उस जाति की चेतना (वासना और वृद्धि) धड़कती रहती है। यदि मैं यह कहूँ कि ध्वनित या अंकित संकेत तो भाषा के बाह्य अवयव या देह होते हैं और जातीय चेतना उस की आत्मा तो मैं समझता हूँ कि मैं कुछ अनौचित्य का दोषी न होऊँगा। केवल इन संकेतों को और इन के परस्पर सम्बन्धों का विनिमय करनेवाले व्याकरण-नियमों को ही भाषा का पूर्ण स्वरूप मान लेना वैसी ही भ्रमपूर्ण बात होगी, जैसे यह मान लेना कि व्यक्ति देह के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि देह के समान ही शब्द-संकेतों का भी अपना महत्त्व है; किन्तु साथ ही यह स्पष्ट है कि शब्द-संकेतों का जन्म स्वयं अपने ही हेतु न होकर मानवी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए ही हुआ। इन शब्द-संकेतों को मूल्य, स्वरूप और गुण प्रदान करनेवाली यह मानवी चेतना ही है; अतः यह स्पष्ट है कि भाषा के शब्द

भण्डार और व्याकरण को जीवन और अर्थ प्रदान करनेवाली उस जाति की चेतना होती है, जो जाति उस भाषा को बोलती और उस का प्रयोग करती है।

यही बात हिन्दी के सम्बन्ध में भी लागू है। हिन्दी की अपनी निजी आत्मा है और यदि आप उस आत्मा को पहचान कर, उस में तल्लीन हो कर, अपने पथ पर अग्रसर होंगे, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि आप को अपनी उद्देश्य-सिद्धि में शीघ्र सफलता न मिले।

हिन्दी की यह आत्मा क्या है ? अपने जन्म से ही मेरा सम्पर्क हिन्दी से रहा है। मैं इसी की गोद में पला हूँ और बड़ा हुआ हूँ। यदि मैं यह कहूँ कि हिन्दी मेरी वह माता रही है, जिसने मेरी आत्मा को पोसा है, उस का लालन-पालन किया है, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। मैं यह मानता हूँ कि मेरे आदर्शों के निर्माण में और मेरे जीवन की दिशा के निश्चय में हिन्दी-माता का ही प्रधान भाग रहा है ; अतः हिन्दी-गंगा में अपनी जीवन-तरी के सतत रहने से मुझे इस बात का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है कि मैं उस की वरदायिनी आत्मा को जान सकूं, पहचान सकूं। अपनी माता के सच्चे स्वरूप को सन्तान ही तो पहचान पाती है। यह ठीक है कि माता होने के नाते हिन्दी के प्रति मेरी असीम ममता और स्नेह है ; किन्तु मुझे यह विश्वास है कि इस ममत्व के कारण मैं मोह के वशीभूत नहीं हो गया हूँ और उस की आत्मा के बारे में जो कुछ मैं आप से कहूँगा, उस से आप लोग और इतिहास तथा संस्कृत का प्रत्येक निष्पक्ष विद्यार्थी और दृष्टा भी बहुत कुछ सहमत होगा।

हिन्दी की आत्मा का चित्रण करने से पूर्व मैं आप के समक्ष मानव-इतिहास की दो मौलिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कुछ शब्द इसलिए कह देना चाहता हूँ ; क्यों कि हिन्दी की आत्मा को सही तौर पर हृदयंगम करने के लिए उन को ध्यान में रखना आवश्यक है। पहली प्रवृत्ति तो वह है जिसका मूलमंत्र यह कथन है कि "विश्व में निज का अहं ही सब कुछ है।" इस प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करनेवाले व्यक्ति, समूह और जातियां यह मानती हैं कि उन का निजी और भौतिक सुख तथा उन की निजी रागात्मक वासना की तृप्ति ही सब कुछ है और जिन बातों से उन की साधना हो सकती है, वही बातें उचित और आचरणीय हैं। "यदि दूसरे व्यक्ति को धोखे में डालकर उसके शारीरिक, मानसिक या साम्पत्तिक साधनों से मैं अपने जीवन को सम्पन्न कर सकता हूँ, अपने घर को भर सकता हूँ, तो वही बात मेरा परम धर्म है, वही मेरा कर्त्तव्य है, वही मेरे लिए युक्तियुक्त मार्ग है। भले ही दूसरे का सम्पूर्णतः नाश हो जाये ; भले ही उस की हड्डियाँ तक चकनाचूर हो जायें ; पर यदि उस की अस्थियों पर मेरे महल का निर्माण होता है, तो मुझे उसके मिटने का तनिक भी विचार नहीं करना चाहिए, समस्त विश्व मेरी ही वासनाओं की पूर्ति के लिये बना है, मेरी ही

सुविधा के लिए सक्रिय और गतिमान है। उसके अस्तित्व की सार्थकता केवल और केवल-मात्र मेरा ही सुख, मेरी ही वासनात्मक संतुष्टि है। अहं को ही सब कुछ मानने वाली इस प्रवृत्ति को हम व्यक्तिवाद, फासिज्म, राष्ट्रवाद, सामन्तवाद और पूंजीवाद पाते हैं। शस्त्रास्त्र से अन्य मनुष्यों, अन्य जातियों को विजित करने की कामना के आधारतल में यही प्रवृत्ति गतिमान रहती है। संसार के महान् हिंस्र, विजेताओं के हृदय को भी यही प्रवृत्ति संचालित कर रही थी; क्यों कि अपनी क्षणिक इच्छा की पूर्ति के लिये उन्होंने सजीव प्राणियों के रक्त के सागर बहा दिये। बर्बर युगों में तो यह प्रवृत्ति जीवन को छाये हुए थी ही; किन्तु आज के तथाकथित सभ्य जगत् में भी इस प्रवृत्ति का प्राबल्य अनेक देशों में दिखाई पड़ता है। उपनिवेशवाद को बनाये रखने के प्रयास इसी प्रवृत्ति के कारण ही तो चल रहे हैं। निर्बल वर्गों और राष्ट्रों के आधुनिक युग के शोषण के तल में भी तो यही प्रवृत्ति स्पन्दित हो रही है।

जैसा मैं कह चुका हूँ, मानव-इतिहास के चक्र को गति प्रदान करने में इस प्रवृत्ति का पर्याप्त भाग रहा है; अतः इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं कि इसके फलस्वरूप मानव-जीवन के किन्हीं क्षेत्रों में नव सृजन भी हुआ है। किन्तु, इस के परिणामों का यदि सही-सही मूल्यांकन किया जाये, तो यह पता चलेगा कि इसने मानव की आँखें अश्रुओं से भर दी हैं, इसने मानव हृदय को वेदना से ओत-प्रोत कर दिया है, इसने पृथ्वी तल को रक्त-रंजित और कंकालमय बना दिया है। इसने मानव को देवत्व के दर्जे से गिराकर नारकीय कीट बना दिया है। यह मानव जीवन का ऐसा कर्कट (कैन्सर) है, जिस पर यदि शीघ्र ही काबू न पाया गया, तो वह उसे सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। यह कहना तो सर्वथा अनुचित होगा कि कोई समग्र जाति इसी प्रवृत्ति से सर्वथा संचालित रही है, या आज भी है। जीवन इतना सरल नहीं है कि उसे किसी एक ही कटघरे में खड़ा कर दिया जाये या बन्द कर दिया जाये; किन्तु इस बात के होते हुए भी यह तो कहा ही जा सकता है कि किन्हीं जातियों में यह प्रवृत्ति प्रधान रही है। संभव है कि उस जाति के अपने आन्तरिक जीवन में, उसके विभिन्न वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धोंमें इस प्रवृत्ति की प्रबलता बहुत न रही हो; किन्तु अन्य जातियों से जहां तक उस जाति के सम्बन्धका सवाल था, वहां तक तो इस प्रवृत्ति की प्रबलता और प्रधानता में किसी शंका के लिये गुंजाइश हो ही नहीं सकती। "मेरा ही देश चाहे वह औचित्य से अनुप्राणित हो या अनौचित्य से" का सिद्धान्त माननेवाले राष्ट्रवादी राज्य आज भी दिखाई देते हैं। भाषा और जातीय जीवन के घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण यह स्वाभाविक है कि इन राष्ट्रों की भाषा की आत्मा यही अहंप्रधान जातीय चेतना हो। संसार की ऐसी कुछ प्रमुख भाषाएँ हैं जिन में यही अहंप्रधान

चेतना स्पन्दित हो रही है। इन भाषाओं की गोद में पलनेवाले बालक भी उसी अहं-प्रधान चेतना से ओतप्रोत हो जाते हैं।

किन्तु एक दूसरी प्रवृत्ति भी है, जिस ने मानव-इतिहास के स्वरूप और दिशा का निर्धारण किया है। यह प्रवृत्ति वह है, जिसके मूर्तिमान् प्रतीक भगवान् बुद्ध थे। प्राणिमात्र के प्रति स्नेह और अनुकम्पा, प्राणिमात्र के सुख में अपना सुख और प्राणिमात्र की सार्थकता में अपनी सार्थकता, यही इस प्रवृत्ति के आधारभूत तत्त्व हैं। इस का मूलमंत्र है "वसुधैव कुटुम्बकम्।" यह प्रवृत्ति मातृत्व का आधार है, यह प्रवृत्ति सृजन का आधार है, यह प्रवृत्ति सहयोग और समाज का आधार है। यह प्रवृत्ति मनुष्य को कोरे व्यक्तिवाद, निरंकुश सामन्तवाद, पूंजीवाद, हिंस्र साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से विमुख करके महान् अशोक की धम्म विजय की ओर ले जाती है और व्यक्ति को जातियों को, और राष्ट्रों को यह पाठ पढ़ाती है कि व्यक्ति, जाति और राष्ट्र की चरम सार्थकता सर्वजन हिताय आत्मोत्सर्ग में है। अपनी नैसर्गिक प्रतिभा और अपने सम्पत्ति-साधन जन-जीवन को सुन्दर और परिपूर्ण बनाने के लिए लगा देने में है। इसी सत्य को पहचानकर महान् अशोक ने आज से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व कल्याण राज्य की स्थापना का महा प्रयास प्रारंभ किया था। देश-देश को मृत्यु और दासता के दूत न भेज कर आत्मोत्सर्ग के इस संदेश को वहन करने वाले धर्मदूत भेजे थे और इतिहास में प्रथम बार युद्ध के प्रतिषेध की अपूर्व घोषणा की थी। इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अनेक व्यक्तियों ने जन-जीवन से अज्ञान, असमानता, शोषण सर्वथा मिटा देने के लिए अपने जीवन की आहुति दे दी थी। यह प्रवृत्ति व्यक्तियों, वर्गों, और राष्ट्रों के बीच सतत परस्पर स्नेह और सद्बुद्धि के भव्य सेतुओं का निर्माण करती रहती है। मानवों के हृदयों को स्नेह की रज्जु से नव-समाज के ताने बाने में बुनती रहती है। यह दुखियों के अश्रुओं को पोंछती है, वस्त्रहीनों के तन को ढकती है, रुग्णों की निरन्तर परिचर्या करती है और दुखी जनों के मन को शान्ति और सांत्वना प्रदान करती है। सच तो यह है कि यह मानव को अपने शरीर की कैद से मुक्त कर देवत्व प्रदान करती है।

किन्हीं कारणों से क्यों न हो, इस प्रवृत्ति की अनुभूति और दर्शन अत्यन्त प्राचीन काल में एशिया के कुछ महान् देशों के मनीषियों को हो गया था और उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों द्वारा इसे जन-साधारण के समक्ष रखा था। इसी सत्य की पहचान के लिये जाने के कारण शिक्षक और विचारक का दर्जा शासक और सैनिक से कहीं ऊंचा ठहराया गया था। भारत के मनीषियों ने भी इस सत्य को पहचाना था। और इसे ही जीवन का चरम आदर्श ठहराया था। अतः स्वभावतः एशिया के अन्य महान् देशों के समान ही भारत के दर्शन और साहित्य में इस प्रवृत्ति का प्राधान्य दृष्टिगोचर

होता है। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व संस्कृत, पाली और प्राकृत साहित्य में शिबि और श्येन की कथा का प्रमुख स्थान हो गया था। इसी प्रकार दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा भी सहस्रों वर्ष पूर्व भारतीय विचारधारा का अभिन्न अंग बन गई थी। दूसरे शब्दों में भारतीय चेतना का आधार यही "विश्व कुटुम्बकं" का आदर्श रहा है और स्वभावतः यह भारतीय साहित्य में ध्वनित और प्रतिध्वनित होता रहा है। हिन्दी भाषा की आत्मा भी इन्हीं आदर्शों व तत्त्वों से निर्मित हुई है। आप सब यह जानते हैं कि हिन्दी भाषा संस्कृत और प्राकृत की पुत्री है और उसे अपनी मातृ परम्परा में वे सब प्रवृत्तियां और गुण प्राप्त हुए हैं, जिन के कारण संस्कृत और प्राकृत साहित्य इतने उत्कृष्ट समझे जाते हैं। हिन्दी का भण्डार पाली से भी पर्याप्त समृद्ध हुआ है; अतः यह कहना अनुचित न होगा कि हिन्दी की आत्मा के गठन में संस्कृत, पाली और प्राकृत तीनों के ही सूत्र बुने हुए हैं। स्वभावतः हिन्दी की आत्मा के अन्तस्थल में यही आत्मोत्सर्ग, यही सेवा, यही सहयोग का आदर्श स्पन्दित हो रहा है। इस सम्बन्ध में मैं आप का ध्यान इस ओर भी अकर्षित कर देता हूँ कि अपने जन्म से ही हिन्दी ने न तो अपने द्वार और न अपने गवाक्ष बाह्य वायु और प्रकाश के लिये कभी बन्द किये और न आज ही वह अपने चारों ओर कोई अभेद्य घेरा डाले बैठी है। उस का वर्तमान स्वरूप कई बोलियों में समन्वय के कारण बना है, उस में खड़ी की दृढ़ता, ब्रज की माधुरी, अवधी का लावण्य, भोजपुरी की गरिमा, सभी कुछ बिंध गया है, एकीकृत हो गया है। उसमें आर्य, शक, तुर्क, मुगल, शेख, सभी की देन भरी है। न तो उस ने धर्म के नाम पर और न उसने संकुचित राष्ट्रीयता के नाम पर अपने द्वार कभी बन्द किये और न वह कभी बन्द कर सकती है। जिसके हृदय में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श प्रतिक्षण स्पन्दित हो रहा हो, भला वह किसी प्रकार की कृत्रिम दीवारें अपने चारों ओर कभी खड़ी कर सकती है? साथ ही यह भी स्मरण रखने की बात है कि हिन्दी का जन्म जन-जीवन से हुआ है, जनता ही ने उसे पाला-पोसा है, जनता ही उस का आसरा रही है और आसरा रहेगी। हिन्दी के जन्म के कुछ ही समय पश्चात् तो भारतीय राजतंत्र ऐसे लोगों के हाथ में चला गया था, जो भारत भूमि के वासी न थे, भारतीय संस्कृत गंगा से पोषित न थे, भारतीय ऐतिहासिक और सामाजिक परम्परा के अंग न थे; अतः राज-दरबार में हिन्दी का स्थान न तो रहा और न रह सकता था। वह तो कृषक और श्रमिक की कुटिया में ही बसती रही और वहीं से जीवन शक्ति पाती रही; अतः जन-जीवन की गोद में पलनेवाली, जन-माता के स्तन से जीवन पानेवाली हिन्दी भला कभी जन-विमुख हो सकती है? सहस्राब्दियों से वह साधारण जनों के हृदयों को एकता में गूंथने वाली, वायु से भी अधिक कोमल और इस्पात से भी अधिक सुदृढ़ डोर है। वह जन-जीवन

का सहारा रही है, सान्त्वना रही है, बल रही है, प्रेरणा रही है। जन जीवन से हिन्दी के इस अक्षुण्ण सम्बन्ध को भले ही विदेशों के वाइलइल्म या युनिवर्सिटियों की सांस्कृतिक संतान समझने-पहचानने में असमर्थ रहे, यह रहेगा तो अकाट्य ऐतिहासिक सत्य। क्या इस बात से कोई इन्कार कर सकता है कि जन-जीवन के आधार आज भी कबीर, तुलसी, सूर और मीरा हैं? क्या इस सत्य के प्रति कोई आंख मोड़ सकता है कि भारतीय जन-जीवन में शान्ति, स्नेह और सहयोग का प्रमुख आधार तुलसी की अमर वाणी है? मैं जानता हूँ कि 'अहं सर्वोपरि' के आदर्श के उपासक तथा पुजारी और तथाकथित आधुनिकता; किन्तु वास्तव में संकीर्ण व्यक्तिवाद राष्ट्रवाद या भोगविलासवाद के उपासकों एवं पुजारियों को जन-जीवन में कबीर और तुलसी की यह प्रभुता बहुत खली है। साथ ही उन में से अनेक यह समझते हैं कि हिन्दी तो भूतोन्मुखी है और इसलिए प्रतिक्रियावाद की पोषक है; किन्तु जैसा मैं कह चुका हूँ कि इन भोगवादियों और व्यक्तिवादियों के विचारों तथा कार्यों से मानव-जीवन का भला नही होना है। क्या यह अब स्पष्ट नहीं हो चुका है कि "अहं सर्वोपरि" वाद का फल विनाशकारी युद्ध और रक्त का सागर होता है? आज जीवन के जिस कगार पर मानव खड़ा है, वह ऐसा स्थल है जहां "अहं सर्वोपरि" के आदर्श पर आचरण करने से उसके बीजनाश का पूरा-पूरा खतरा है। आज तो उसे यह सत्य पहचानना है और शीघ्रातिशीघ्र पहचानना है कि आगे के मार्ग का द्वार केवल "वसुधैव कुटुम्बकम्" की कुंजी से ही खुल सकता है। मेरा यह दावा है कि हिन्दी की आत्मा उसी आदर्श से बनी है; इसलिये मानव की भावी प्रगति में हिन्दी का प्रमुख स्थान होना है और होगा। हिन्दी जन-हृदय से जन्मी है, उस में जन-हृदय स्पन्दित हो रहा है, उस में भारत के मनीषियों और भक्तों की वाणी मुखरित है। जो लोग हिन्दी जानते नहीं, जो संभवतः हिन्दी की प्राथमिक परीक्षा में भी उत्तीर्ण नही हो सकते, बहुधा ऐसे लोग सगर्व कहते हैं कि हिन्दी भाषा तो अभी कोरी अबोध बालिका है और वह आधुनिक जीवन के संघर्ष एवं ज्ञान का भार संभालने में असमर्थ है। यदि इन लोगों ने हिन्दी का क, ख, ग भी पढ़ा होता, तो संभवतः इन के मुख से यह बात शोभा देती; किन्तु वर्तमान अवस्था में तो यह उनकी धृष्टता और अज्ञान की ही परिचायक है। मेरा तो यह विनीत निवेदन है कि भले ही हिन्दी में वर्तमान युग के नृशंस औद्योगिक तथा शोषणवाद के वहन करने की रुचि न हो, उस में वह शक्ति और वह प्रेरणा अवश्य भरी है, जो मानव-जीवन को ज्योतिर्मय एवं आनन्दमय करने के लिये और मानवों और राष्ट्रों को एक सूत्र में पिरोने के लिये आवश्यक होती है। जैसा मैं कह चुका हूँ, भाषा का महत्त्व उसके शब्द-संकेतों पर इतना निर्भर नहीं करता, जितना उस की आत्मा

पर। शब्द-संकेत तो भौतिक वस्तुओं के समान नित्य प्रति गढ़े जा सकते हैं; किन्तु भाषा की आत्मा एक दिन में, एक वर्ष में या एक शताब्दी में भी नहीं गढ़ी जा सकती। हिन्दी की आत्मा स्वस्थ, निर्मल और सक्षम है; अतः वह मानव-जीवन के भार को वहन करने में और मानव को अपने उद्देश्य तक ले जाने में पूर्णरूपेण समर्थ है।

भला जिस भाषा में राम और कृष्ण की अमर गाथाएँ हों, वह असमर्थ भी कैसे हो सकती है। प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न भोगवाद और व्यक्तिवाद के उपासक भले ही राम, कृष्ण तथा भारत के अन्य मनीषियों के विचारों और वाणी का सही मूल्यांकन करने एवं उन के प्रति उपयुक्त आदर और श्रद्धा प्रकट करने में अपने अहंकार के कारण असमर्थ हों; किन्तु यह बात तो स्वयं विदित है कि जन-जीवन के सुदृढ़ आधार उन्हीं की गाथाएँ हैं। शिवि और श्येन का उपाख्यान भारत के ग्रामों और जनपदों में प्रतिध्वनित होता है। हरिश्चन्द्र का अपूर्व त्याग और निस्पृहता आज भी घर-घर में नीति और सदाशय का आधार बनी हुई है। दधीचि का आत्मबलिदान आज भी मानवों को सर्वजन-हिताय अपनी बलि देने का सबक सिखाता है और कृष्ण का निष्काम कर्मयोग लोगों को कर्तव्य मार्ग पर लगाये हुए हैं। भगवान् बुद्ध का अहिंसा और अनुकम्पा का संदेश आज भी जन-जीवन को शान्तिपूर्ण तथा सहयोगपूर्ण बनाये हुए है। इन सब मनीषियों और महापुरुषों की वाणी आज हिन्दी में ध्वनित और प्रतिध्वनित हो रही है। इतना ही क्यों? भारत के राष्ट्रपिता और वर्तमान युग के अहिंसा-दूत महात्मा गांधी ने भी तो इसे ही अपनाया और इसके प्रसार के लिये अथक परिश्रम किया। वे तो सच्चे जनसेवक थे; अतः यह हो ही कैसे सकता था कि जन-जीवन के आश्रय जनवाणी के प्रति वे विमुख या उदासीन रहें। उन्होंने हिन्दी की आत्मा को जाना था, पहचाना था और उन्हें यह विश्वास था कि यदि भारत का संदेश हमें जगत् में पहुंचाना है, तो हमें भारत की इस जनवाणी को अपने देश में और अपने वैदेशिक सम्बन्धों में अपनाना है। वे यह भी जानते थे कि अन्य देशों से यदि हम अंग्रेजी के माध्यम द्वारा सम्बन्ध रखेंगे, तो न विदेशी भारत का आदर करेंगे और न उसके ऐतिहासिक संदेश और अनुभूति को समझ पायेंगे। वैसी अवस्था में वे अधिकाधिक उन्हीं भावनाओं, उन्हीं विचारों, उन्हीं तौर-तरीकों को जान पायेंगे, जो कि उन भारत में बसने वाली विदेशियों की अपनी सांस्कृतिक संतान के हैं। आपने जो कार्य प्रारम्भ किया है, वह हमारे राष्ट्रपिता के मत के अनुकूल ही है। एक दृष्टि से आप उन के उसी आदेश की पूर्ति के लिये अग्रसर हो रहे हैं, जो वे अपने जीवन पर्यन्त भारत के जनसाधारण को और भारत के राजनायकों और शासकों को देते रहे; अतः आपने सही मार्ग अपनाया है और वास्तव में आप भारत और ब्रह्म देश में स्थायी मैत्री सेतु बना पायेंगे।

इतना ही क्यों ? मैं तो यह समझता हूँ कि इसी मार्ग द्वारा हम अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में अपना उचित अंशदान करने में समर्थ हो सकते हैं। हमारे देश की आत्मा, हमारे देश का इतिहास, हमारे देश की अनुभूति हमारी जन-वाणियों में ही तो रमी और बसी हुई है; अतः यदि हमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का वास्तविक प्रतिनिधान करना है, तो यह परमावश्यक है कि हम इन जन-वाणियों से अनुप्राणित और प्रेरित हों। आप सब जानते हैं कि भारतीय जन-वाणियों में से एक; किन्तु बहु प्रचलित जनवाणी हिन्दी है। हिन्दी को बोलने वालों की संख्या अठारह करोड़ और समझने वालों की संख्या लगभग तीस करोड़ है। मैं समझता हूँ कि संसार की जो बहुव्यापी भाषाएँ हैं, उन में हिन्दी का प्रमुख स्थान है। आज अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अंग्रेजी, फांसीसी, रूसी और स्पेनिश—ये चार भाषाएँ अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की मानी जाती हैं और इन्हीं में संयुक्त राष्ट्र की कार्य-वाहियां होती हैं। यदि हिन्दी अब तक महान् अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं मानी गई, तो उस का कारण यह नही था कि हिन्दी इन मानी हुई अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं से किसी दशा में भी कम दर्जा रखती है ; वरन् उस का तो केवल यही कारण था कि अभी कुछ दिनों पूर्व तक भारत अंग्रेजों के चंगुल में फंसा हुआ था, और उन लोगों ने इस भारतीय जन वाणी को हर तरह से जकड़ कर कैद रखा था। वे लोग विदा हो गये हैं और पिछले दिनों से हमारी यह महान् जन-वाणी अपने को पंगु करने वाली जंजीरों को तड़का रही है। मुझे भरोसा है कि वह दिन अब दूर नहीं है, जब यह पूर्णतः मुक्ति प्राप्त कर अपने गृह की स्वामिनी तो हो ही जायगी, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भी भारत का प्रतिनिधि और संसार की महान् भाषा मानी जाने लगेगी। आप का यह प्रयास उस दिशा में प्रारंभ का प्रारंभ है।

किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हमें पर्याप्त परिश्रम और प्रयास तो करना है ही, साथ ही सर्वदा और प्रतिक्षण यह भी स्मरण रखना है कि आप अपने इस प्रयास में तभी सफल होंगे, जब इस दिशा में आप अपने सब कार्य हिन्दी की आत्मा से अभिभूत और ओतप्रोत होकर ही करें। मैंने यह पहले कहा है कि हिन्दी की आत्मा की यह प्रेरणा है कि हम संचय में अपनी सार्थकता न समझ कर विनीत सेवा में ही अपनी सार्थकता समझें। स्मरण रहे कि हमारे पूर्वजों का सर्वदा यह आदर्श रहा है कि हम अपने भाइयों के पास कुछ उपहार लेकर और सेवा-भावना से प्रेरित होकर ही जायें, जीवन में सर्वदा ही जिज्ञासु बने रहें।" हमी जगद्गुरु हैं, हमी विद्यानिधि हैं और अपनी अनुभूति से दूसरों को अपने उपकार के बोझ से लाद रहे हैं" ऐसा उन का कभी विचार न था। सच तो यह है कि हमारी परम्परा यही रही है कि अपनी कृति तक हम अपना नाम न छोड़ जायें, अपनी होली की झलक न दें। हिन्दी के महाकवि तुलसी हिन्दी

के भक्त शिरोमणि कबीर और सूर अपने बारे में कुछ भी जानकारी नहीं छोड़ गये। वे अपनी कृति से, अपने इष्टदेव से इतने एकीकृत हो गये कि उन में और उन की कृति में, उन के भगवान् में कुछ भेद ही न रहा। आज तुलसी की बात कहते ही भगवान् राम और सीता का चरित ध्यान में आ जाता है। सूर की बात कहने पर राधाकृष्ण का चित्र आखों में छा जाता है। उन्होंने मानव-समाज को जो कुछ दिया, भेंट स्वरूप तथा भक्ति से प्रेरित होकर दिया और इस प्रकार उन्होंने जन-मन को अपनी कृति से आप्लावित कर दिया। मैं समझता हूँ कि इसी परम्परा के अनुसार कार्य करने से, अपने को पूर्णतः विस्मृत कर देने से, स्वार्थ और गौरव लोभ को सर्वथा तिलांजलि देकर ही हिन्दी की प्रगति एवं सेवा करने और उसे हिन्द्येतर प्रदेशों की स्नेह-पात्री बनाने में हम सफलता प्राप्त कर सकेंगे। यदि क्षण भर के लिये भी आप के कार्य में अहंकार या स्वार्थपरता की बू आ गई, यदि पल-भर भी किसी को यह लगा कि हिन्दी के कारण आप में बड़प्पन का मद छाया हुआ है, तो आप अपने कार्य के प्रति और अपने प्रति उन लोगों को आशंकित कर देंगे। आपने यह जो कार्य संभाला है, वह तो इसीलिए संभाला है कि भारत और ब्रह्मदेश के सम्बन्ध और भी घनिष्ठ और स्नेहपूर्ण हो जायें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्वयं आप और आप के कार्य ऐसे हो कि किसी को एक क्षण के लिये उस सम्बन्ध में लेशमात्र भी आशंका या सन्देह न हो और यह तभी होगा, जब "अहं की सर्वोपरिता" को सर्वथा भूलकर सेवा-धर्म के आदर्श से आप पूर्णतः अनुप्राणित और प्रेरित हों।

इस सम्बन्ध में एक बात की ओर मैं आप का ध्यान और दिलाना चाहता हूँ। ब्रह्मदेश की सांस्कृतिक चेतना के मूलभूत तत्त्व लगभग वही हैं, जो हम भारत निवासियों के हैं। इस महान् देश के सुन्दर वासियों के हृदय में सतत स्नेह की इरावती बहती रहती है। और अनुकम्पा तथा अहिंसा के तो वे पुजारी रहे हैं। उनके सरल हृदय मानवजाति के प्रति स्नेहपूर्ण हैं; अतः उन के मन की वाणी और हमारे मन की वाणी में कुछ विशिष्ट भेद नहीं है। वे सहसा ही हमारी अनुभूति को समझ लेते हैं, जैसे वे हमारे मन में सहज ही पैठ जाते हैं। दूसरे शब्दों में हिन्दी की आत्मा में और ब्रह्मी आत्मा में इतनी एकरूपता, इतनी निकटता, इतनी बंधुता है कि सहज में ही उन्हें हमारी वाणी बोधगम्य हो जायेगी और हमें उनकी वाणी।

फिर भी मैं हिन्दी-प्रचार के सम्बन्ध में कुछ सुझाव रखना चाहता हूँ। मैं यह समझता हूँ कि यदि आप कोई मासिक पत्रिका हिन्दी और बर्मी लिपियों में निकालें और उस पत्रिका के एक स्तम्भ देवनागरी में हिन्दी की कृति और उसके सामने वाले स्तम्भ में बरमी लिपि में उस कृति का बरमी रूपान्तर और इसी प्रकार एक स्तम्भ में

बरमी कृति और दूसरे स्तम्भ में उस का हिन्दी रूपान्तर छापें, तो आप हिन्दी प्रचार में अत्यन्त सफल हो सकते हैं।

मैं यह भी समझता हूँ कि आर्थिक दृष्टि से आप की संस्था के लिये यह लाभदायक सिद्ध होगा कि बरमी से हिन्दी में और हिन्दी की उत्तम पुस्तकों के बरमी में रूपान्तर करा के प्रकाशित करें। हिन्दी के साहित्यिक भंडार में ऐसी अनेक कृतियाँ हैं, जो समस्त मानव-जाति की चेतना का अभिन्न अंग सहज में ही बन सकती हैं। कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा, दादू, रैदास का भक्तकाव्य मानव साहित्य में अपना अनोखा स्थान रखता है। किसी राष्ट्रीय आत्मश्लाघा से नहीं; वरन् सत्य के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि ऐसा मानवी और काव्यमय साहित्य कदाचित् ही कहीं अन्यत्र मिल सके। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इस अमूल्य निधि को समस्त मानव-जाति की सेवा में अर्पित किया जाये। कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिये कि उस का रूपान्तर हमारे सांस्कृतिक और ऐतिहासिक बन्धुओं; अर्थात् ब्रह्मदेशवासियों की भाषा में हो जाये। मुझे पूरा भरोसा है कि यह कार्य आर्थिक दृष्टि से अवश्य लाभप्रद होगा और पर्याप्त आर्थिक अवलम्बन मिल जायेगा; किन्तु आर्थिक दृष्टि से भी कहीं अधिक यह कार्य मानव-सेवा और मानव-धर्म की दृष्टि से भी आवश्यक है। यदि हम हिन्दी के प्राण सन्त-साहित्य को अपने ही घर मे बन्द किये बैठे रहें, तो हमारी यह परम स्वार्थपरता होगी और अपने मनीषियों और समस्त मानव-जाति के प्रति घोर कृतघ्नता होगी। हमारे सन्तो ने अपनी अनुभूति को काव्य का स्वरूप हमारे ही मनोरंजन के लिये नही दिया था; वरन् उन्होने तो परम सत्य की गाथा इसलिये गाई थी कि वह समस्त मानव-जीवन को आप्लावित कर दें। अतः हमारा अपने सन्तो के प्रति और अपने मानव बन्धुओं के प्रति यह धर्म है कि हम उस वाणी को समस्त मानव-जातियों के समक्ष उन की अपनी-अपनी वाणियो मे रख दे। कम-से-कम आप तो अपने मिशन को तभी पूरा पायेंगे, जब कि आप यह कार्य पूर्ण कर दें।

वैसे तो देवनागरी वर्णक्रम और वर्णमाला का प्रभाव समस्त दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में है ही; किन्तु आज इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हम अपनी इस वैज्ञानिक कृति को अपने सब बन्धुओ के समक्ष इस भावना से रखें कि वे भी यह देख सकें कि कहां तक यह उन के अपने कार्य को सुगम और सुकर बना सकती है। यह तो सब जानते और मानते हैं कि देवनागरी का वर्णविन्यास पूर्णतः वैज्ञानिक तथा शब्दशास्त्र के अनुरूप है; अतः इस वर्णविन्यास के कारण प्रत्येक नई पीढ़ी के लिये यह अत्यन्त सुकर होता है कि वह वर्णमाला को थोड़े ही समय में हृदयंगम कर ले। शिक्षा के क्षेत्र में इस से कितने श्रम और समय की बचत होती है, उसके आंकड़े

इकट्ठे नहीं किये गये हैं; किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि वे इकट्ठे किये जायें, तो पता चलेगा कि इस वर्णविन्यास के कारण नवयुवकों के करोड़ों ही श्रमदिवस बच जाते हैं। जो लिखो वही पढ़ो की सुविधा के कारण उच्चारण सिखाने में व्यतीत होने वाले समय और श्रम की मात्रा भी, बहुत कम हो जाती है और विद्यार्थी अपना वह समय और श्रम, नये ज्ञान के उपार्जन में तथा नई गवेषणा करने में लगा सकता है। कुछ लोग यह समझते हैं कि देवनागरी में अक्षर संख्या रोमन की अपेक्षा कहीं अधिक है; किन्तु अपने थोड़े वर्णों और अपने अवैज्ञानिक वर्णविन्यास एवं ध्वनि मूल्यों के कारण रोमन लिपि में इतनी हीनता है कि उस का प्रयोग करने वालों को अपने लाखों दिवस और भारी श्रम व्यर्थ में ही गंवाना पड़ता है। इस मानवी समय और श्रम के अपव्यय को यदि ध्यान में रखा जाये, तो यह कहा जा सकता है कि यह भगवान् की परम अनुकम्पा है कि देवनागरी-जैसी लिपि मानव के हाथ लग गई है। जैसा मैं कह चुका हूँ ब्रह्मदेश की सेवा में तो यह लिपि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व आई थी और अपने कुछ बदले और संशोधित रूप में यह अपना अस्तित्व अब भी बनाये हुए है; किन्तु इस दिशा में आप को कुछ सजग बने रहना है। कुछ लोग हैं जो आधुनिक मुद्रण-यंत्रों की दुहाई देकर यह कहते हैं कि देवनागरी में कुछ परिवर्तन और काट-छांट की जाये; किन्तु 'मुझे तो यह बात ऐसी लगती है, जैसे कि दर्जी की यह बात कि "भई, कपड़े की दृष्टि से अपने शरीर की काट छांट कर लो।" जितने मुद्रण-यंत्र बनाये गये हैं, वे अधिकतर रोमन लिपि के स्वरूप को ध्यान में रख कर ही बनाये गये हैं; अतः यदि वे देवनागरी के लिये अयुक्त सिद्ध हों, तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर उन की अनुपयुक्तता के आधार पर यह बात कहना तो ठीक न होगी कि देवनागरी के स्वरूप के अनुरूप वैसे ही अच्छे यंत्र नहीं बनाये जा सकते, जैसे कि रोमन लिपि के लिये बना लिये गये हैं और आजकल उपलब्ध हैं। देवनागरी के अनुरूप अच्छे यंत्रों का निर्माण एक बौद्धिक और शिल्पिक समस्या है और मुझे यह समस्या ऐसी प्रतीत नहीं होती कि इस का सम्यक् हल किया ही न जा सके। यदि अणु को तोड़ कर आणविक शक्ति का उत्पादन करने की समस्या को सुलझाने में मानव-बुद्धि असफल नहीं रही है, तो यह कहना हास्यास्पद ही होगा कि वही मानव-बुद्धि देवनागरी के अनुरूप अच्छे मुद्रण-साधनों को खोज निकालने में असमर्थ सिद्ध होगी। अतः यंत्रों के नाम पर देवनागरी में काट-छांट के सुझाव में लेश भी बल और सत्य नहीं है।

मैंने आप का पर्याप्त समय ले लिया है और मैं आप के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि आपने मेरा कथन धैर्यपूर्वक सुना है। अन्त में मैं संपूर्ण हिन्दी-जगत् की ओर से आप के इस प्रयास के लिये आप का अभिनन्दन करता हूँ। सब हिन्दी

सेवियों की यह उत्कट कामना है कि आप अपने इस शुभ प्रयास में आशातीत सफलता प्राप्त करें। हम सब को यह विश्वास है कि भगवान् बुद्ध की पुण्य स्मृति में किये जाने वाले इस शुभ कार्य में अधिकाधिक सफलता होनी है और अवश्य होगी।

‘हिन्दी चलाओ’ योजना

'हिन्दी चलाओ' योजना

४ जनवरी, १९६०

स्वराज्य के बाद हमारे आगे राष्ट्रनिर्माण का प्रश्न प्रमुख रूप से आया। पंच-वर्षीय योजनाएँ बनाकर भौतिक क्षेत्र में हम यह कार्य कर रहे हैं; परन्तु भौतिक से भी बढ़कर मानसिक क्षेत्र को महत्त्व देता हूँ और इस दृष्टि से राष्ट्र-निर्माण करने का हमारा एकमात्र साधन हिन्दी है। इसलिए, स्वराज्य के बाद यदि किसी भी दूसरी चीज को स्थान दिया जा सकता है, तो वह हिन्दी है। इस तथ्य को मैं ही नहीं, मेरे विचार से समस्त देश समझता है। अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी-प्रचार का कार्य जिस तेजी से प्रगति कर रहा है, उसके मूल में भी यही तत्त्व निहित है।

अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी का प्रचार बढ़ाने के लिए जो कुछ हो चुका है अथवा हो रहा, उस के आगे मैं श्रद्धा से मस्तक झुकाता हूँ। दूसरी ओर हिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी-प्रचार की गति में जो शिथिलता आ गयी है, उसे देख कर मेरा सिर लज्जा से झुक जाता है। इस गति को देख कर किसे सन्तोष हो सकता है? राष्ट्र-पिता गांधीजी ने स्वराज्य के पहले ही हिन्दी का समस्त देश में प्रचार कर देने के प्रयत्न किये थे। उन के ये प्रयत्न आज भी मद्रास की दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा और वर्धा की राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति से फल-फूल रहे हैं। यहाँ की परीक्षा में लाखों अहिन्दी भाषी भाई-बहन प्रतिवर्ष उत्तीर्ण होते हैं। पर्याप्त सरकारी सहायता और प्रोत्साहन के बिना भी इन की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है। अहिन्दी भाषी भाई-बहनों के सुन्दर उदाहरण से हमें शिक्षा लेनी चाहिए और प्रण करना चाहिए कि हिन्दी-भाषी राज्यों में शीघ्र ही समस्त सरकारी और गैर-सरकारी कार्यों में हिन्दी का प्रयोग होने लगे! मैं चाहता हूँ कि मेरी इस प्रकार की प्रतिध्वनि हिन्दी-भाषी प्रदेशों के घर-घर से गूंजे और जनमत की यह आवाज हिन्दी-भाषी प्रदेशों के सब कार्यों में हिन्दी को प्रतिष्ठित कर दे। आखिर, हम कब तक हिन्दी को दूर किये रहेंगे।

हिन्दी-भाषी प्रदेशों में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश प्रमुख हैं। अब इन चारों प्रदेशों में, विशेषतः यह कर्त्तव्य है कि इन में शीघ्रातिशीघ्र समस्त कार्य हिन्दी में होने लगें। मैं बहुत दिनों से इस सम्बन्ध में एक योजना प्रस्तुत करना

चाहता था, जिसे अब कर रहा हूँ। मैं इन राज्यों की जनता, उसके प्रतिनिधियों और उन राज्यों की सरकारों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस योजना पर विचार करें और उसे कार्यान्वित करने में मुझे पूर्ण सहयोग दें।

जहाँ तक अहिन्दी भाषी प्रदेशों का प्रश्न है, वहाँ हिन्दी चलाने का भार वहीं के अहिन्दी भाषी भाई-बहनों पर छोड़ देना चाहिए। मेरे विचार से वे स्वयं ही यह कार्य बहुत अच्छी तरह कर रहे हैं और भविष्य में भी कर सकेंगे। यदा-कदा जो इने-गिने लोग "हिन्दी साम्राज्यवाद" अथवा "हिन्दी लादने" की बात कहते हैं, इन को भी इस प्रकार सन्तोष हो जाना चाहिए।

जहाँ तक केन्द्र का सम्बन्ध है, भाषा-आयोग और तत्सम्बन्धी संसदीय समिति अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर चुकी है। संसद में भी विचार हो चुका है। संसद का मत राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत है। संसदीय हिन्दी-परिषद् ने इस सम्बन्ध में एक उपसमिति नियुक्त की है, जो यथोचित कार्य कर रही है।

दो शब्द मैं अंग्रेजी के सम्बन्ध में भी कह देना चाहता हूँ। अंग्रेजी से मेरा कोई द्वेष नहीं है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य को मैं अत्यन्त उच्चकोटि का मानता हूँ. और उन में मेरी अत्यधिक रुचि है; परन्तु जिस प्रकार अंग्रेजी से प्रेम रखते हुए भी गांधीजी इस देश पर अंग्रेजी राज्य अस्वाभाविक मानते थे, उसी प्रकार मैं अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व भी अस्वाभाविक मानता हूँ। इससे हमारी राष्ट्रीय आत्मसम्मान की भावना को भी ठेस पहुँचती है।

हमें इस समय हिन्दी-प्रचलन का कार्य प्रधानतः चारों भाषी राज्यों, अर्थात् उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश में करना है। इस कार्य को मैंने 'हिन्दी चलाओ" की संज्ञा दी है। मैं इन राज्यों की जनता से विनीत अनुरोध करता हूँ कि वह 'हिन्दी चलाओ' आन्दोलन में हृदय से सहयोग दे। हिन्दी में जनता का कल्याण निहित है और विश्वास है कि 'हिन्दी चलाओ' आन्दोलन सब प्रकार से मंगलमय सिद्ध होगा।

हिन्दी-भाषी चार राज्यों—उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश—के लिए "हिन्दी चलाओ" योजना

इस योजना का उद्देश्य हिन्दी-भाषी चार राज्यों; अर्थात्—उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश के समस्त सरकारी तथा गैरसरकारी काम-काज में हिन्दी का प्रयोग करना है, जिससे जनता और शासन-व्यवस्था के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध और सामंजस्य स्थापित हो सके।

योजना इस प्रकार है—

(१) चारों राज्यों की सरकारों का कर्तव्य

चारों राज्यों में हिन्दी को समस्त सरकारी तथा गैरसरकारी काम-काज में चलाने का सब से अधिक दायित्व इन राज्यों की सरकारों पर है; इसलिए इन्हें नीचे लिखे कार्य तुरन्त आरम्भ कर देने चाहिए—

१. चारों राज्यों की सरकारों को एक विज्ञप्ति द्वारा तुरन्त यह घोषणा करनी चाहिए कि मन्त्रियों, विधान-सभाओं, सचिवालयों के समस्त विभागों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों के समस्त विभागों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों, न्यायालयों, लोकसेवा-आयोगों, स्वायत्त-शासन-संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, सरकारी मान्यता एवं सहायता-प्राप्त संस्थाओं आदि किसी का भी कार्य ३१ मार्च १९६१ के पश्चात् अंग्रेजी में नहीं, वरन् केवल हिन्दी में ही होगा।

जहाँ का कार्य तुरन्त हिन्दी में आरम्भ हो सकता है, वहाँ ३१ मार्च १९६१ तक न ठहरकर उसे तुरन्त हिन्दी में ही आरम्भ किया जायेगा।

घोषणा में यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस निर्णय को पूर्ण कठोरता के साथ कार्यान्वित किया जायगा और निर्णय के अन्तर्गत बनाये गये नियमों का उल्लंघन अथवा अवहेलना करना, अनुशासन का भंग माना जायेगा और ऐसा करनेवाले कर्मचारी अथवा संस्था के विरुद्ध नियमानुसार कार्यवाही की जायेगी।

(२) घोषणा में यह स्पष्ट कहा जाना चाहिए कि नीचे लिखे कार्य तुरन्त ही हिन्दी में आरम्भ कर दिये जायेंगे—

(क) मन्त्रियों द्वारा

(१) समस्त मंत्री अपने सरकारी भाषणों, लिखित कार्यों एवं वार्तालापों में केवल मूल रूप में हिन्दी का ही प्रयोग करेंगे, जिस से जनता को स्पष्ट रूप से अनुभव हो सके कि सरकार द्वारा भाषा-नीति का सक्रियता से पालन हो रहा है और अब उस की तथा सरकार की भाषा में कोई अन्तर नहीं है।

(२) सरकारी फाइलों पर मंत्रियों द्वारा लिखे जाने वाले नोटों, टिप्पणियों आदि की भाषा भी अनिवार्य रूप से हिन्दी ही होगी।

(ख) विधान-सभाओं द्वारा

विधान-सभाओं सम्बन्धी अधिकांश कार्य चारों राज्यों में हिन्दी में आरम्भ हो गया है; परन्तु जहाँ कहीं अब भी कोई कार्य हिन्दी में नहीं हो रहा है, वहाँ वह मूल रूप में हिन्दी में किया जायगा।

(ग) सचिवालयों द्वारा

१. समस्त सरकारी आदेश, विज्ञप्तियाँ, घोषणाएँ आदि मूलतः हिन्दी में ही होंगी। यदि आवश्यक हो, तो इन के अनुवाद साथ ही अंग्रेजी में प्रकाशित हो सकेंगे।

२. समस्त फाइलें, फार्म तथा अन्य कागज-पत्र हिन्दी में ही छपाये जायेंगे।

३. इस आशय की भी घोषणा की जायेगी कि हिन्दी न जानने वाले जो कर्मचारी ६ महीने के भीतर हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे, उन्हें एक वेतनवृद्धि (एडवांस इन्क्रीमेंट) दी जायेगी। जो कर्मचारी ऐसा नहीं करें, उन की भावी तरक्की (नारमल ग्रेड इंक्रीमेंट) हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान होने तक रुकी रहेगी। प्रत्येक राजपत्रित (गजेटेड) एवं अराजपत्रित (नानगजेटेड) कर्मचारी अपने-अपने विभागीय अध्यक्षों से इस आशय का प्रमाण-पत्र प्राप्त करेंगे कि उन्होंने हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

इस व्यावहारिक ज्ञान के लिए हिन्दी संस्थाओं द्वारा संचालित और सरकार द्वारा मान्य परीक्षाओं को भी मेट्रिक, बी० ए० आदि के समान मान्यता दी जायगी।

अफसरों तथा कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने के लिए सचिवालयों तथा प्रत्येक राज्य के जिलों में हिन्दी-प्रशिक्षण कक्षाएँ खोली जायेंगी।

४. समस्त नवीन कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए हिन्दी का व्यावहारिक

ज्ञान होना अनिवार्य होगा। नियुक्ति के बाद परिविक्षि काल (प्रोबेशन पीरियड) के भीतर उन के लिए हिन्दी में कम-से-कम मेट्रिक कक्षा के स्तर की परीक्षा पास करना अनिवार्य होगा। ऐसा न करने पर उन्हें नौकरी से अलग किया जा सकेगा।

५. डेपूटेशन पर आये हुए अफसरों तथा कर्मचारियों और आई० ए० एस० आई० पी० एस० काडर के अफसरों पर उन की सेवा की शर्तें भिन्न होने के कारण यह आदेश लागू नहीं होंगे; परन्तु उन अफसरों से भी यह आशा की जायेगी कि वे डेपूटेशन पर आने के बाद ६ महीने में हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे ; अन्यथा उन्हें वापिस भेजा जा सकेगा।

जो अफसर एवं कर्मचारी इन राज्यों के काडर पर होंगे, उन्हें विभागीय परीक्षा के साथ-साथ हिन्दी की जानकारी के लिए हिन्दी में एक प्रश्न-पत्र में उत्तीर्ण होना अनिवार्य होगा।

६. अहिन्दी भाषी अंग्रेजी शीघ्र-लेखकों को हिन्दी-शीघ्र-लेखन तथा मुद्र-लेखन में परीक्षा पास कर लेने पर दो अग्रिम वेतन वृद्धियाँ दी जायेंगी। उसी प्रकार अहिन्दी-भाषी अंग्रेजी-मुद्रलेखकों को हिन्दी-मुद्रलेखन की परीक्षा पास कर लेने पर एक वेतन-वृद्धि दी जायेगी।

हिन्दी-भाषी शीघ्र-लेखकों को हिन्दी-मुद्रलेखन की परीक्षा पास कर लेने पर एक अग्रिम वेतन-वृद्धि दी जायेगी।

७. भविष्य में जितने अंग्रेजी-शीघ्रलेखक नियुक्त किये जायेंगे, उन्हें हिन्दी-शीघ्र-लेखन एवं मुद्रलेखन तथा जितने अंग्रेजी-मुद्रलेखक नियुक्त किये जायेंगे उन्हें हिन्दी-मुद्रलेखन जानना भी आवश्यक होगा।

८. समस्त सरकारी कार्यालयों में हिन्दी-मुद्रलेखन-यन्त्र उपलब्ध करने की व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र कर ली जायगी। ये मुद्रणयन्त्र केन्द्रीय सरकार द्वारा हाल ही में स्वीकृत सुधरी हुई लिपि और मान्य 'की-बोर्ड' वाले होंगे।

९. सभी विभागों में भारत-सरकार द्वारा तथा राज्य-सरकारों द्वारा तैयार की गई शब्दावलियाँ, मार्ग-दर्शिकाएँ आदि पर्याप्त संख्या में उपलब्ध कर दी जायेगी।

१०. जनता से प्रत्यक्ष सम्पर्क रखनेवाले कार्यालयों तथा विभागों, जैसे— पुलिस-विभाग, राजस्व-विभाग, विकास-विभाग, कृषि-विभाग, उद्योग-विभाग सहकारिता-विभाग, सूचना-विभाग आदि में तुरन्त ही हिन्दी का प्रयोग आरम्भ कर दिया जा जायगा।

११. सड़कों पर लगे हुए मीलों के पत्थरों पर समस्त निर्देश हिन्दी ही में लिखे जायेंगे।

१२. जिन आदेशों का पालन जिला-स्तर के नीचे के अफसरों व कर्मचारियों द्वारा करना होगा, वे सब आदेश जिला-स्तर और उसके नीचे हिन्दी में ही किये जायेंगे।

१३. सचिवालय में योजना-विभाग, अर्थ-विभाग, जिन का सम्बन्ध भारत-सरकार व महालेखपाल से अधिक रहता है एवं इसी प्रकार विभागों की अनुसन्धान सम्बन्धी शाखाओं व उन शाखाओं में, जहाँ प्राविधिक प्रकार (टेकनिकल नेचर) का काम होता है, उस समय तक अंग्रेजी में ही काम करते रहना पड़ेगा, जब तक कि उन में हिन्दी का प्रयोग आरम्भ न हो जाय।

३. राज्य-भाषा-विभाग

प्रत्येक राज्य में हिन्दी चलाने के लिए राज्य-भाषा-विभाग स्थापित अथवा परिवर्द्धित किया जाय। राज्य-भाषा-विभाग का उत्तरदायित्व हिन्दी-प्रचलन और प्रसार-कार्यक्रम को कार्यान्वित करना होगा। इस विभाग को राज्य की भाषा-नीति सम्बन्धित समस्त आदेशों को प्रसारित करने के पूर्ण अधिकार होंगे। इस के अतिरिक्त राज्य-भाषा-विभाग निम्नलिखित कार्य करेंगे—

(क) पारिभाषिक शब्दावली और शब्दकोशों का निर्माण, प्रमाणीकरण तथा प्रकाशन,

(ख) अधिनियमों, विधि-संहिताओं एवं विभागीय नियमों तथा विनियमों मेनुअल (रूल्स एण्ड रेग्यूलेशन्स तथा कोड्स एण्ड मेनुअल्स) आदि का हिन्दी में अनुवाद तथा प्रकाशन,

(ग) सरकारी कार्यालयों एवं हिन्दी चलाने के निर्णयों से प्रभावित होने वाली अन्य संस्थाओं के कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाले फार्मों आदि का अनुवाद,

(घ) गृह-विभाग के निर्देशानुसार राज्य-सरकार के अफसरों तथा कर्म-चारियों को हिन्दी सिखाने की व्यवस्था,

(ङ) हिन्दी चलाने के सम्बन्ध में अन्य आवश्यक कार्य।

चारों राज्यों के राज्य-भाषा-विभागों के प्रतिनिधियों को मिलाकर एक अन्त-र्राज्यीय सलाहकार समिति स्थापित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाय, जिससे समस्त राज्यों के राज्य-भाषा-विभागों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित किया जा सके और पुनरावृत्तियाँ बचायी जा सकें। यह सलाहकार समिति हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य के सृजन एवं प्रकाशन के लिए यथोचित मार्गदर्शन भी करे। समिति इस साहित्य-सृजन के लिए राज्य-सरकारों और गैर सरकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिये जाने का मार्ग प्रशस्त करे।

४. पत्र-व्यवहार

१—चारों राज्यों के मंत्रियों द्वारा पारस्परिक सरकारी पत्र-व्यवहार तुरन्त ही हिन्दी में किया जाये।

२—चारों राज्यों के मध्य तथा केन्द्र के पास होनेवाले सचिवालय-स्तर के उन के पत्र-व्यवहार की भाषा ३१ मार्च १९६१ के पश्चात् अनिवार्य रूप से हिन्दी होगी। इस से पहले यदि कोई राज्य इसे आरम्भ कर सके, तो इसे करने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए।

३—चारों राज्यों की गैरसरकारी संस्थाओं एवं संगठनों और जन-साधारण के साथ यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र अनिवार्य रूप से हिन्दी में ही पत्र-व्यवहार किया जायगा। इस सम्बन्ध में इस बात पर विशेषत: ध्यान दिया जायेगा कि हिंदी में प्राप्त होनेवाले पत्रों का उत्तर हिंदी में ही भेजा जायगा।

५. न्यायालय

चारों राज्यों में उच्च न्यायालयों को छोड़ कर इससे नीचे के समस्त न्यायालयों में जो काम अभी हिन्दी में नहीं हो रहा, वह ३१ मार्च १९६१ के पश्चात् पूरी तौर पर हिन्दी में होने लगना चाहिए। न्यायालयों के निर्णय मूलत: हिन्दी में लिखे जाने चाहिए। सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्टों की भाषा अंग्रेजी रहने तक, इन निर्णयों के अधिकृत अंग्रेजी अनुवाद रखे जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में नीचे लिखी तैयारी अन्तरिम काल में की जानी चाहिए—

(१) न्यायालयों में काम करनेवाले अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों को अन्य सरकारी कर्माचारियों के समान हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इस आशय के आदेश प्रसारित किये जाने चाहिए। अन्य सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी-प्रशिक्षण की जो व्यवस्था की जाये, वह इन कर्मचारियों के लिए भी उपलब्ध की जानी चाहिए।

(२) न्यायालय आवश्यक विधियों, अधिनियमों, संहिताओं को हिन्दी में उपलब्ध करने के लिए जो माँग करें, उस की पूर्ति विधि, मंत्रालय को करनी चाहिए।

(३) जहाँ कहीं आवश्यकता हो, एक निश्चित अवधि के लिए न्यायालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों को भाषा सम्बन्धी सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से विधि शब्दावली के विशेषज्ञ नियुक्त किये जाने चाहिए।

(४) विधि सम्बन्धी परीक्षाओं का माध्यम एवं शिक्षण भी हिंदी में १९६०-६१ में कर देना चाहिए।

(५) न्यायालयों में प्रयुक्त होने वाले समस्त कागज-पत्र, फार्म आदि हिन्दी में छपाये जाने चाहिए और उन की हिन्दी-भाषा भी चारों राज्यों में एक-सी होनी चाहिए।

(६) न्यायाधीशों के पदों के लिए नाम निश्चित करते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उन्हें हिन्दी का समुचित ज्ञान है या नहीं।

६. शिक्षा

चारों राज्यों में इण्टर परीक्षाओं में हिन्दी-माध्यम प्रायः तीन-चार वर्ष से लागू है ; इसलिए उच्च शिक्षा के संबंध में निम्नलिखित निर्णय किये जाने चाहिए—

(क) १९६०-६१ के सत्र से प्रत्येक विश्वविद्यालय में स्नातक कक्षाओं में शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम हिन्दी अनिवार्य कर देना चाहिए। यह अनिवार्यता कला, वाणिज्य एवं सामान्य विज्ञान की परीक्षाओं के लिए लागू होनी चाहिए। टेकनिकल परीक्षाओं में इण्टर से आरम्भ करके क्रमशः स्नातक स्तर तक लागू करना चाहिए।

(ख) १९६२-६३ से कला, वाणिज्य एवं सामान्य विज्ञान की स्नातकोत्तर (पोस्ट ग्रेजुएट) परीक्षाओं के लिए शिक्षा एवं परीक्षाओं का माध्यम अनिवार्य रूप से हिन्दी घोषित कर देना चाहिए।

(ग) हिन्दी भाषा एवं साहित्य का विषय प्रत्येक प्रकार की शिक्षा के स्नातक के लिए अनिवार्य होना चाहिए तथा उस विषय के पाठ्यक्रम का स्तर काफी ऊँचा रखना चाहिए। इस विषय में उत्तीर्ण होना परीक्षार्थी के लिए अनिवार्य घोषित किया जाना चाहिए।

(घ) यदि कोई विश्वविद्यालय अपने यहाँ अंग्रेजी रखना चाहे, तो वह अनिवार्य विषय न होकर केवल वैकल्पिक विषय रहे।

(ङ) हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषा अथवा अंग्रेजी के माध्यम से मेट्रिक पास करनेवाले विद्यार्थी को अंग्रेजी माध्यम अथवा सम्भव हो सके, तो अन्य भारतीय भाषा के माध्यम की सुविधा राज्य के विश्वविद्यालयों में केवल पांच वर्ष तक दी जानी चाहिए। इन पांच वर्षों की अवधि में भी, इस प्रकार विशिष्ट विद्यार्थियों के लिए हिन्दी भाषा का विषय अनिवार्य होना चाहिए। पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् यदि राज्यों के किसी क्षेत्र में हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा से शिक्षा प्राप्त करने की मांग पर्याप्त संख्यक विद्यार्थियों की ओर से आती है, तो उन के लिए अलग से शैक्षणिक प्रबन्ध कर देना चाहिए

और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि राज्यों की हिन्दी नीति पर इस का कोई बाधक प्रभाव न पड़े।

(च) चारों राज्यों के विश्वविद्यालयों को अपने सामूहिक साधनों के द्वारा निम्न रचनात्मक कार्य हाथ में लेने चाहिए—

१. पारिभाषिक शब्दों का प्रमाणीकरण और अन्य स्थानों पर होने वाले ऐसे ही कार्य से उन का समन्वय,

२. संदर्भ ग्रंथ एवं पाठ्य पुस्तकों का अनुवाद तथा निर्माण,

३. लेखकों तथा प्राध्यापकों द्वारा लिखित उच्चस्तर की आवश्यक पुस्तकों का प्रकाशन,

४. लेखकों एवं प्राध्यापकों को हिन्दी में आवश्यक ग्रन्थ रचने के लिए आर्थिक सहायता, अवकाश की सुविधा तथा आवश्यक परामर्श।

(छ) उपर्युक्त कार्य के सम्पादन के लिए विश्वविद्यालयों को अपने यहाँ स्वतन्त्र विभाग खोलना चाहिए तथा अपने साधनों एवं अनुकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कार्य का विषयानुसार विभाजन कर लेना चाहिए। विभिन्न विश्वविद्यालयों के विभागों के कार्य का सम्बद्धीकरण करने के लिए एक संयुक्त परिषद् स्थापित करना चाहिए, जिसके संचालनार्थ केन्द्रीय सरकार विश्वविद्यालय आयोग एवं राज्यसरकारों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न भी करना चाहिए।

(ज) विश्वविद्यालयों अथवा महाविद्यालयों के जिन प्राध्यापकों में हिन्दी माध्यम के द्वारा स्नातक स्तर की शिक्षा देने की क्षमता नहीं है उन्हें आदेश दिया जाना चाहिए कि वे एक वर्ष की अवधि के भीतर यह क्षमता प्राप्त कर लें, अन्यथा उन की वार्षिक वेतन-वृद्धि बन्द कर दी जायगी तथा उन्हें स्नातक कक्षाएँ तब तक पढ़ाने को नहीं दी जायेंगी, जब तक वे निर्देशित क्षमता प्राप्त नहीं कर लेते। इस क्षमता की जाँच निष्पक्षता एवं कड़ाई से की जानी चाहिए तथा विश्वविद्यालयों के अधिकारी-वर्ग को इस कार्य में अपना विशेष उत्तरदायित्व मानना चाहिए।

(झ) हिन्दी-माध्यम से पढ़ाने की क्षमता वाले प्राध्यापकों को एक इन्क्रीमेंट अथवा विशेष आर्थिक पुरस्कार या विशेष भत्ता दिया जाना चाहिए।

(ञ) चारों राज्यों के विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों की समय-समय पर बैठकें होनी चाहिए, जो उपर्युक्त योजना की प्रगति पर विचार करें और भावी प्रगति के लिए सुझाव प्रस्तुत करें।

७. लोकसेवा-आयोग

१. चारों राज्यों के लोकसेवा-आयोगों को यह घोषणा तुरन्त कर देनी चाहिए कि ३१ मार्च १९६१ के पश्चात् राज्य-सरकार की सेवाओं के लिए केवल उन्हीं व्यक्तियों की नियुक्ति अथवा पदोन्नति के लिए विचार किया जायगा, जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित आवश्यक हिन्दी योग्यता रखते होंगे।

२. इन लोकसेवा-आयोगों द्वारा ली जाने वाली परीक्षाओं का माध्यम ३१ मार्च १९६१ के बाद केवल हिन्दी ही रहेगा तथा प्रत्येक परीक्षार्थी के लिए हिन्दी-भाषा का विषय अनिवार्य रहेगा। अंग्रेजी केवल वैकल्पिक विषय के रूप में रह सकेगी; परन्तु उस का ज्ञान अनिवार्य नहीं होगा।

३. इस घोषणा के पश्चात् लोकसेवा-आयोगों के कार्यालयों का कार्य हिन्दी में आरम्भ कर दिया जायेगा और उनके विज्ञापन आदि हिन्दी में प्रकाशित किये जायेंगे तथा पत्र-व्यवहार भी हिन्दी में होगा।

८. कनवेन्शन

उपर्युक्त योजना को कार्य-रूप में परिणत करने के सम्बन्ध में आवश्यक और उपर्युक्त सुझाव देने के उद्देश्य से चारों प्रदेशों के मुख्य न्यायाधीशों, मुख्य मन्त्रियों, शिक्षा-मंत्रियों और विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों का एक कनवेंशन यथाशीघ्र किया जाय।

केन्द्रीय सरकार से कराये जाने वाले कार्य

१. केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षाएं

चार प्रदेशों की सरकारें और राज्यपाल राष्ट्रपति से यह अनुरोध करें कि केन्द्रीय लोकसेवा-आयोग द्वारा ली जाने वाली समस्त परीक्षाओं के लिए तथा प्रतिरक्षा के पदों के लिए ली जानेवाली परीक्षाओं का माध्यम अंग्रेजी के साथ हिन्दी भी वैकल्पिक रूप से तुरन्त स्वीकार किया जाय, जिस से इन राज्यों के उन विश्वविद्यालयों के परीक्षार्थियों को, जहाँ हिन्दी शिक्षा का माध्यम बन चुकी है, कोई असुविधा न हो और इस प्रकार अंग्रेजी माध्यम वाले विश्वविद्यालयों से आने वाले परीक्षार्थियों की तुलना में हिन्दी माध्यम के परीक्षार्थियों के साथ कोई अन्याय भी न हो।

२. हाईकोर्टों में

(क) चारों राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति लेकर अपने-अपने

राज्यों की हाईकोर्टों की कार्यवाही हिन्दी में चलाने का अधिकार प्रदान करें, जो भारतीय संविधान के अनुसार राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति से कर सकते हैं।

(ख) हाईकोर्टों में हिन्दी चलाने की कार्यवाही के अंतर्गत निम्न कार्य प्रधान रूप से सम्मिलित हों—

१. वकीलों को हिन्दी में बहस करने की अनुमति,

२. विविध आवेदन-प्रत्रों और शपथ-पत्रों को हिन्दी में उपस्थित करने की अनुमति,

३. महत्त्वपूर्ण निर्णयों के अधिकृत हिन्दी अनुवादों का प्रकाशन,

४. सम्मन आदि हिन्दी में भेजने की अनुमति।

३. जन-प्रतिनिधियों से निवेदन

विधान-सभा के सदस्यों से निवेदन है कि वे इस योजना के अनुसार अपने राज्यों के मंत्रियों, सचिवालयों, न्यायालयों, लोकसेवा-आयोग और विश्वविद्यालयों आदि द्वारा हिन्दी को चलाने के लिए प्रयत्न करें।

संसद सदस्यों से निवेदन है कि वे अपना संसद सम्बन्धी समस्त कार्य हिन्दी में करें।

४. जनता से निवेदन

"हिन्दी चलाओ" आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य जनता की सुविधा और कल्याण है। जब तक सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा, जनता का उससे सम्पर्क हो ही नहीं सकेगा। पग-पग पर उसे यही प्रतीत होता रहेगा, मानों सरकारी काम-काज कोई रहस्यमयी वस्तु है, जिसका उद्देश्य जनता का गला अपने चंगुल में दबाये रखना है। विदेशी शासकों के लिए जनता के हृदय में ऐसी भावना बनाये रखना वांछनीय हो सकता था, स्वराज्य हो जाने के बाद तो यह भावना तुरन्त दूर होनी चाहिए और उसके विपरीत जनता के हृदय में यह भावना उत्पन्न करनी चाहिए कि शासन जनता का है। जनता के कल्याण के लिए है और जनता से उस का घनिष्ठ सम्पर्क रहना चाहिए। इस देश में हमने प्रजातंत्र स्थापित किया है और हम विकास तथा निर्माण-कार्य कर रहे हैं, इसलिए यह भावना और स्थिति तभी उत्पन्न हो सकेगी, जब सरकारी कामकाज पूरी तौर पर जनता की भाषा हिन्दी में होने लगेगा। जनता सच्चे अर्थों में स्वराज्य का उपयोग भी तभी कर सकेगी, जब हिन्दी के द्वारा सरकारी काम-काज चलेगा और छोटे-से-छोटे सरकारी अधिकारी से

लेकर मुख्यमंत्री तक हिन्दीमय हो जायेंगे। जनता की भाषा हिन्दी में बोलेंगे और जनता की भाषा हिन्दी में ही अपना समस्त सरकारी काम करेंगे ; इसलिए शासन-व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों से तो शीघ्रातिशीघ्र हिन्दी अपना लेने का अनुरोध है ही; परंतु इस अनुरोध के साथ जनता से भी निवेदन है कि वह अपनी शक्ति को पहचाने। समस्त सरकारी व्यवस्था उस की है, उस की सेवाके लिए है उस का बल प्राप्त करके राष्ट्र को जागरूक, सक्रिय, समृद्ध बलशाली और निर्भय बनाये रखने के लिए है ; इसलिए यदि सरकार हिन्दी का प्रयोग न करके अपने और जनता के बीच दीवाल खड़ी करके चलती रहना चाहती है, तो जनता का कर्त्तव्य है कि वह उसे यह दीवाल ढहा देने के लिए विवश करे और सरकारी काम-काज में हिन्दी चलाने का मार्ग प्रशस्त करे।

जनता इस सम्बन्ध में क्या कर सकती है, उस की मोटी रूप-रेखा इस प्रकार हो सकती है—

१. चारों राज्यों की राजधानियों में जनता के प्रतिनिधि विधान-सभा के सदस्यों की एक-एक हिन्दी-समिति बनवाई जाये जो राज्यों की शासन-व्यवस्था में हिन्दी को पूर्णतः चलाने में सरकार को सुझाव, व सहयोग दे। यह कार्य प्रधानतः सहयोग और स्नेह की भावना रखकर होना चाहिए।

२. राज्य-सरकारें जब तक हिन्दी चलाने के लिए जो काम कर रही हैं, उन का उक्त हिन्दी-समिति समय-समय पर सिंहावलोकन करती रहे और समय-समय पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती रहे।

३. जनता को विधान-सभाओं में उसके द्वारा निर्वाचित करके भेजे गये प्रतिनिधियों से अनुरोध करना चाहिए कि वे राज्य-सरकारों को हिन्दी चलाये जाने के विषय में सक्रिय रखने का यत्न करे। जब कभी उस के प्रतिनिधि अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में जन-सम्पर्क के लिए आयें तो जनता को चाहिए कि उन से इस विषय में जानकारी प्राप्त करे, कि अब तक क्या हुआ है और अब क्या हो रहा है। जनता की ओर से प्रतिनिधियों को इस सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव भी दिये जाने चाहिए।

४. चारों राज्यों से निर्वाचित हुए संसद-सदस्य भी जब अपने निर्वाचन-क्षेत्र में जन-सम्पर्क के लिए आयें, तो जनता को उन से पूछना चाहिए कि वे संसद में हिन्दी के लिए क्या कर रहे हैं। साथ-ही उन से यह अनुरोध भी करना चाहिए कि वे संसद सम्बन्धी अपना सब काम हिन्दी में ही करें। जहाँ जनता को यह जान पड़े कि संसद के कोई सदस्य अपना कार्य हिन्दी में नहीं करते; वरन् अंग्रेजी में करते हैं, तो वहाँ वह शिष्ट मंडलों द्वारा उन से हिन्दी में कार्य करने के लिए अनुरोध करे।

इन शिष्ट मण्डलों के अनुरोधकी भी यदि अवहेलना हो, तो सार्वजनिक सभाओं द्वारा उन से यह अनुरोध किया जाय।

५. स्थान-स्थान पर हिन्दी-प्रचार का कार्य करने वाली हिन्दी-संस्थाएँ अपने सुझाव उक्त समिति के समक्ष प्रस्तुत करती रहें, जिससे उन्हें राज्य सरकारों के समक्ष कार्यान्वित करने के लिए रखा जा सके। इस कार्य को चारों राज्यों के प्रादेशिक सम्मेलन यदि संगठित रूप से चला सकें तो अति उत्तम होगा। इसके लिए प्रादेशिक सम्मेलनों को अपने प्रदेशों की एक योजना बनानी चाहिए।

६. चारों राज्यों में हिन्दी का वातावरण उत्पन्न करने के लिए प्रादेशिक सम्मेलनों और उनके अधीन अथवा स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाली समस्त हिन्दी संस्थाओं को गैरसरकारी काम-काज में भी तुरन्त अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी चलाने के प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए। इन प्रयत्नों के कुछ रूप इस प्रकार हो सकते हैं—

(१) समस्त सार्वजनिक संस्थाएँ अपनी व्यवस्था आदि का समस्त कार्य हिन्दी में करना आरम्भ कर दें।

(२) व्यापारिक संस्थाएँ और व्यापारी अपना सब कार्य हिन्दी में करने लगें।

(३) समस्त नामपट (साइन बोर्ड) आदि हिन्दी में हो जाने चाहिए।

(४) दैनिक जीवन में अभिवादन, सम्बोधन, निर्देशन आदि में अंग्रेजी के जो शब्द तथा वाक्य फैशन के कारण घुस आये हैं और जिन्होंने हमारे सांस्कृतिक जीवन को विकृत कर दिया है, उन के स्थान पर हिन्दी शब्दों तथा वाक्यों का प्रचलन किया जाये। इस का यह अर्थ नहीं है कि जो शब्द हम आत्मसात कर चुके हैं; जैसे—स्टेशन, टिकट, प्लेटफार्म आदि, उन्हें त्याग दिया जाय।

"हिन्दो चलाओ" योजना को आगे बढ़ाने के साथ हिन्दी भाषियों के लिए यह भी आवश्यक है कि वे देश की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के प्रति परम श्रद्धा की भावना रखें और उन का ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करें। हिन्दी चलाने के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं को आगे बढ़ाने का मार्ग भी प्रशस्त होना चाहिए। इस प्रकार इस हिन्दी योजना का लक्ष्य जनता की सुविधा और कल्याण है। इसी में इस का औचित्य और महत्त्व निहित है, इसलिए विश्वास है कि चारों राज्यों के सरकारी तथा गैरसरकारी क्षेत्रों से संबंध रखने वाले अफसर, कर्मचारी और जनसाधारण इसे शीघ्र कार्य-क्रम में परिणत करने में अपना हार्दिक सहयोग देंगे।

दिनांक ४ जनवरी, १९६०

—गोविन्ददास